CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत विशारद

1820

संगीत कार्यालय
हाथरस उ.प्र.

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.______ ______________

Book No.____________________

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust Foundation

781

इन्

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
क्रमसंख्या ९८२०
प्राप्ति तिथि २०.२.५८
State Museum, Library, Lko.

संगीत' क

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

STATE

Acc. No._

Book No._

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत विशारद

इन्टरमीडियेट तथा बी. म्यूज़. (सङ्गीत विशारद)
के विद्यार्थियों के लिये

लेखक
'वसन्त'

सम्पादक
लक्ष्मीनारायण गर्ग

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
क्रमसंख्या 9820
प्राप्ति तिथि 20.3.68
State Museum, Library, Lko.

संगीत

©

प्रकाशक
प्रभूलाल गर्ग
संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

UP State Museum, Lucknow

'संगीत' का विशेष प्रकाशन

मूल्य पाँच रुपए

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १९५४
द्वितीय संस्करण
जनवरी १९५८
तृतीय संस्करण
दिसम्बर १९५९
चतुर्थ संस्करण
अगस्त १९६१

Published by P. L. Garg
and
Printed by C. S. Sharma.
AT THE
SANGEET PRESS
HATHRAS (India)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्राक्कथन

सङ्गीत का विद्यार्थी वर्ग बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की मांग कर रहा था, जिसमें इन्टर तथा विशारद की परीक्षाओं में आने वाली थ्योरी (शास्त्रीय विवेचन) हो। वास्तव में उनकी यह मांग उचित भी थी; क्योंकि सरल हिन्दी भाषा में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक प्राप्य नहीं थी, जिसमें ऐसे परीक्षार्थियों को मनवांछित सामग्री प्राप्त हो सके। विद्यार्थियों की यह कठिनाई प्रकाशक की दृष्टि में भी थी और वह चाहता था कि इसे तुरन्त दूर कर दिया जाय; किन्तु किसी भी निर्माण कार्य की योजना को क्रियात्मक रूप देने में समय तो लगता ही है। फलस्वरूप 'सङ्गीत विशारद' के प्रकाशन में भी वर्षों का समय लग गया।

भातखण्डे सङ्गीत महाविद्यालय, गांधर्व महाविद्यालय मंडल, माधव सङ्गीत महाविद्यालय, प्रयाग सङ्गीत समिति आदि शिक्षण केन्द्रों के पाठ्यक्रमों के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की गई है, अत: विभिन्न केन्द्रों में परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों को इससे यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस पुस्तक में प्रयुक्त स्वर और ताल-चिन्ह यद्यपि भातखंडे पद्धति के अनुसार ही हैं तथापि विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन के लिये विष्णु दिगम्बर पद्धति के स्वर, ताल-चिन्हों का स्पष्टीकरण भी यथास्थान कर दिया गया है। राग और तालों का विवरण देते समय इस बात की पूर्ण चेष्टा की गई है कि शिक्षण केन्द्रों के पाठ्यक्रमानुसार (प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक) सभी राग और तालों का इस पुस्तक में समावेश होजाय। इस प्रकार यह पुस्तक विशेषत: 'सङ्गीत विशारद' के विद्यार्थियों के लिए मां सरस्वती का वरदान स्वरूप बन गई है। इस पुस्तक के अध्ययन के बाद परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की पूर्ण आशा तो है ही, साथ ही भारतीय सङ्गीत के शास्त्रीय ज्ञान का एक विशाल कोष भी विद्यार्थियों को प्राप्त हो सकता है, जिसकी उन्हें अपने सांगीतिक जीवन में पग-पग पर आवश्यकता पड़ेगी।

पुस्तक के प्रकाशन के उपरांत मेरा परिश्रम पूर्ण तो हो गया, किन्तु इसकी सफलता अभी शेष है। यदि विद्यार्थी वर्ग को इस पुस्तक के अध्ययन से यथोचित लाभ होता है और वे इसे हृदय से अपनाते हैं तो वह सफलता भी दूर नहीं।

अन्त में उन लेखक महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं अपना हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करता हूँ, जिनके विद्वतापूर्ण ग्रन्थों का अवलोकन और मन्थन करने के पश्चात् इस पुस्तक की रचना की गई है। सहायक ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के नाम इस प्रकार हैं:—

१—संगीत रत्नाकर (शार्ङ्गदेव)

२—संगीत दर्पण (दामोदर)

३—स्वरमेलकलानिधि (रामामात्य)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४—सङ्गीत सीकर (बी० एन० भट्ट)
५—सङ्गीत पारिजात (अहोबल)
६—क्रमिक पुस्तक मालिका (भातखण्डे)
७—राग विज्ञान (पटवर्धन)
८—सङ्गीत कौमुदी (बी० एस० निगम)
९—सङ्गीत शास्त्र (एम० एन० सक्सेना)
१०—सङ्गीत शास्त्र विज्ञान (बद्रीप्रसाद शुक्ल)
११—सङ्गीत वीथिका (प्रजेश बन्धोपाध्याय)
१२—सङ्गीत प्रदीप (कु० बुलबुल मित्रा)
१३—अप्रकाशित राग (ज० दे० पत्की)
१४—सङ्गीत कला बिहार (मासिक)
१५—सङ्गीत (मासिक)
१६—भातखण्डे संगीत शास्त्र (भातखण्डे)
१७—ताल अङ्क (विशेषांक संगीत)
१८—संगीत सागर ('संगीत' का विशेष प्रकाशन)
१९—मारिफुन्नग़मात (राजा नवाब अली)
२०—वाद्य संगीत अङ्क (विशेषांक "संगीत")
२१—संगीत शास्त्र दर्पण (शान्ति गोवर्धन)

——आदि-आदि——

विजया दशमी
सम्वत् २०११ वि०

विनीत:—
'वसन्त'

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अनुक्रमणिका

सफल संगीतज्ञ बनने के उपकरण ९
भारतीय संगीत का इतिहास १७
संगीत के इतिहास का काल विभाजन १८
अति प्राचीन (वैदिककाल), प्राचीनकाल १९
मध्यकाल (मुस्लिमकाल) २१
आधुनिककाल (अँग्रेजी राज्य) २७
संगीत प्रचार का आधुनिककाल २८
स्वतन्त्र भारत में संगीत ३०
संगीत, स्वर, तीव्र और कोमल ३१
शुद्ध और विकृत स्वर, दक्षिणी-उत्तरी संगीत के भेद ३२
उत्तरी और दक्षिणी स्वरों की तुलना ३३
नाद ३५
श्रुति ३६
स्वरों में श्रुतियों को बांटने का नियम ३७
श्रुति और स्वर तुलना ३८
श्रुति-स्वरूप ३९
प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ ४०
आधुनिक ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ ४२
प्राचीन व आधुनिक श्रुति स्वर-विभाजन ४३
२२ श्रुतियों पर आधुनिक पद्धति के १२ स्वरों की स्थापना ४४
तुलनात्मक विवेचन ४५
स्वर स्थान और आंदोलन संख्या ४७
स्वरों की आंदोलन संख्या निकालना ४७
स्वरों का गुणान्तर ४७
आंदोलन संख्या से लम्बाई निकालना ४८
वीणा के तार पर श्रीनिवास के स्वर ४९
श्रीनिवास के विकृत स्वर ५३
श्रीनिवास के ५ विकृत स्वर ५५
मंजरीकार के १२ स्वर-स्थान ५७
वीणा के तार पर ५८
मतैक्य ५८
मतभेद ५९
भारतीय तथा योरोपीय स्वर सम्वाद ६०
थाट पद्धति का विकास ६२
थाट व्याख्या ६४
दस थाटों के सांकेतिक चिन्ह ६५
७२ थाट कैसे बनते हैं ६५
पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के ३६ थाट ६६
व्यंकटमखी पं० के कल्पित स्वरों से ३२ थाट ६८
हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दस थाट और— उनसे उत्पन्न कुछ राग ७१
व्यंकटमखी के ७२ मेल ७३
व्यंकटमखी के १९ थाट और उनके स्वर ७४
व्यंकटमखी के जनकमेल तथा जन्यराग ७५
रागलक्षणम् के ७२ कर्नाटकी मेल ७६
स्थान, सप्तक ८१
वर्ण ८२
अलंकार, राग ८३
रागों की जाति ८४
ग्राम ८७
प्राचीन ग्रन्थों में २२ श्रुतियों र तान ग्राम ८९
आधुनिक ग्राम चक्र ९०
मूर्च्छना ९१
षड्ज ग्राम की मूर्च्छना ९१
मध्यम ग्राम की मूर्च्छना ९२
गांधार ग्राम की मूर्च्छना ९२
मूर्च्छनाओं की तुलनात्मक परिभाषा ९४
राग के दस लक्षण ९५
राग भेद ९५
आश्रय राग ९६
दस आश्रय राग ९७
राग गाने का समय विभाजन ९८
रागों के तीन वर्ग ९९
सन्धिप्रकाश राग ९९
रे ध शुद्ध वाले राग १००
कोमल ग, नि वाले राग १००
तीव्र म वाले राग १०१
सङ्गीत के दिन-रात १०३
अध्वदर्शक स्वर का महत्व १०४
हि० सं० प० के ४० सिद्धांत १०६
राग में वादी स्वर का महत्व १०९

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग में विवादी स्वर का प्रयोग ११०
राग-रागिनी पद्धति ११२
गायकों के गुण-अवगुण ११५
नायक, गायक, कलावन्त, गंधर्व १२०
पंडित, संगीत शास्त्रकार सङ्गीत शिक्षक, कव्वाल १२०
अताई गायक, कत्थक, उत्तम वाग्गेयकार १२१
मध्यम और अधम वाग्गेयकार १२३
गीत, गंधर्व-गान तथा मार्ग-देशी सङ्गीत १२४
ग्रह, अंश और न्यास १२५
गायन शैलियाँ-ध्रुवपद
ध्रुवपद की चारवाणी १२६
चार वाणियों के प्रधान लक्षण १२७
ख्याल १२८
टप्पा, ठुमरी १२९
तराना, त्रिवट, होरी-धमार, ग़ज़ल १३०
क़व्वाली, दादरा, सादरा, खमसा १३१
लावनी, चतुरंग १३१
सरगम, रागमाला, लक्षणगीत १३२
भजन, गीत, कीर्तन, गीत, कजली १३२
चैती, लोक गीत १३३
आल्हा, बारहमासी, सावनी, मांड १३४
संगीतात्मक रचनाओं के नियम-
स्वर स्थान, रूपकालाप १३५
आलप्ति, आविर्भाव-तिरोभाव, स्थाय,
मुख चालन, आक्षिप्तिका, निबद्ध-
अनिबद्ध गान १३६
विदारी, अल्पत्व, बहुत्व १३७
पकड़, मींड़, सूत, आंदोलन, गमक, कण १३८
तान, शुद्धतान, कूटतान, मिश्रतान १३९
खटके की तान, झटके की तान, वक्रतान १३९
अचरकतान, सरोकतान, लड़न्ततान, सपाटतान १३९
गिटकरी तान, जबड़े की तान, हलक़तान १४०
पलट तान, बोलतान, आलाप, बढ़त १४०
आधुनिक आलाप गान-स्थायी १४१
अन्तरा, संचारी, आभोग, आलाप में
लय की गत १४२
गमक के प्रकार १४३
रागों का दस विभागों में वर्गीकरण करने
का प्राचीन सिद्धांत १४४
आदत, जिगर, हिसाब १४६
स्वरलिपि पद्धति १४७
विष्णुदिगम्बर पद्धति के स्वरलिपि चिन्ह १४८
भातखण्डे पद्धति के स्वरलिपि चिन्ह १४९
सङ्गीत और रस १५०
प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक के ६० रागों
का वर्णन—
बिलावल, अल्हैयाबिलावल, खमाज १५४
यमन, काफी १५५
भैरवी, भूपाली, सारङ्ग (शुद्ध) १५६
बिहाग, हमीर १५७
देश, भैरव १५८
भीमपलासी, बागेश्री १५९
तिलककामोद, आसावरी, केदार १६०
देशकार, तिलग १६१
हिंडोल, मारवा, सोहनी १६२
जौनपुरी, मालकौंस १६३
छायानट, कामोद, बसन्त १६४
शंकरा, दुर्गा (खमाज थाट) १६५
दुर्गा (बिलावल थाट), शुद्धकल्याण १६६
गौड़सारङ्ग, जयजयवन्ती १६७
पूर्वी, पूरियाधनाश्री १६८
परज, पूरिया, सिंदूरा १६९
कालिंगड़ा, बहार १७०
अड़ाना, धानी १७१
मांड, गौड़मल्हार, झिंझोटी १७२
श्री राग, ललित १७३
मियांमल्लार, दर्बारीकानड़ा १७४
तोड़ी, मुलतानी १७५
रामकली, विभास (भैरव थाट) १७६
पीलू, आसा, पटदीप १७७
रागेश्री, पहाड़ी १७८
जोगिया, मेघमल्हार १७९
ताल, मात्रा, विलम्बितलय, मध्यलय, द्रुतलय १८०
ठेका, दुगुन, तिगुन, चौगुन १८१
आड़ी, कुवाड़ी, बियाड़ी, सम १८१
खाली, भरी, यति, आवृत्ति १८२

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जर्ब, क़ायदा, टुकड़ा १८२
पल्लू, चौपल्ली, पल्टा, तीया १८३
मुखड़ा, मौहरा, लग्गी, लड़ी, पेशकार, आमद, बोल, उठान, नवहक्का, रेला १८३
परन, ताल के दस प्राण, काल, १८४
क्रिया, सशब्द क्रिया, निशब्द क्रिया १८४
कला, मार्ग, अङ्ग, प्रस्तार और जाति १८४
ग्रह, लय-विवरण १८५
लय की व्याख्या और उसे लिपिबद्ध करने का ढङ्ग १८५
मध्यलय, विलम्बितलय और अति-विलम्बितलय १८६
दुगुनलय, तिगुनलय १८७
चौगुन, अठगुन, क्वाड़ी १८८
आड़ीलय, वियाड़ीलय १८९

उत्तरी संगीत पद्धति की मुख्य तालें—

कहरवा, दादरा, झपताल, चौताल १९०
त्रिताल, आड़ाचौताल, तीव्रा १९०
सूलताल, धमार, रूपक, इकताला १९१
दीपचंदी, पंजाबी, मत्तताल १९१
तिलवाड़ा, धीमा इकताला, झूमरा १९२
ब्रह्मताल, गणेशताल, विक्रमताल १९२
गजझंपा, शिखरताल यतिशेखर १९३
चित्रा, वसंतताल, विष्णुताल १९३
मणिताल, झंपाताल, रुद्रताल १९४
ठेका, टप्पा, अद्धात्रिताल, सवारी १९४
लक्ष्मीताल, पश्तो, कव्वाली, शूलफाक्ता १९५
दक्षिण (कर्नाटकी) ताल पद्धति १९६
७ तालों के पंचजाति भेदानुसार ३५ प्रकार १९७
अठताल के २५ प्रकार १९९
कर्नाटकी पद्धति की सात तालों को हिन्दुस्तानी पद्धति में लिखने का कायदा २०१

वाद्य यन्त्र परिचय, वाद्यों के प्रकार—

सितार, संक्षिप्त इतिहास २०३
सितार के सात तार, अङ्ग वर्णन २०४
सितार मिलाना २०५
चलथाट और अचलथाट २०६
सितार के बोल २०६
गत, मसीतखानी, रजाखानी २०७
जोड़, आलाप, जमजमा, झाला २०७
कृन्तन, मींड, सूत, तबला २०७
तबला के घराने २०८
दाहिना और बायाँ तबला मिलाना २०९
तबला के दस वर्ण २१०
मृदङ्ग (पखावज) उत्पत्ति, बनावट २१२
बोल, खुले बोल, बंद बोल, थाप २१२
तानपूरा अङ्ग वर्णन, तार मिलाना २१३
तानपूरा छेड़ना, बैठक २१३
वॉयलिन, बेला उत्पत्ति, बेला के विभिन्न राग २१४
तार मिलाना २१५
इसराज, मुख्यअङ्ग, तार, परदे, बाँसुरी २१५-२१६
यन्त्र वादकों के गुण-दोष २१८
संगीत में काकु २१९
गायकों के घराने २२१
पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति २२५

संगीत विद्वानों का संक्षिप्त परिचय—

जयदेव २३९
शार्ङ्गदेव, अमीर खुसरो २४०
गोपाल नायक २४१
स्वामी हरिदास २४२
तानसेन २४३
बैजूबावरा, सदारंग-अदारंग २४५
बालकृष्ण बुवा (इचलकरंजीकर) २४६
रामकृष्ण वझे २४७
अब्दुल करीमखाँ २४८
इनायतखाँ २४९
भातखंडे, विष्णुदिगम्बर २४९
२०० रागों का शास्त्रीय विवरण २५०

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत विशारद

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सफल संगीतज्ञ बनने के उपकरण

(१) पुस्तकालय और संगीत

संगीतकार और संगीतज्ञ के लिये पुस्तकालय रखना नितांत आवश्यक है, बिना इसके ये दोनों अपनी सांगीतिक प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि नहीं कर सकते। प्रत्येक संगीतज्ञ को चाहे वह छोटे ही रूप में क्यों न हो, एक लाइब्रेरी अवश्य रखनी चाहिये। साहित्य और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जिस सङ्गीत की पृष्ठभूमि में उच्च रचनाएँ, रम्य भावनाएँ, सुन्दर विचार, रंगीन एवं कलात्मक उड़ानें नहीं होतीं, वह सङ्गीत शाश्वत एवं अपूर्व नहीं बन सकता। जीवन के ठोस तत्वों पर सङ्गीत की नींव होनी चाहिये जिससे विश्व को उज्वल आलोक प्राप्त हो सके, शक्तिशाली सांगीतिक उत्पादन मिल सके; सङ्गीत की उच्च कोटि की अभिव्यक्ति अपने सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत हो सके और सङ्गीत का स्वरूप तुष्टिकारी होकर विश्व को सम्मोहित कर सके। अतः आपका परम कर्तव्य है कि सङ्गीत की किसी भी उपयोगी पुस्तक को हाथ से न निकलने दें और उसे खरीदकर अपने पुस्तकालय का उपकरण बनायें। अवकाश के समय आप इन पुस्तकों का मनन कर सकते हैं। आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि आपको सङ्गीत का केवल व्यावहारिक ज्ञान ही कुशल सङ्गीतज्ञ नहीं बना सकता जब तक कि आपको सङ्गीत का पूर्णरूपेण शास्त्रीय ज्ञान न हो। यह शास्त्रीय ज्ञान अध्ययन से ही अर्जित किया जा सकता है। व्यावहारिक ज्ञान का विकास शास्त्रीय ज्ञान पर ही आधारित है। जितना आपका शास्त्रीय ज्ञान विकसित होगा उतना ही अधिक आपका व्यावहारिक ज्ञान परिपुष्ट होगा। जो व्यक्ति प्रमादी हैं और विधिवत् अध्ययन नहीं कर पाते, उनकी सांगीतिक प्रतिभा भी अधूरी रह जाती है। सङ्गीत की सफलता केवल वही नहीं है जो आपको सङ्गीत प्रदर्शित करते समय श्रोताओं द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट के मध्य प्राप्त होती है। यह तालियों की गड़गड़ाहट की ख्याति तो क्षणभंगुर होती है, इसमें स्थायित्व नहीं होता, यह केवल चार दिनों की चांदनी के समान होती है। अतः यह कला को ऊपर नहीं उठा सकती। इसके लिये आपको सङ्गीत-साहित्य का पूर्ण अध्ययन करना पड़ेगा।

अध्ययन करते समय अपना दृष्टिकोण संकीर्ण न बनाइये। आपको प्रत्येक पुस्तक को चाहे वह भारतीय लेखक की हो अथवा विदेशीय लेखक की, मनन अवश्य करना चाहिये। आप इस तथ्य को हमेशा याद रक्खें कि प्रत्येक भाषा में सुन्दर कलाकार हो गये हैं, अतः अपने दृष्टिकोण को उदार बनाते हुए आप जो अध्ययन करेंगे उससे आपका ज्ञान सर्वोन्मुखी होगा। आपके सङ्गीत की पृष्ठभूमि उदार और गम्भीर बन जायेगी। हमारे यहाँ के अधिकांश संगीतकारों में यह अभाव पाया जाता है। हमारे भारतीय संगीतकार अधिकतर अशिक्षित हैं, वह अध्ययन की ओर से उदासीन हैं, अतएव उनका ज्ञान सीमित दायरे में रह जाता है। वे फिर सङ्गीत की दौड़ में विशेष आगे नहीं बढ़ पाते। यह भी प्रायः देखा जाता है कि उनके अन्दर सुन्दर और अलभ्य अनुभव हैं, किन्तु वे उन अनुभवों को प्रस्तुत करने की कला से पूर्ण अनभिज्ञ हैं, इसीलिये वे अपने सङ्गीत

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को शाश्वत नहीं बना पाते और न लोकप्रिय ही बना पाते हैं। सङ्गीत को किस प्रकार गुलदस्ते के समान काट-छांटकर दुरुस्त किया जाये, कैसे उसको विकसित किया जाये, कैसे एक रूप में अनेक रूपों का समन्वय किया जाये कि जिससे उसकी मौलिकता नष्ट न हो, कैसे विभिन्न तथ्यों का एकीकरण करके उनमें अनुरूपता लाई जाये, कैसे उसके विभिन्न रूपों को एक सूत्र में पिरोया जाये, किस प्रकार प्राचीन और नवीन पद्धतियों एवं शैलियों को आधुनिक सांचे में ढालकर उनका जीवन बढ़ाया जाये और किस प्रकार एक राग में से अनेक राग निकाले जायें, आदि अनेक समस्याएं हैं, जिन्हें वर्तमान सङ्गीतकार सुलझाने में घबरा जाता है। इन सब सांगीतिक समस्याओं को वही सङ्गीतज्ञ सुन्दर ढंग से सुलझा सकता है जिसने सङ्गीत के मूल तत्वों का भली भांति अध्ययन किया है, जो प्रमादी नहीं है, जो प्रत्येक सङ्गीत की पुस्तक को पढ़ने के लिये सदैव तैयार रहता है और उसके अनुकूल आचरण भी करता है। आपकी छोटी-मोटी लाइब्रेरी इस दिशा में बहुत सहायता कर सकती है, बशर्ते कि आपके अन्दर सफल सङ्गीतज्ञ बनने की पूर्ण इच्छा हो। मान लीजिये, आपकी आर्थिक स्थिति आपको कोई भी पुस्तक खरीदने के लिये अनुमति नहीं देती तो फिर आप उस अवस्था में हाथ पर हाथ रक्खे मत बैठे रहिये, अपितु किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में जाकर अपनी इच्छित पुस्तकों की खोज करिये और मिल जाने पर उनका अध्ययन कीजिये। जो व्यक्ति सफल सङ्गीतज्ञ बनने का दृढ़ संकल्प कर लेगा, उसे आर्थिक बाधाएं कभी नहीं रोक सकेंगी।

सङ्गीत का आदर्श है, ज्ञान के सुनहले रत्नों को एकत्रित करके जाज्वल्यमान प्रासाद का निर्माण करना। उसका आदर्श है सार्वभौमिक मानव-जीवन का ऐक्य एवं संगठन। सङ्गीतज्ञ को ऐसी सांगीतिक रचना का सृजन करना चाहिये जो प्रान्तों एवं देश की सीमाओं की विभिन्नताओं के रहते हुए भी एक अव्यक्त सूत्र में मानवहित तथा सहयोग के बिखरे हुए पल्लवों का बन्दनवार शिवं और कल्याण की भावना से कलामन्दिर के चारों ओर बांध सकने योग्य हो। इस रम्य आदर्श की पूर्ति तभी हो सकती है, जबकि आप अपने शास्त्रीय (थ्योरिटीकल) ज्ञान की अभिवृद्धि करेंगे। तभी आपका सङ्गीत शाश्वत जीवन का आकाश-दीप बन सकेगा। तभी आप ऐसे संगीत का सृजन कर सकेंगे जो आपकी दृष्टि को सर्वव्यापी बना सके। संकीर्णता के घने कुहरे को काट सके। आज हमारे सामने एक ही ध्वनि, एक ही रूप, बदले हुए सुन्दर आकारों में रक्खा जाता है। एक ही रचना को या एक ही राग को विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे परिधान पहिनाये जाते हैं; जैसे विभाकर की एक दीप्त रक्त वातायन के रंगीन शीशों से प्रसूत होकर अवनि के विशाल अञ्चल पर इन्द्र धनुष अंकित कर रही हो, जिसमें कोई स्थायित्व नहीं होता, जिसमें आंखों को चौंधियाने वाली चमक तो अवश्य होती है लेकिन आत्मा को आलोकित करने वाला दिव्य तेज नहीं। सङ्गीतकारों की यह परिस्थिति वास्तविक ज्ञान के अभाव में हो गई है। इधर हमारे सङ्गीतज्ञ अपने वास्तविक ज्ञान के अभाव में कुछ इधर-उधर भटक गये हैं और इन भटके हुओं का झुकाव पश्चिमी सङ्गीत की ओर हो गया है। पश्चिम के यथार्थवाद सांगीतिक साहित्य ने हमारे सांगीतिक व्यक्तित्व को प्रच्छन्न कर ही लिया है, किन्तु साथ ही हम संगीत की विभिन्न मर्यादाओं को लांघकर उच्छृंखलता के विशाल खण्डहर में भी जा गिरे, इसलिये हम राष्ट्र, वर्ग सम्प्रदाय में प्रेम के सरस गीतों को गुञ्जित न कर सके और न हम आज की भौतिकता के दामन से स्वार्थ एवं स्पर्धा के अस्तित्व को

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मिटा सके। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि आप अपने संगीत का सृजन संकीर्णता की परिधि में करें, ऐसा अर्थ आप कदापि न लगायें, लेकिन हां, अपनी मौलिकता के स्मृति-स्तम्भ पर विदेशी भावनाओं की पुष्पांजलि न चढ़ायें। हां, आप अपनी प्रतिभा की उपत्यका में सुव्यवस्थित ढंग से संगीत का राग इस प्रकार अलापें कि स्वरलहरी में भारतीय झन्कार हो और उस झन्कार में अन्तर्राष्ट्रीय संगीत का समन्वय हो। किन्तु समन्वय करते समय आप अपने जीवन की प्रबल धारा को विदेशी धरातल की ओर न मोड़ें, अपितु विदेशी जीवन की धारा को आप भारतीयता की पृष्ठभूमि पर प्रवाहित करना सीखें। दोनों धाराओं के समन्वय में भारतीय प्रतिभा सर्वोपरि रहे। यदि आपके अन्दर समन्वयप्रतिभा का अभाव है, तो आप विदेशी संगीत की ओर कभी न देखिये, क्योंकि दोनों धाराओं को मिलाने के लिये बहुत उच्चकोटि की प्रतिभा की आवश्यकता है, जोकि बिना नियमित अध्ययन के प्राप्त नहीं हो सकती।

स्वतन्त्र भारत में संगीत का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, अतएव आपको अपना सांगीतिक ज्ञान अधिक से अधिक मात्रा में बढ़ाना चाहिये। स्वतन्त्र भारत में ज्ञानवर्धन की अधिक आवश्यकता इसलिये भी है कि आपको विश्व के राष्ट्रों में अपनी सांस्कृतिक कला का प्रतिनिधित्व करना है। आजकल अन्य राष्ट्रों के सांस्कृतिक मण्डल अपने यहाँ आते हैं और अपने देश के दूसरे राष्ट्रों में जाते हैं। इन शिष्ट मण्डलों का ध्येय तभी पूरा हो सकता है, जबकि इनके सदस्य गण उच्चकोटि के प्रतिभाशील हों और वे अपनी अपूर्व प्रतिभा को अन्य राष्ट्र के नेताओं व कलाकारों के सन्मुख अभिव्यक्त कर सकें, तभी तो स्वतन्त्र भारत का सांस्कृतिक गौरव बढ़ेगा। इन्हीं सांस्कृतिक मान्यताओं पर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से मैत्री स्थापित करता है। इसलिये सांस्कृतिक थाती जिस देश की जितनी उच्च होगी, वह देश उतना ही अधिक दूसरे देशों को प्रभावित कर सकेगा। अतः अपने देश के मान और मर्यादा की रक्षा के लिए प्रत्येक संगीतकार का पवित्र कर्तव्य है कि वह पुस्तकालय रखने की आदत डाले।

(२) स्वर-विज्ञान और संगीत

स्वर की विभिन्न धाराओं को सांगीतिक रूप देने के लिये स्वर की पूर्ण फिलोस्फी (तत्वज्ञान) समझ लेना पूर्ण आवश्यक है, क्योंकि बिना तत्वज्ञान के समझे हुए आप उसका सांगीतिक रूप सुन्दर ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकते। स्वर के उच्चारण में दस प्रकार के मोड़ आते हैं। पहले मोड़ पर स्वर को शनैः प्रसारित करना चाहिए। दूसरे मोड़ पर प्रसारित किये हुए स्वर में गूँज भरनी चाहिये। तीसरे मोड़ पर गुञ्जित वायुमण्डल में गीतों के भावों का इस प्रकार सम्पादन करना चाहिए कि प्रत्येक भाव स्वर की गहराई में उपयुक्त हो जाय। चौथे मोड़ पर स्वर में घनत्व शक्ति स्थिर करनी चाहिए, पांचवें मोड़ पर आरोह के लिये जितना भी अधिक हो सके उतना अधिक स्वर को फैलाइये, जिससे सम्पूर्ण आरोह का दबाव पूर्णरूपेण बैठ जाये। छठवें मोड़ पर स्वर-संधान करके गीत का प्रथम क्लाइमेक्स (सीढ़ी) बनाइये, जिससे आप गीत-सौंदर्य को स्थित कर सकें और गीत-अभिलेखनकर्ता को इतना समय मिल जाये कि वह आपके स्वर-चित्र की पूर्ण प्रतिलिपि भर सके। सातवें मोड़ पर अवरोह का प्रस्तुतीकरण करके, थोड़े से झटके के साथ स्वर को अधिक व्यापक बनाकर उसमें पुनः गूँज पैदा कीजिये। आठवें मोड़

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पर गीत का दूसरा क्लाइमेक्स निर्माण कीजिये, जहां आपको स्वर का घनत्व इतना अल्प कर देना होगा, जिससे उसका सांगीतिक रूप सुन्दर बन सके। नवें मोड़ पर स्वर में इतने प्रवाह का आविर्भाव कीजिए कि उसकी गतिशीलता में गीत के भावों को स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ने के लिये स्वस्थ वातावरण मिल जाये। अन्तिम, दसवें मोड़ पर स्वर का तीसरा क्लाइमेक्स बनाते हुए आरोह-अवरोह की दोनों गतियों को "प्रलपीस विन्दु" पर केन्द्रित कीजिये। प्रायः यह देखा जाता है कि गायक गीत गाते वक्त स्वर के उपर्युक्त रूपों से अनभिज्ञ होकर गाता है, जिससे उसके गाए हुए गीतों को अभिलेखित करने में अभिलेखनकर्ता को कठिनाई पड़ती है। उसकी सहूलियत के लिये आपको स्वर उसी दिशा में मोड़ना पड़ेगा, जैसा कि स्वर की शिल्पज्ञता आपको विवश करे। स्वर की शिल्पज्ञता की पूरी थ्योरी आपको जाननी चाहिए। यह थ्योरी लगभग वही है जो आपको ऊपर निर्देश की जा चुकी है। स्वरविज्ञान की इस व्यापक थ्योरी से गाए हुए गीत पर गायक को अधिक परिश्रम एवं सावधानी बरतनी होगी। प्रारम्भ में कुछ बाधायें अवश्य आ सकती हैं, किन्तु जब वह परिस्थिति का अभ्यस्त हो जायेगा तब उसको यही कार्य सरल हो जायेगा। वास्तव में स्वर की अनेक प्रक्रियाएँ हैं, इन प्रक्रियाओं की अनेक उपप्रक्रियाएँ भी हैं। जिनमें से मुख्य यह हैं:—"कीवल्य" 'चीणोल्य' 'माणील्य'। 'कीवल्य' में स्वर अर्द्ध घनत्व होता है, 'चीणोल्य' में स्वर का पूर्ण घनत्व बनकर रुपये जैसी टंकार होने लगती है। जिससे स्वर में स्पष्टता, स्वच्छंदता पूर्णरूपेण आ जाती है और 'माणील्य' में स्वर के तीन संयुक्त घुमाव होते हैं, जिनको आप दीपक राग में सुगमता से अभिव्यक्त कर सकते हैं। 'माणील्य' का प्रयोग विशेष रागों में ही होता है, हर स्थान पर लागू नहीं हो सकता।

(३) गोष्ठियाँ और सङ्गीत

सांगीतिक जीवन को प्रभावशाली एवं गौरवपूर्ण बनाने के लिये गोष्ठियों का भी अपना मूल्य है। इनके अभाव में सङ्गीतकार की प्रतिभा ऐसी मालूम पड़ती है मानो किसी सरोवर को चारों तरफ से सीमित कर दिया गया हो तथा जिसमें पानी के बहाव का कोई साधन न हो और न पानी के आने का। तो बन्द पानी की क्या दशा होगी? यही कि वह कुछ दिनों में सड़ जायगा और उसमें बदबू पैदा हो जायेगी!! इसी प्रकार आपका भी यही हाल हो सकता है, यदि आप अपनी गतिशीलता को सीमित करके चारों तरफ के आवागमन से उसे अवरुद्ध कर लेंगे तो फिर आपके अन्दर प्रवाह नहीं रहेगा और जब मनुष्य की प्रतिभा का प्रवाह समाप्त हो जाता है, तो फिर वह पतन के गर्त में गिरता चला जाता है और एक दिन वह सम्पूर्ण रूप से गिर जाता है। फिर वहाँ से उठना असम्भव सा हो जाता है। गोष्ठियां जीवन के झांड़-झंकाड़ों का विनाश करती हैं और जो जड़ता का कुहरा जीवन के इर्द-गिर्द आच्छादित हो जाता है, उसको छितरा देती हैं तथा जीवन को उत्साह, स्फूर्ति और नवीन भावनाओं से परिपूर्ण कर देती हैं।

गोष्ठियाँ सङ्गीतकारों के लिये विशेष उपयोगी हैं, क्योंकि गोष्ठियों के अवसर पर अनेक कलाकारों का मिलन होता है, विचार विमर्श होता है और होता है कला का

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परस्पर आदान-प्रदान। जिससे सङ्गीतकारों के वातावरण में एक नूतन चेतना का सृजन हो जाता है जो कि उनके विकास का प्रतीक बनती है। सङ्गीतकारों को गोष्ठियों में गाने से बिल्कुल संकोच नहीं करना चाहिये, यदि वे संकोचवश उनमें शामिल नहीं होते तो उनके सांगीतिक ज्ञान की परिधि सीमित रह जायेगी। सफल सङ्गीतज्ञ के लिये समय-समय पर गोष्ठियों में भाग लेते रहना उसके विकास का प्रकाश-दीप है। ब्रिटेन के विख्यात संगीतज्ञ मिस्टर ईलविन उल्फ ने सफल सङ्गीतज्ञ बनने के उपकरणों में लिखा है—"वे व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं जिनको अधिक से अधिक गोष्ठियों में शामिल होने का सुअवसर प्राप्त होता रहता है, क्योंकि उनके जीवन का विकास कला की सही दिशा की ओर होगा। वे कला के शाश्वत स्वरूप का निर्माण करने में पूर्ण सफल होंगे। वास्तव में गोष्ठियाँ सङ्गीतज्ञों के लिये संजीवनी शक्ति कही जायँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। विश्व के अनेक सङ्गीतज्ञों ने सिर्फ गोष्ठियों में शामिल होने के बल पर ही सङ्गीत के क्षेत्र में सफलता उपलब्ध की है, जैसे मलाया के मिस्टर थीवन्स, न्यूयार्क के मिस्टर रेडयोट और स्वीडन के मिस्टर ग्रीनविस। लेकिन इन गोष्ठियों में आपको स्पष्ट हृदय एवं खुली हुई आँखों द्वारा जाना चाहिये, ताकि आप वहाँ के महत्वपूर्ण सांगीतिक उपादानों एवं वातावरण को ग्रहण करने में पूर्ण सफल हों। सिर्फ शामिल होने से ही काम न चलेगा, जबतक कि आप सतर्क होकर हर चीज़ को अवलोकन करके प्राप्त न करेंगे, तब तक नग्न हृदय एवं मस्तिष्क से जाकर कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। और फिर एक सङ्गीतज्ञ को तो और भी सतर्क एवं तीव्र बुद्धि का होना चाहिये ताकि वह सङ्गीत की प्रत्येक हलचल को, प्रत्येक चहल-पहल को सुगमता से पकड़ सके। अगर आप सफल संगीतज्ञ बनना चाहते हैं तो आपको समय-समय पर गोष्ठियों में अवश्य सक्रिय भाग लेना होगा।"

और देखिये फ्रान्स के महान् कलाकार मिस्टर वानडीविस क्या कहते हैं:—"जब सांगीतिक शृंखला में अस्त-व्यस्तता आ जाती है, जब सांगीतिक जीवन विशृंखल हो जाता है, नव सांगीतिक तथ्यों में परस्पर एकसूत्रता नहीं रहती, तब यह गोष्ठियाँ सङ्गीत के रूप में अनुरूपता लाती हैं और उसको मनोरम बनाती हैं। जिस प्रकार बिना लहरों के सागर का सौन्दर्य तुच्छ है क्योंकि बिना लहरों के सागर में गतिशीलता नहीं रहती, जो कि उसका जीवन है; ठीक इसी प्रकार गोष्ठियां सङ्गीतकार के विशाल जीवन में लहरों के समान हैं जो उसके जीवन में प्रवाह लाती रहती हैं। बिना प्रवाह के जीवन का क्या मूल्य? प्रवाहपूर्ण जीवन ही जीवन है।"

इन गोष्ठियों को आप सङ्गीतकारों के जीवन का 'मार्ग-चिन्ह' भी कह सकते हैं, क्योंकि यहीं से उनको अपनी कला के सन्तुलन का सही पता चलता रहता है, क्योंकि यहाँ उनकी कला कसौटी पर चढ़ाई जाती है, और तब पता लगता है कि उनकी कला ओजपूर्ण है अथवा नहीं। कसौटी पर चढ़ने के बाद ही किसी चीज के खरे-खोटे होने का ज्ञान हो सकता है, उससे पूर्व नहीं। जब आपको अपनी कला की परख पूर्ण रूप से ज्ञात हो जाये, तब आप अपना सही कदम उठा सकते हैं और फिर आप कला की सही दिशा की ओर बढ़ सकते हैं। गोष्ठियों से कला का परिष्कार एवं सुन्दरतम रूप निर्मित होता रहता है।

गोष्ठियों में शामिल न होने से आपको यह नहीं मालूम पड़ सकता कि आप कितने पानी में हैं? आपकी कला में क्या-क्या ख़ामियाँ हैं और उनको कैसे ठीक किया जा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सकता है। वहां आपको कुछ मौलिक सुझाव भी मिल सकते हैं। लोकप्रियता एवं कीर्ति का उपार्जन बिना गोष्ठियों के नहीं हो सकता। कलाकार कला की साधना जन-समाज को नव-सन्देश प्रदान करने के लिये करता है। अगर आप इन सांगीतिक उत्सवों में शामिल नहीं होंगे तो अपने नव-सन्देश को जनता-जनार्दन तक कैसे पहुंचा सकते हैं और कैसे सामान्य लोग आपकी कला से लाभ उठा सकते हैं ? लोक-जीवन को सुन्दरतम बनाने में भी यह गोष्ठियाँ पूर्ण योग देती हैं। जहां ये कलाकारों को सफलता की देदीप्यमान मंजिल की ओर प्रेरित करती हैं, वहाँ दूसरी ओर यह लोकजीवन में भी आशा और विश्वास का जीवन-प्रकाश फैलाती हैं और उनके अन्धकार को नष्ट करने में भी पूर्ण योग देती हैं। सङ्गीत की अभिवृद्धि में गोष्ठियों का अपरिमित मूल्य है, जिसका हम सहज में अंकन नहीं कर सकते ।

अन्त में आपसे अनुरोध है कि सफल सङ्गीतज्ञ बनने के लिये 'पुस्तकालय और संगीत' का ध्यान रखिये और फिर गोष्ठियों और संगीत को अनुपातिक ढंग से अपनाने में सक्रिय क़दम उठाइये ! 'स्वर-विज्ञान' का समझना भी अनिवार्य है, यह तीनों तथ्य संगीतज्ञ के लिये महान् पुष्टिकारी एवं शक्तिशाली हैं तथा जीवन को प्रदीप्त करने वाले हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भारतीय संगीत का इतिहास

सङ्गीत कला की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? इस विषय पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है:—

(१) सङ्गीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्माजी द्वारा हुई। ब्रह्माजी ने यह कला शिवजी को दी और शिव के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी को इसीलिए "वीणा पुस्तक धारणी" कहकर सङ्गीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वती जी से सङ्गीतकला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ, नारदजी ने स्वर्ग के गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराओं को सङ्गीत-शिक्षा दी। वहां से ही भरत,नारद और हनुमान आदि ऋषि सङ्गीतकला में पारंगत होकर भू-लोक (पृथ्वी) पर सङ्गीतकला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।

(२) एक ग्रन्थकार के मतानुसार, नारद जी ने अनेक वर्षों तक योग-साधना की तब महादेव जी ने उन पर प्रसन्न होकर सङ्गीत कला प्रदान की। पार्वतीजी की शयन मुद्रा को देखकर शिवजी ने उनके अङ्ग-प्रत्यंगों के आधार पर रुद्रवीणा बनाई और अपने पांच मुखों से, पांच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठा राग पार्वती जी के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्रीराग प्रकट हुए तथा पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। "शिवप्रदोष" स्तोत्र में लिखा है कि तीन जगत की जननी गौरी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गये और उनका स्तुति-गान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु तथा ब्रह्मा ने करताल बजाना आरम्भ किया, लक्ष्मी जी गाने लगीं और विष्णु भगवान मृदङ्ग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिये, गन्धर्व, यक्ष, पतग, उरग, सिद्ध साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सरागण आदि सभी उपस्थित थे।

(३) 'संगीत दर्पण' के लेखक दामोदर पण्डित के मतानुसार भी संगीत की उत्पत्ति ब्रह्माजी से ही आरम्भ होती है। उन्होंने लिखा है:—

द्रुहिणेन यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरते न च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तदम् ॥

अर्थात्—ब्रह्माजी (द्रुहिण) ने जिस सङ्गीत को शोधकर निकाला, भरतमुनि ने महादेव जी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है, वह मार्गी सङ्गीत कहलाता है।

इस विवेचन से प्रथम मत का कुछ अंशों में समर्थन होता है। आगे चलकर इसी पंडित ने ७ स्वरों की उत्पत्ति पक्षियों द्वारा इस प्रकार बताई है:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गांधार, कौवा से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत और हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई।

(४) फ़ारसी के एक विद्वान का मत है कि हज़रत मूसा जब पहाड़ों पर घूम-घूम कर वहां की छटा देख रहे थे, उसी वक्त ग़ैब से एक आवाज़ आई (आकाशवाणी हुई) कि "या मूसा हक़ीक़ी तू अपना असा (एक अस्त्र जो फ़क़ीरों के पास होता है) इस पत्थर पर मार।" यह आवाज़ सुनकर हज़रत मूसा ने अपना असा ज़ोर से उस पत्थर पर मारा तो पत्थर के सात टुकड़े होगये और हर एक टुकड़े में से पानी की धारा अलग-अलग बहने लगी। उसी जलधारा की आवाज़ से अस्सलामलेक हज़रत मूसा ने सात सुरों की रचना की, जिन्हें सा रे ग म प ध नि कहते हैं।

(५) एक अन्य फारसी विद्वान् का कथन है कि पहाड़ों पर "मूसीक़ार" नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी नाक में ७ सूराख बांसुरी की भांति होते हैं, उन्हीं ७ सूराखों से ७ स्वर ईजाद हुए।

(६) पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के मतानुसार सङ्गीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुई, जिस प्रकार एक बालक रोना, चिल्लाना, हंसना आदि क्रियाएं मनोविज्ञान की आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है; उसी प्रकार सङ्गीत का प्रादुर्भाव मानव में मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।

(७) जेम्स लॉंग के मतानुयायिओं का भी यही कहना है कि पहिले मनुष्य ने बोलना सीखा, चलना-फिरना सीखा और फिर शनैः-शनैः क्रियाशील हो जाने पर उसके अन्दर सङ्गीत स्वतः उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार सङ्गीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत पाये जाते हैं। इनमें कौनसा मत ठीक है, यह कहना कठिन ही है, अतः सङ्गीतकला का जन्म कैसे हुआ, कब हुआ? इस पर अपना कोई निर्णय न देकर हम आगे बढ़ना ही उचित समझते हैं:—

प्राचीन ग्रन्थों में सङ्गीत के चार मुख्य मत पाये जाते हैं (१) शिवमत या सोमेश्वर मत (२) कृष्णमत या कल्लिनाथ मत (३) भरत मत और (४) हनुमत मत।

सङ्गीत के इतिहास काल का विभाजन

भारतीय सङ्गीत के इतिहास को निम्नांकित ४ भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) अति प्राचीनकाल (वैदिक काल) २००० ईसा पूर्व से १००० ईसा पूर्व तक।

(२) प्राचीन काल—वैदिक सांस्कृतिक परम्परा समाप्त हो जाने के बाद। १८०० ईसापूर्व से, सन् ८०० ई० तक।

(३) मध्यकाल (मुसलिम काल) ८०० ई० से १८०० ई० तक।

(४) आधुनिक काल (अंग्रेजी शासन काल) १८०० ई० से १९५० ई० तक।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(१) अति प्राचीन (वैदिक काल)

[२००० ई० पूर्व से १००० ईसा पूर्व तक]

वेदों में सङ्गीत

इस वैदिक काल में सङ्गीत का प्रचार था, इसका प्रमाण हमें वेदों से भली प्रकार मिलता है। ऋग्वेद में मृदङ्ग, वीणा, वंशी, डमरु आदि वाद्य यन्त्रों का उल्लेख मिलता है। और सामवेद तो सङ्गीतमय है ही। कहा जाता है कि सामगान में पहले केवल तीन स्वरों का प्रयोग होता था जिनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते थे। आगे चलकर एक-एक करके स्वर और बढ़ते गये और इस वैदिक काल में ही सामगान सप्त स्वरों में होने लगा। इसका प्रमाण "सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः" माण्डूकीशिक्षा की इस पंक्ति से भी मिलता है।

पाणिनिशिक्षा तथा नारदीयशिक्षा में निम्नलिखित श्लोक मिलता है। जिसके आधार पर सप्त स्वर उनके उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अन्तर्गत इस प्रकार आते थे:—

उदात्ते निषादगांधारौ अनुदात्त ऋषभधैवतो।
स्वरित प्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपंचमा ॥

अर्थात्,

उदात्त		अनुदात्त		स्वरित
नि ग	०	रे ध	०	सा प

याज्ञवल्कशिक्षा में भी इसी प्रकार का वर्गीकरण मिलता है। वैदिक काल में सङ्गीत गायन के साथ-साथ नृत्यकला भी प्रचलित थी, इसका प्रमाण ऋग्वेद (५।३३।६) में आया है "नृत्यमनो अमृता"। लिंग पुराण के अनुसार शिव के प्रधान गण नान्दिकेश्वर थे। इन्होंने भारतार्णव नामक एक विशाल ग्रन्थ नृत्यकला पर लिखा था। बाद में इसका संक्षिप्तीकरण "अभिनय दर्पण" में हुआ। नृत्य करती हुई अनेक प्राचीन मूर्तियां भी इसका प्रमाण देती हैं कि वैदिक काल में नृत्यकला प्रचलित थी। देवताओं द्वारा सोमरस पान करके नृत्य करने की प्रथा से भी सङ्गीत और नृत्य की प्राचीनता का समर्थन होता है।

(२) प्राचीनकाल

[१००० ईसा पूर्व से सन् ८०० ई० तक]

पौराणिक और बौद्धकाल

इस समय का पूर्वार्ध भाग अर्थात् १००० ईसा पूर्व से १ ईसवी तक का समय पौराणिक और बौद्धकाल के अन्तर्गत आता है। इस काल में सङ्गीत का प्रचार काफी था लेकिन उसके बारे में पूर्ण जानकारी मिलना कठिन है। बौद्ध ग्रन्थों और जैन आगमों में जातियों आदि की विशद चर्चा मिलती है। कुछ वीणाओं के चित्र भी प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा इस काल के सङ्गीत पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

महाकवि कालिदास

इसी काल में महाकवि कालिदास (४०० ई०) द्वारा सङ्गीत और कविता का प्रचार चारों ओर हो चुका था। राज-दरबारों में गायक-वादक सम्मानित होने लगे थे। कालिदास ने अपनी रचनाओं में सङ्गीत का पुट देकर आश्चर्यजनक प्रगति की। उस समय कविता और सङ्गीत के सम्मिश्रण से सङ्गीत में एक नई चेतना जागृत करने का श्रेय महाकवि कालिदास को ही है।

रामायण और महाभारत

हमारे प्रसिद्ध ग्रंथ रामायण और महाभारत भी इसी काल में लिखे गये। अर्थात् महाभारत का काल ५०० ईसा पूर्व से २०० ईसवी तक और रामायण-काल ४०० ईसा पूर्व से २०० ईसवी तक का माना जाता है।

रामायण में एक वर्णन के अनुसार जब लक्ष्मण जी सुग्रीव के अन्तरमहल में प्रवेश करते हैं, तो वहां वीणा वादन के साथ शुद्ध गायन सुनते हैं। रावण को भी सङ्गीत-शास्त्र का प्रकांड विद्वान् बताया गया है। इसी प्रकार महाभारत में भी सात स्वरों तथा गांधार ग्राम का वर्णन मिलता है। इन दोनों ही ग्रन्थों में सङ्गीत तथा वाद्य यन्त्रों का विशेष उल्लेख मिलता है। भेरी, दुन्दुभी, मृदङ्ग, घट, डिमडिम, मुद्दुक, आदम्बर, वीणा आदि वाद्यों का उल्लेख हम रामायण में देखते हैं। इससे विदित होता है कि महाभारत और रामायण-काल में भी सङ्गीतकला प्रचार में रही।

भरत का नाट्यशास्त्र

अनेक व्यक्तियों के मत से नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत का काल भी यही है, जबकि कुछ लोगों ने भरत को चौथी शताब्दी का माना है और कुछ के मत से भरत का काल ईसा से बहुत पूर्व है; क्योंकि भरत एक गोत्रवाची नाम हो गया था। नट और अभिनेताओं को 'भरत' कहा जाने लगा था। पाणिनि के ग्रन्थ में भी भरत की चर्चा मिलती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदि भरत कोई अवश्य रहे होंगे। वाल्मीकि रामायण में भरत के कुछ सूत्रों का प्रतिपादन मिलता है।

'नाट्यशास्त्र' में गीत, वाद्य, नृत्त, नाट्य, श्रुति, स्वर, राग, जाति, अलंकार, मूर्च्छना आदि सभी का वर्णन सूत्ररूप में मिलता है। उस समय नाट्य और संगीत को अलग-अलग नहीं माना जाता था। सभी एक दूसरे के पूरक थे। अतः 'नाट्यशास्त्र' में जितना विशद और प्रामाणिक वर्णन मिलता है उतना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। बाद के सभी ग्रंथकारों ने 'नाट्यशास्त्र' के सूत्रों पर चर्चा और विचार किया है। इसलिये हम आज 'नाट्यशास्त्र' को सङ्गीत का आदि ग्रन्थ मानते हैं। यथार्थ में नारद सम्प्रदाय और भरत सम्प्रदाय दो भिन्न सम्प्रदाय रहे हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार भरत को भी ब्रह्मा से ही नाट्य की शिक्षा मिली है और तब उन्होंने इस पंचम वेद को प्रचारित किया। उसके सिद्धान्त सनातन हैं।

भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा लिखित "दत्तिलम्" ग्रन्थ का उल्लेख भी मिलता है। यह ग्रन्थ पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का कहा जाता है, जबकि ईसा की दूसरी शताब्दी में दत्तिल का एक शिलालेख मिलता है। दत्तिल ने भरत के सूत्रों का ही प्रतिपादन किया है।

मतङ्ग का बृहद्देशी ग्रन्थ

८ वीं शताब्दी में मतङ्ग मुनि प्रणीत बृहद्देशी ग्रन्थ मिलता है, जिसमें ग्राम और मूर्छना का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। "राग" शब्द का स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ में पाया जाता है। जबकि भरत ने केवल एक ही स्थान पर जातियों की चर्चा करते समय

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ग्राम-रागों का उल्लेख किया है। मतङ्ग के समय ७ प्रकार की ग्राम जातियाँ प्रचलित थीं, जिनमें एक "वट्ट" राग की जाति भी है।

नारद कृत नारदीय शिक्षा

सातवीं शताब्दी के लगभग "नारदीय शिक्षा" नामक एक ग्रन्थ नारद का लिखा हुआ मिलता है। यहां पर पाठकों को यह बता देना भी उचित होगा कि यह वे नारद नहीं हैं जो देवर्षि नारद के नाम से प्रसिद्ध थे, वरन् यह अपने समय के दूसरे ही नारद हैं। इस ग्रन्थ में भी सामवेदीय स्वरों को विशेष महत्व देते हुए ७ ग्रामरागों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

१ षाडव, २ पञ्चम, ३ मध्यम, ४ षड्जग्राम, ५ साधारित, ६, कैशिकमध्यम और ७ मध्यमग्राम।

सातवीं और आठवीं शताब्दियों में दक्षिण भारत में भक्ति-आन्दोलन का विशेष जोर रहा, अतः भक्ति और सङ्गीत के सामंजस्य द्वारा जगह-जगह कीर्तन और भजन गाये जाने लगे, इस प्रकार धार्मिक भावना का बल पाकर इस काल में सङ्गीत का यथेष्ट प्रचार हुआ।

नारद कृत सङ्गीत मकरंद

आठवीं शताब्दी में नारद का एक और ग्रंथ सङ्गीत मकरंद प्रकाश में आया, जिसमें राग-रागनियों की कल्पना पुरुष राग और स्त्री रागों के रूप में प्रथम बार की गई। कहा जाता है कि इसी के आधार पर आगामी ग्रन्थकारों ने राग-रागनी वर्गीकरण किये।

(३) मध्य काल [मुसलिम काल]

[सन् ११०० ई० से १८०० ई० तक]

मुसलमानों का आगमन भारत में ११ वीं शताब्दी में हुआ। इसी समय से भारतीय सङ्गीत में परिवर्तन आरम्भ हुआ। भारतीय सङ्गीत शास्त्र (Theory) उस समय तक संस्कृत भाषा में होने के कारण मुसलमान उसे समझने में असमर्थ रहे, फिर भी गायन-वादन (क्रियात्मक सङ्गीत) में उन्होंने अच्छी उन्नति की। नये-नये रागों का आविष्कार किया एवं तरह-तरह के नवीन सङ्गीत वाद्य बने, जिनका तत्कालीन मुसलिम बादशाहों द्वारा आदर हुआ और गायक-वादकों का सम्मान होने लगा।

इसके बाद १२ वीं शताब्दी में सङ्गीत की दशा विशेष अच्छी न रही, क्योंकि इस काल में मुहम्मद गौरी तथा अन्य मुसलिमों द्वारा हिन्दू राजाओं से युद्ध होता रहा, जिसके कारण देश में अव्यवस्था फैली, अतः सङ्गीत-प्रचार के मार्ग में भी बाधा पड़ना स्वाभाविक ही था।

जयदेव कृत गीतगोविन्द

१२ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में "गीतगोविन्द" नामक संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना हुई। उसके रचयिता प्रसिद्ध कवि और सङ्गीतज्ञ जयदेव हैं, जिन्हें उत्तर भारत का प्रथम गायक होने का सम्मान प्राप्त था। गीतगोविंद में राधा-कृष्ण सम्बन्धी प्रबन्धगीत हैं, जिन्हें आज भी अनेक गायक

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ताल-स्वरों में बांधकर गाते हैं। जयदेव कवि का जन्म बङ्गाल में बोलपुर के निकटस्थ केन्दुला नामक स्थान में हुआ था, जहां पर अब भी प्रतिवर्ष सङ्गीत-समारोह मनाया जाता है।

गीतगोविन्द की विशेषता पर मुग्ध होकर सर एडविन आरनॉल्ड (Sir Edvin Arnald) ने अँग्रेजी में इसका अनुवाद "The Indian Song of Songs" अर्थात् "भारतीय गीतों के गीत" इस नाम से किया है।

शार्ङ्गदेव कृत सङ्गीतरत्नाकर

१३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पण्डित शार्ङ्गदेव ने "सङ्गीत-रत्नाकर" ग्रन्थ की रचना की। इसमें नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का विवेचन भली प्रकार किया गया है। दक्षिणी और उत्तरी सङ्गीत विद्वान इस ग्रन्थ को सङ्गीत का आधार ग्रन्थ मानते हैं। आधुनिक ग्रन्थों में भी सङ्गीत रत्नाकर के अनेक उद्धरण पाठकों ने देखे होंगे। शार्ङ्गदेव ने अपने इस ग्रन्थ में मतङ्ग से अधिक विवरण अवश्य दिया है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से मत लगभग एक सा है।

शार्ङ्गदेव का समय १२१० से १२४७ ई० के मध्य का माना जाता है, यह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव वंशीय राजा के दरबारी सङ्गीतज्ञ थे।

इसके पश्चात् (१३००—१८०० ई०) सङ्गीत का विकास-काल माना जाता है। १३ वीं शताब्दी के समाप्त होते ही अर्थात् १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दक्षिण पर यवनों के आक्रमण होने से देवगिरि यादव वंश नष्ट हो गया। जिसके फलस्वरूप भारतीय सङ्गीत और सभ्यता पर भी यवनों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। इसी समय मुसलिमों द्वारा फारस के रागों का आगमन भारत में प्रारम्भ हो गया। दिल्ली का शासन सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के हाथ में था, इसी समय (१२१६—१२६६ ई०) में सङ्गीतकला की विशेष उन्नति हुई।

अमीर खुसरो का समय

इसी समय के लगभग खिलजी के दरबार में हजरत अमीर-खुसरो नाम के एक प्रसिद्ध और कुशल गायक राज-मन्त्री थे, इन्होंने अनेक नवीन राग, नवीन वाद्य और तालों की रचना की, इससे सङ्गीतकला विकास की ओर अग्रसर हुई। इनके विषय में कहा जाता है कि अमीरखुसरो ही वह प्रथम तुर्क थे जिन्होंने अपने देश के रागों को भारतीय सङ्गीत में मिलाकर एक नवीनता पैदा की।

कहा जाता है कि गोपाल नायक नामक प्रसिद्ध गायक भी इसी दरबार में आगये थे और अमीरखुसरो से उनकी सङ्गीत-प्रतियोगिता भी दिल्ली में हुई।

अमीरखुसरो द्वारा आविष्कृत गीतों के प्रकार, ताल तथा साजों का उल्लेख भी यहां पर संक्षिप्त रूप में कर देना अनुचित न होगा:—

गीतों के प्रकार—गजल, कव्वाली, तराना, खमसा, ख्याल।

राग—जीलफ़, साजगिरी, सरपर्दा, यमन, रात की पूर्या, बरारी, तोड़ी, पूर्वी इत्यादि।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तालें—झूमरा, आड़ा चौताला, सूलफाक, पश्तो, फरोदस्त, सवारी इत्यादि।
वाद्य—सितार, तबला।

गोपाल नायक ने कुछ रागों का भी आविष्कार किया। जिनमें पीलू, बडहंस सारंग और विरम् उल्लेखनीय हैं।

लोचन कृत राग-तरंगिणी

१५ वीं शताब्दी में लोचन कवि ने हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति पर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रागतरंगिणी' लिखा, कुछ लेखक लोचन का समय १२ वीं शताब्दी बताते हैं, किन्तु लोचन कवि ने अपने ग्रन्थ में जयदेव और विद्यापति के उद्धरण दिये हैं। ये दोनों शास्त्रकार क्रमशः १२ वीं और १४ वीं शताब्दी के हैं अतः लोचन का समय इस हिसाब से १२ वीं शताब्दी ठीक नहीं बैठता। इसमें प्राचीन राग-रागिनी पद्धति को छोड़कर थाट पद्धति अपनाई गई है। इन्होंने सभी जन्यरागों को १२ जनक मेलों (थाटों) में विभाजित किया है, अर्थात् कुल १२ थाट मानकर उनसे अनेक राग उत्पन्न किये हैं। अपना शुद्ध थाट इन्होंने वर्तमान काफी थाट के समान माना है। रागतरंगिणी के अधिकांश भाग में विद्यापति के गीतों पर विवेचन है।

कल्लिनाथ द्वारा रत्नाकर की टीका

१४५६-१४५७ ई० के लगभग विजयनगर के राजा के दरबार में संगीत के सुप्रसिद्ध पंडित कल्लिनाथ थे। इन्होंने शार्ङ्गदेव कृत संगीतरत्नाकर की टीका विस्तृत रूप से लिखी। यह टीका यद्यपि संस्कृत भाषा में ही थी तथापि उसके द्वारा अनेक संगीत-शास्त्रकारों ने यथोचित लाभ उठाया।

सुलतान हुसेन शर्की

पन्द्रहवीं शताब्दी में (१४५८-१४६६ ई०) जौनपुर के बादशाह सुलतान हुसेन शर्की संगीत कला के अत्यन्त प्रेमी हुए हैं। इन्होंने ख्याल गायकी (कलावन्ती ख्याल) का आविष्कार किया एवं अनेक नवीन रागों की रचना की। जैसे, जौनपुरी-तोड़ी, सिन्धु-भैरवी, रसूली-तोड़ी, १२ प्रकार के श्याम, जौनपुरी, सिन्दूरा इत्यादि।

इसी समय अर्थात् १४८५-१५३३ ई० के बीच उत्तरी भारत में भक्ति-आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। भजन-कीर्तन के रूप में सङ्गीत का जगह-जगह उपयोग होने लगा। साथ ही साथ बंगाल में चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भगवद्भक्तों द्वारा संकीर्तन का प्रचार हुआ, जिसके द्वारा सङ्गीत को भी यथेष्ट बल प्राप्त हुआ।

रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि

सन् १५५० ई० के लगभग कर्नाटक सङ्गीत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ "स्वरमेलकलानिधि" रामामात्य द्वारा लिखा गया। जिसमें बहुत से रागों का वर्णन दिया गया है। यद्यपि उत्तर भारत की सङ्गीत पद्धति से इस ग्रंथ का सीधा सम्बन्ध नहीं है तथापि इसका अध्ययन सङ्गीत-जिज्ञासुओं के लिये अब भी आवश्यक समझा जाता है। प्रसन्नता की बात है कि सङ्गीत कार्यालय, हाथरस द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकबर का समय

सोलहवीं शताब्दी (१५५६-१६०५ ई०) में सङ्गीत की विशेष उन्नति, हुई, यह बादशाह अकबर का समय था। अकबर सङ्गीत के विशेष प्रेमी थे,इनके दरबार में ३६ सङ्गीतज्ञ थे। जिनमें प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन, बैजूबावरा, रामदास, तानरंग खां के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

तानसेन और बैजूबावरा

इससे पहले तानसेन राजा रामचन्द्र के यहाँ रहते थे, इनके संगीत की प्रशंसा सुनकर अकबर ने तानसेन को अपने दरबार में प्रधान गायक के रूप में रक्खा। कहा जाता है कि तानसेन और बैजूबावरे की संगीत-प्रतियोगिता भी एक बार हुई। तानसेन ने कुछ रागों का आविष्कार भी किया, जिनमें दरबारीकान्हरा, मियां की सारंग, मियां की मल्हार इत्यादि रागों के नाम हैं। तानसेन के संगीत से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य भी होगये थे, बाद में यह शिष्य वर्ग दो भागों में बँटगया:—(१) रबाबिये, जो तानसेन द्वारा आविष्कृत रबाब बजाते थे और (२) बीनकार, जो वीणा बजाते थे। बीनकारों के प्रतिनिधि रामपुर के वज़ीर खां तथा रबाबियों के प्रतिनिधि मोहम्मद अली खां रामपुर रियासत वाले माने जाते थे।

स्वामी हरिदास

अकबर के समय में ही स्वामी हरिदास वृन्दाबन के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ महात्मा हुए हैं। इनका जन्म सम्वत् १५६६ भाद्रपद शुक्ला ८ (सन् १५१२ ई०) में हुआ, तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। स्वामी जी के शिष्यों द्वारा संगीत का प्रचार अनेक नगरों में भली प्रकार हुआ। कहा जाता है कि स्वामी हरिदास जी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। इनके विषय में एक कथा इस प्रकार बताई जाती है कि एक दिन तानसेन से अकबर पूछ बैठे कि तानसेन! ऐसा भी कोई गायक है जो तुम से भी सुन्दर गाता हो। इस पर तानसेन ने अपने गुरु स्वामी हरिदास का नाम बताया। अकबर ने उनका गायन सुनने की इच्छा प्रकट की, किन्तु तानसेन ने कहा कि दरबार में तो वे नहीं आयेंगे, तब एक नवीन युक्ति से काम लिया गया। अकबर ने अपना वेष बदल कर तानसेन का तानपूरा लिया और तानसेन के साथ स्वामी जी के यहाँ जा पहुँचे। जब स्वामी जी से गाने का आग्रह किया गया तो उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की। तब तानसेन ने एक चाल चली, उसने जानबूझकर स्वामी जी के सामने एक राग अशुद्ध रूप में गाया। स्वामी जी से न रहा गया, उन्होंने वह राग स्वयं गाकर तानसेन को बताया। इस प्रकार अकबर की इच्छा पूर्ण हुई। स्वामी जी के गाने से प्रभावित होकर अकबर ने तानसेन से पूछा कि तानसेन तुम इतना सुन्दर क्यों नहीं गाते?

तानसेन ने उत्तर दिया, जहांपनाह! मुझे जब दरबार की आज्ञा होती है तभी गाना पड़ता है, किन्तु गुरुजी की अन्तरआत्मा प्रेरणा करती है तभी वे गाते हैं, इसीलिये उनके संगीत में एक विशेषता है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर

अकबर के समय में ही ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा ग्वालियर का प्रसिद्ध संगीत घराना चालू हुआ। ध्रुवद-गायकी के आविष्कार का श्रेय भी राजा मानसिंह को ही दिया जाता है। इन्हीं के समय में प्रसिद्ध गवैया नायक बख्शू हुए हैं, जिनका स्थान तानसेन के बाद दूसरे नम्बर पर गिना जाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सूर
कबीर
तुलसी
मीरा

सोलहवीं शताब्दी सङ्गीत और भक्ति काव्य के समन्वय की दृष्टि से अत्यन्त महात्वपूर्ण रही; क्योंकि इसी शताब्दी में सूरसागर के रचयिता एवं गीत काव्य के प्रकाण्ड विद्वान् महात्मा सूरदास, रामचरितमानस के यशस्वी लेखक गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रतीक सन्त कबीरदास तथा सुप्रसिद्ध कवियित्री और भजन-गायिका मीराबाई द्वारा भक्तिपूर्ण काव्य के प्रचार से सङ्गीतकला भगवद्प्राप्ति का साधन बनकर उच्चतम शिखर पर पहुँची।

उपरोक्त चारों सन्तों के जीवनकाल वि०सम्वत् के हिसाब से इस प्रकार होते हैं:—

कबीरदास	जन्म सम्वत्	१४५६	मृत्यु	१५७५	विक्रम
सूरदास	"	" १५४०	"	१६२०	"
तुलसीदास	"	" १५५४	"	१६८०	"
मीराबाई	"	" १५६०	"	१६३०	"

ईसवी सन् की दृष्टि से उक्त चारों भक्तों का समय १४००-१६०० ई० के मध्य का माना जा सकता है। इनके भजन और पद अमर होगये हैं और आज भी भारत के घर-घर में इनका प्रचार है।

पुण्डरीक
विट्ठल
के ग्रंथ

१५६६ ई० के लगभग संगीत के एक कर्नाटकी पंडित पुण्डरीक विट्ठल द्वारा लिखे हुए सङ्गीत सम्बन्धी ४ ग्रन्थ मिलते हैं (१) सद्रागचन्द्रोदय (२) रागमाला (३) राग मंजरी (४) नर्तन निर्णय। यह पुस्तकें बीकानेर लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं।

जहांगीर का राज्य (१८ वीं शताब्दी)

सोमनाथ कृत
रागविबोध

१६०५ ई० से १६२७ ईसवी तक जहांगीर का राज्य रहा। इनके दरबार में बिलास खां, छत्तर खां, खुर्रमदाद, मक्खू, परवेज़दाद और हमज़ान प्रसिद्ध गवैये थे। इसी शासनकाल में दक्षिण भारत के राजमुन्द्री स्थान निवासी पंडित सोमनाथ ने सङ्गीत का ग्रन्थ "रागविबोध" लिखा। इसका रचनाकाल ग्रंथकार ने स्वयं शाके १५३१ (अर्थात् १६१० ई०) आश्वनि शुद्ध तृतीया बताया है। इसमें उन्होंने अनेक वीणाओं का वर्णन किया है तथा रागों का जन्य-जनक पद्धति से वर्गीकरण किया है।

पं० दामोदर कृत
संगीतदर्पण

जहांगीर के समय में ही हिन्दुतानी संगीत पद्धति पर १६२५ ई० में "सङ्गीतदर्पण" नामक ग्रन्थ का निर्माण पं० दामोदर ने किया। इसमें सङ्गीतरत्नाकर के भी बहुत से श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। राग-रागनियों के 'ध्यान' शीर्षक से जो देवरूप इसमें उपस्थित किये हैं वे अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक हैं। इसमें स्वराध्याय और रागाध्याय का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। सर विलियम जोन्स की पुस्तक "The musical modes of the Hindus" द्वारा यह भी पता चलता है कि संगतीदर्पण

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का फारसी अनुवाद भी हो चुका है। इसके गुजराती तथा हिन्दी अनुवाद भी वर्तमानकाल में होगये हैं, इससे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का आभास भली प्रकार मिलता है। *

व्यंकटमखी कृत चतुर्दंडिप्रकाशिका

१६६० के आसपास शाङ्र्गदेव गुरु-परम्परा के शिष्य व्यंकटमखी पंडित ने दक्षिण पद्धति के आधार पर संगीत का एक ग्रन्थ 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' निर्मित किया। इसमें गणितानुसार सप्तक के १२ स्वरों से ७२ मेल अर्थात् थाट और एक थाट से ४८४ रागों की उत्पत्ति सिद्ध की है। ७२ थाटों में से १६ थाट जो दक्षिणी पद्धति में प्रयोग किये जाते हैं उनका विवरण तथा इन थाटों से उत्पन्न ५५ रागों का विवरण भी इस पुस्तक में दिया है।

[शाहजहां का समय—१७ वीं शताब्दी]

शाहजहां का शासनकाल १६२८–१६५८ ई० माना जाता है। यह बादशाह खुद गाना जानता था। इसके उर्दू भाषा के गाने अत्यन्त मधुर और आकर्षक होते थे। गायकों का इसके यहाँ इतना आदर था कि अपने दरबारी गवैया दिरंग खां और लाल खां को इसने चाँदी से तुलवाकर ४५००) से प्रत्येक को पुरस्कृत किया। इनके अतिरिक्त शाहजहाँ के दरबार में प्रसिद्ध गायक रामदास महापट्टेर और जगन्नाथ भी थे।

[औरंगजेब का समय—१६५८ ई० से १७०७ ई०]

औरंगजेब आलमगीर सङ्गीत का कट्टर शत्रु था, उसे सङ्गीत से इतनी चिढ़ थी कि एक दिन हुक्म निकाल दिया कि सब साज़ दफना दिये जाँय। इसके समय में यद्यपि सङ्गीत को राजाश्रय नहीं रहा, किन्तु पृथक् रूप से सङ्गीतज्ञों की साधना को औरंगजेब भी नहीं रोक सका।

अहोबल कृत संगीतपारिजात

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उस समय के संगीत विद्वान् पंडित अहोबल ने सन् १६५० ई० के लगभग हिन्दुस्तानी संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ "सङ्गीतपारिजात" लिखा। इसी पंडित ने सर्व प्रथम वीणा के बाज के तार की लम्बाई पर भिन्न-भिन्न नाप से अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना की। अहोबल का शुद्ध थाट भी लोचन की भांति आजकल प्रचलित काफी थाट के समान था। पारिजात का फारसी अनुवाद १७२४ ई० में श्री दीनानाथ द्वारा हुआ और हिन्दी अनुवाद श्री कलिन्द जी द्वारा १६४१ ई० में होकर 'सङ्गीत कार्यालय' हाथरस से प्रकाशित हुआ।

हृदयकौतुक हृदयप्रकाश

पारिजात के पश्चात् हृदयनारायणदेव ने "हृदयकौतुक" और "हृदयप्रकाश" यह दो ग्रन्थ लिखे, जिनमें अहोबल का अनुकरण करते हुए १२ स्वर-स्थान वीणा के तार पर समझाये हैं।

भावभट्ट के ग्रन्थ

संगीत विद्वान् पं० भावभट्ट ने संगीत के तीन ग्रन्थ (१६७४–१७०६ ई० के लगभग) लिखे (१) अनूपविलास (२) अनूपांकुश (३) अनूपसंगीत रत्नाकर। भावभट्ट दक्षिणी पद्धति के लेखक थे, इनका शुद्ध थाट "मुखारी" है। २० मेल (थाटों) में इन्होंने सब रागों का विभाजन किया है।

---

* 'संगीत दर्पण' का हिन्दी अनुवाद १६५० ई० में संगीत कार्यालय,हाथरस से प्रकाशित हुआ है। गुजराती अनुवाद श्री रतनसी लीलाधर ठक्कर द्वारा इससे पहिले ही प्रकाशित हो चुका था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुहम्मद शाह रंगीले—(अठारहवीं शताब्दी)

सदारंग अदारंग

१८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१७१६–१७४० ई०) में मुगल वंश के अन्तिम बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले हुए। सङ्गीत के यह अत्यन्त प्रेमी थे, बहुत से गीतों में इनका नाम प्रायः आजकल भी पाया जाता है। रँगीले के दरबार में दो अत्यन्त प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग थे, जिन्होंने हजारों ख्यालों की रचना करके अनेक शिष्य तैयार किये। वास्तव में ख्याल की गायकी के प्रचार का श्रेय सदारंग और अदारंग को ही है, इन्हीं के ख्याल आज सर्वत्र प्रचार में आरहे हैं।* इसी काल में शोरी मियां ने "टप्पा" ईजाद करके प्रचलित किया।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सङ्गीत–साधना साधारण रूप से चलती रही, इधर मुसलिम शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और अंग्रेजों का पंजा धीरे–धीरे भारत पर जमने लगा। इस उथल–पुथल में सङ्गीतकला बड़े-बड़े राजाश्रयों से पृथक् होकर स्वतन्त्र रूप से एवं कुछ छोटी–छोटी रियासतों में पलने लगी।

श्रीनिवास कृत रागतत्वविबोध

इसी समय में श्रीनिवास पंडित ने "रागतत्वविबोध" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। जिसमें इन्होंने भी पारिजातकार की भांति १२ स्वरस्थान बनाकर अपना शुद्ध थाट आधुनिक काफी थाट के समान निश्चित किया। मध्यकालीन ग्रन्थकारों में श्रीनिवास पंडित ही अन्तिम ग्रंथकार हैं।

संङ्गीतसारामृत और रागलक्षणम्

इसी काल में (१७६३–१७६८ ई०)तंजोर के मराठा महाराजा तुलाजीराव भोंसले द्वारा सङ्गीतसारामृत नामक पुस्तक लिखी गई। सङ्गीतसारामृत में दक्षिणी सङ्गीत पद्धति का वर्णन किया है और ७२ थाट स्वीकार करते हुए २१ मेल (थाटों) द्वारा ११० जन्यरागों का वर्णन किया है।

रागलक्षणम् ग्रन्थ में रागोत्पादक ७२ थाट मानकर उनके द्वारा अनेक रागों का विवरण स्वरों सहित दिया है। यह ग्रंथ भी दक्षिण की प्रचलित सङ्गीत पद्धति का आधार-ग्रन्थ माना गया है। इस पर मूल लेखक का नाम तो नहीं दिया गया, किन्तु इस ग्रंथ की प्रस्तावना से पता चलता है कि तंजोर के ही एक गृहस्थ के यहाँ से यह प्राप्त हुआ था।

(४) आधुनिक काल [अँगरेज़ी राज्य]

अंग्रेज, भारतीय संगीत को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे, साथ ही साथ अँग्रेजी सभ्यता का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ने लगा। जिसके फलस्वरूप राजा लोग भी संगीत के प्रति उदासीनता का भाव प्रकट करने लगे और इस प्रकार रियासतों से संगीतज्ञों को

---

* कुछ लेखकों के मतानुसार ख्याल–गायकी का प्रचार जौनपुर के सुलतान हुसेन शर्की द्वारा माना जाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जो आश्रय प्राप्त होरहा था उसमें बाधा पड़ने लगी। फिर भी कुछ खास-खास रियासतों में विभिन्न घरानों के सङ्गीतज्ञ सङ्गीत-साधना में तल्लीन रहे। साथ ही उन दिनों संगीत का प्रवेश भले घरों में निषिद्ध माना जाने लगा, इसका भी एक विशेष कारण था कि इस समय में शासन वर्ग की उदासीनता के कारण संगीतकला निकृष्ट श्रेणी के व्यवसायी स्त्री-पुरुषों में पहुँच चुकी थी। अतः नवीन शिक्षा प्राप्त सभ्य समाज का इसके प्रति उपेक्षा रखना स्वाभाविक ही था। किन्तु संगीत के भाग्य ने फिर पलटा खाया और कुछ प्रसिद्ध अँग्रेजों (सर विलियम्स जोन. कैप्टेन डे, कैप्टेन विलर्ड आदि) ने भारतीय संगीत का अध्ययन करके इस पर कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनका प्रभाव शिक्षितवर्ग पर अच्छा पड़ा और संगीत के प्रति अनादर का भाव धीरे-धीरे घटने लगा।

मुहम्मद रजा कृत नग़माते आसफ़ी

आधुनिक काल में सर्व प्रथम बिलावल को शुद्ध थाट मानकर १८१३ ई० में पटना के एक रईस मुहम्मद रजा ने 'नग़माते आसफ़ी' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने पूर्व प्रचलित राग-रागिनी पद्धति का खण्डन करके अपना एक नवीन मत चलाया, जिसमें ६ राग और ३६ रागिनी मानकर उनका नये ढंग से विभाजन किया।

सवाई प्रतापसिंह लिखित संगीतसार

१७७६-१८०४ ई० में जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने एक विशाल सङ्गीत कान्फ्रेंस का आयोजन करके बड़े-बड़े सङ्गीत कलाविदों को इकट्ठा किया और उनसे विचार विनिमय करने के पश्चात् "सङ्गीत सार" नामक पुस्तक लिखी, जिसमें बिलावल थाट को ही शुद्ध थाट स्वीकार किया गया है।

कृष्णानन्द व्यास कृत सङ्गीत-रागकल्पद्रुम

इसके पश्चात् १८४२ ई० में श्री कृष्णानन्द व्यास ने "सङ्गीत रागकल्पद्रुम" नामक एक बड़ी पुस्तक लिखी, जिसमें उस समय तक के हजारों ध्रुपद, ख्याल तथा अन्य गीत (बिना स्वरलिपि के) दिये हैं।

उत्तरी भारत में इस समय राग वर्गीकरण की नई पद्धति बनाने की योजना चल रही थी और उधर तंजौर दक्षिण-सङ्गीत का विशाल केन्द्र बन गया था, जहां अनेक प्रसिद्ध सङ्गीत विद्वान् त्यागराज श्यामाशास्त्री, सुब्बराम दीक्षित आदि सङ्गीत कला का प्रचार कर रहे थे।

इस परिवर्तन काल में भी बंगाल के राजा सर सौरीन्द्रमोहन टैगौर तथा अन्य कुछ विद्वानों ने राग-रागिनी पद्धति का ही समर्थन करते हुए कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनमें "यूनिवर्सल हिस्ट्री आफ़ म्यूजिक" का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सङ्गीत-प्रचार का आधुनिक काल (१९००-१९५० ई०)

इस आधुनिक काल में सङ्गीत के उद्धार और प्रचार का श्रेय भारत की दो महान् विभूतियों को है, जिनके शुभ नाम हैं—श्री विष्णुनारायण भातखण्डे और श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। दोनों ही महानुभावों ने देश में जगह-जगह पर्यटन करके संगीत कला का उद्धार किया। जगह-जगह अनेक संगीत विद्यालयों की स्थापना की। सगीत-सम्मेलनों द्वारा संगीत पर विचार विनिमय हुए, जिसके फलस्वरूप जनसाधारण

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में संगीत की रुचि विशेष रूप से उत्पन्न हुई। इस काल में शास्त्रीय साधना के साथ-साथ संगीत में नवीन प्रयोग द्वारा एक विशेषता पैदा करने का श्रेय विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को है, इन्होंने प्राचीन राग-रागनियों के आकर्षक स्वर-समुदाय लेकर तथा अन्य कलात्मक प्रयोगों द्वारा 'रवीन्द्र संगीत' के रूप में एक नई चीज संगीत-प्रेमियों को दी।

श्री भातखण्डे और उनके ग्रन्थ

श्री विष्णुनारायण भातखण्डे का जन्म बम्बई प्रांत के बालकेश्वर नामक स्थान पर १० अगस्त १८६० ई० को हुआ। इन्होंने १८८३ में बी० ए० और १८९० में एल एल० बी० की परीक्षा पास की। इनकी लगन आरंभ से ही संगीत की ओर थी। १९०४ में आपकी ऐतिहासिक संगीत यात्रा आरम्भ हुई, जिसमें आपने भारत के सैकड़ों स्थानों का भ्रमण करके सङ्गीत सम्बन्धी साहित्य की खोज की। बड़े-बड़े गायकों का संगीत सुना और उनकी स्वरलिपियां तैयार करके "क्रमिक पुस्तक मालिका" में प्रकाशित कराईं, जिसके ६ भाग हैं। थ्योरी (शास्त्रीय) ज्ञान के लिये आपने हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के ४ भाग मराठी भाषा में लिखे*। संस्कृत भाषा में भी आपने लक्ष्यसंगीत और 'अभिनव राग मंजरी' नामक पुस्तकें लिखकर प्राचीन सङ्गीत की विशेषताओं एवं उसमें फैली हुई भ्रांतियों पर प्रकाश डाला। श्री भातखण्डे जी ने अपना शुद्ध थाट बिलावल मानकर थाट पद्धति स्वीकार करते हुए १० थाटों में बहुत से रागों का वर्गीकरण किया।

१९१६ ई० में आपने बड़ौदा में एक विशाल सङ्गीत सम्मेलन किया, इसका उद्घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ। इसमें सङ्गीत के विद्वानों द्वारा सङ्गीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीरता पूर्वक विचार हुए और एक "आल इण्डिया म्यूजिक एकेडमी" की स्थापना का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। इस म्यूजिक कान्फ्रेंस में भातखण्डे जी के संगीत संबंधी जो महत्वपूर्ण भाषण हुए वे भी अंग्रेजी में "A Short Historical Survay of the Music of Upper India" नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। (इसका भी हिन्दी अनुवाद सङ्गीत कार्यालय से प्रकाशित हो चुका है)

बाद में आपके प्रयत्न से अन्य कई स्थानों में भी संगीत सम्मेलन हुए तथा संगीत विद्यालयों की स्थापना हुई। जिनमें लखनऊ का मैरिस म्यूजिक कालेज (अब 'भातखंडे कालेज आफ म्यूज़िक'), गवालियर का माधव संगीत महा विद्यालय तथा बड़ौदा का म्यूज़िक कालेज विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार इन्होंने अपने अथक परिश्रम द्वारा संगीत की महान् सेवा की और संगीतजगत में एक नवीन युग स्थापित करके, अन्त में १९ सितम्बर १९३६ को आप परलोक वासी हुए।

राजा नवाबअली लिखित "मारिफुन्नग़मात"

सन् १९११ के लगभग लाहौर के रहने वाले एक संगीत-विद्वान् राजा नवाबअली खाँ भातखण्डे जी के संपर्क में आये। राजा साहेब ने अपने एक प्रसिद्ध गायक नज़ीरखाँ को आचार्य भातखण्डे जी के पास सङ्गीत के शास्त्रीय ज्ञान तथा लक्षणगीतों को सीखने के लिये भेजा और फिर उर्दू में संगीत की एक सुन्दर पुस्तक 'मारिफुन्नग़मात' लिखी। इस पुस्तक का यथेष्ट आदर हुआ और यह बी० ए० म्यूज़िक के कोर्स में शामिल

* इनका हिन्दी अनुवाद भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र के नाम से सङ्गीत कार्यालय, हाथरस से प्रकाशित हो गया है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

की गई बाद में (सन् १९५० में) इसका हिन्दी अनुवाद 'सङ्गीत कार्यालय', हाथरस से प्रकाशित हुआ। जिससे हिन्दी के सङ्गीत विद्यार्थियों को बहुत लाभ हुआ।

श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

श्री विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर का जन्म १८७२ ईसवी में श्रावणी पूर्णिमा के दिन कुरुन्दवाड़ (बेलगांव) में हुआ। आपको सङ्गीत शिक्षा गायनाचार्य पं० बालकृष्ण बुवा से प्राप्त हुई। १८९६ ई० में आपने सङ्गीत प्रचार के हेतु भ्रमण आरम्भ किया। पलुस्कर जी ने अपने सुमधुर और आकर्षक सङ्गीत के द्वारा सङ्गीतप्रेमी जनता को आत्मविभोर कर दिया। पंडित जी के व्यक्तित्व के प्रभाव से सभ्य समाज में सङ्गीत की लालसा जाग उठी, जिसके फलस्वरूप सङ्गीत के कई विद्यालय स्थापित हुए, जिनमें लाहौर का गांधर्व महाविद्यालय सर्व प्रथम ५ मई १९०१ ई० को स्थापित हुआ। बाद में बम्बई का गांधर्व महाविद्यालय स्थापित हुआ और यही मुख्य केन्द्र बन गया। पंडित जी का कार्य आगे बढ़ाने के लिये उनके शिष्यों के सामूहिक प्रयत्न से "गांधर्व महाविद्यालय मण्डल" की स्थापना हुई, जिसके बहुत से केन्द्र विभिन्न नगरों में स्थापित हो चुके हैं।

सन् १९२० ई० से पलुस्कर जी कुछ विरक्त से रहने लगे थे, अतः १९२२ में नासिक में 'रामनाम आधार आश्रम' आपने खोला। तबसे आपका सङ्गीत भी 'रामनाम मय' हो गया। इस प्रकार सङ्गीत को पवित्र वातावरण में स्थापित करके, अन्त में यह सङ्गीत का पुजारी २१ अगस्त १९३१ ई० को मिरज में प्रभु-धाम को प्रस्थान कर गया।

पण्डित जी द्वारा सङ्गीत की कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं, जिनमें से कुछ के नाम ये हैं:—सङ्गीत बालबोध, सङ्गीत बालप्रकाश, स्वल्पालाप गायन, सङ्गीत तत्वदर्शक, रागप्रवेश, भजनामृत लहरी इत्यादि।

आपकी स्वरलिपि पद्धति भातखण्डे पद्धति से भिन्न है। प्रोफेसर डी०वी०पलुस्कर, जो वर्तमान गायकों में एक अच्छे गायक माने जाते थे, आपके ही सुपुत्र थे।

स्वतन्त्र भारत में संगीत

भारत स्वतंत्र होकर जबसे अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई है, तबसे सङ्गीत का प्रचार द्रुतिगति से देश में बढ़ रहा है। जगह-जगह स्कूल और कालेजों में संगीत पाठ्य-क्रम में सम्मलित हो गया है, एवं कुछ विश्व विद्यालयों को बी० ए० परीक्षाओं में सङ्गीत भी एक विषय के रूप में रख दिया गया है। इधर रेडियो द्वारा भी सङ्गीत का प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है। कुछ चलचित्रों से भी हमें अच्छा संगीत मिल सका है। संगीत की अनेक शिक्षण संस्थाएँ भी विभिन्न नगरों में सुचारु रूप से चल रही हैं। देश का शिक्षित-वर्ग संगीत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होकर अब संगीत का महत्व समझने लगा है। कुलीन घराने के युवक-युवती और कन्याएँ संगीत-शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं एवं जन-साधारण में भी सङ्गीत के प्रति आशातीत अभिरुचि उत्पन्न हो रही है। इधर सङ्गीत सम्बन्धी पुस्तकें भी अच्छी-अच्छी प्रकाशित होने लगी हैं। सङ्गीत कला के विकास के लिये यह सब शुभ लक्षण हैं, आशा है निकट भविष्य में ही भारतीय सङ्गीत उच्चतम शिखर पर आसीन होकर अपनी विशेषताओं से संसार का मार्गदर्शन करेगा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते। (संगीत रत्नाकर)

गीत, वाद्य और नृत्य यह तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं। वास्तव में यह तीनों कलायें (गाना, बजाना और नाचना) एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, किन्तु स्वतन्त्र होते हुए भी गायन के अधीन वादन तथा वादन के अधीन नर्तन है। प्राचीन काल में इन तीनों कलाओं के प्रयोग एक साथ ही अधिकतर हुआ करते थे।

संगीत शब्द गीत शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाकर बना है। सम यानी सहित और गीत यानी गायन। गायन के सहित अर्थात् अङ्गभूत क्रियाओं (नृत्य) एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है।

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च।
अतो गीत प्रधानत्वादत्राऽऽदाव भिधीयते॥

"संगीत रत्नाकर"

अर्थात्—गायन के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन है, अतः इन कलाओं में गायन को ही प्रधानता दी गई है।

स्वर

संगीत में काम आने वाली वह आवाज़ जो मधुर हो, कानों को अच्छी लगे, जिसको सुनकर चित्त प्रसन्न हो, उसे स्वर कहते हैं।

आगे जो २२ श्रुतियों का विवरण बताया गया है, उन्हीं में से ७ शुद्ध स्वर चुने गये हैं जिनके पूरे नाम यह हैं:—(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गांधार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषाद। इन्हें ही संक्षेप में सा रे ग म प ध नि कहते हैं।

तीव्र और कोमल स्वर

ऊपर बताये हुए ७ शुद्ध स्वर कहे जाते हैं, इनमें सा और प यह तो "अचल" स्वर माने गये हैं क्योंकि यह अपनी जगह पर कायम रहते हैं, बाकी पांच स्वरों के दो-दो रूप कर दिये हैं क्योंकि यह अपनी जगह से हटते हैं अतः इन्हें विकारी स्वर भी कहते हैं। इन्हें कोमल, तीव्र इन नामों से पुकारते हैं।

किसी स्वर की नियत आवाज को नीचे उतारने पर वह कोमल स्वर कहलाता है और कोई स्वर अपनी नियत आवाज से ऊँचा जाने पर तीव्र कहलाता है। रे, ग, ध, नि यह चारों स्वर जब अपनी जगह से नीचे हटते हैं तो कोमल बन जाते हैं और जब इन्हें फिर अपने नियत स्थान पर ऊपर पहुँचा दिया जायगा तो इन्हें तीव्र या शुद्ध कहेंगे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किंतु 'म' यानी मध्यम स्वर जब अपने नियत स्थान से हटता है तो वह नीचे नहीं जाता, क्योंकि उसका नियत स्थान पहिले ही नीचा है, अतः म स्वर जब हटेगा यानी विकृत होगा तो ऊँचा जाकर म तीव्र कहलायेगा और जब फिर अपने नियत स्थान पर आजायगा तब कोमल या शुद्ध कहलायेगा। गवैयों की साधारण बोलचाल में कोमल स्वरों को "उतरे स्वर" और तीव्र स्वरों को "चढ़े स्वर" कहते हैं। अँग्रेजी भाषा में कोमल स्वरों को Flat Notes एवं तीव्र स्वरों को Sharp Notes कहते हैं।

शुद्ध और विकृत स्वर

ऊपर हम बता चुके हैं कि सा और प यह दो स्वर अचल हैं। यह कभी विकृत नहीं होते अर्थात् अपने स्थान से नहीं हटते। बाकी पांच स्वर अपने स्थान से हटते रहते हैं। जब कोई स्वर अपने स्थान से हटता है, वह विकृत स्वर कहलाता है। रे ग ध नि अपनी जगह से हटकर नीचे आयेंगे तो इन्हें विकृत स्वर कहा जायगा या कोमल कहा जायगा और म अपने स्थान से हटकर ऊँचा होगा तब म विकृत या तीव्र कहा जायगा।

इस प्रकार २ अचल, ५ शुद्ध और ५ विकृत सब मिलकर १२ स्वर हो गये। इन्हें पहिचानने के लिये भातखण्डे पद्धति में इस प्रकार चिन्ह होते हैं:—

सा प अचल या शुद्ध स्वर। इन पर कोई चिन्ह नहीं होता।
रे ग म ध नि शुद्ध स्वर, इन पर भी कोई चिन्ह नहीं होता।
रे॒ ग॒ म॑ ध॒ नि॒ विकृत स्वर (इनमें रे ग ध नि कोमल हैं और मध्यम तीव्र है।)

विष्णु दिगम्बर पद्धति में निम्नलिखित चिन्ह होते हैं:—

सा प अचल व शुद्ध स्वर।
रि ग म ध नि शुद्ध स्वर
रि॒ ग॒ म॒ ध॒ नि॒ विकृत स्वर (इनमें रे ग म ध नि कोमल हैं मध्यम तीव्र है)

इनके अतिरिक्त उत्तरी संगीत पद्धति में कुछ अन्य चिन्ह प्रणालियाँ भी चल रही हैं, किन्तु मुख्य रूप से उपरोक्त दो चिन्ह प्रणाली ही प्रचलित हैं। कोमल-तीव्र के अतिरिक्त सप्तक तथा मात्रा आदि के अन्य चिन्ह भी लगाये जाते हैं, जिनका विवरण इस पुस्तक में आगे चलकर नोटेशन (स्वरलिपि) पद्धति के लेख में विस्तृत रूप से दिया गया है।

दक्षिणी (कर्णाटकी) और उत्तरी सङ्गीत के भेद

भारतवर्ष में दो संगीत प्रणालियाँ प्रसिद्ध हैं:—

(१) कर्णाटकी संगीत प्रणाली (२) हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली। कर्णाटकी संगीत पद्धति को ही दक्षिणी संगीत पद्धति भी कहते हैं। यह मद्रास प्रांत, मैसूर तथा आंध्र प्रदेश में प्रचलित है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

'हिन्दुस्थानी संगीत प्रणाली को ही उत्तरी सङ्गीत पद्धति भी कहते हैं। यह मद्रास प्रांत, मैसूर तथा आंध्र प्रदेश को छोड़कर शेष समस्त भारत में प्रचलित है।

वास्तव में इन दोनों सङ्गीत-पद्धतियों के मूल सिद्धांतों में विशेष अन्तर नहीं है। इन दोनों पद्धतियों में जो समानता और भिन्नता है, वह देखिये:—

समानता

१—दोनों पद्धतियों में ही शुद्ध-विकृत मिलकर कुल १२ स्वरस्थान हैं।

२—दोनों पद्धतियों में ही उपरोक्त १२ स्वरों से थाट-उत्पत्ति होकर राग गाये-बजाये जाते हैं।

३—दोनों पद्धतियों में आलाप-गायन स्वीकार किया गया है।

४—दोनों में ही आलाप एवं तानों के साथ चीज़ें गाई जाती हैं।

५—जन्यजनक (थाट राग) का सिद्धान्त दोनों में ही स्वीकार किया गया है।

भेद

१—उत्तर सङ्गीत पद्धति में और दक्षिण सङ्गीत पद्धति में यद्यपि स्वर-स्थान बारह ही माने गये हैं, किन्तु दोनों के स्वर तथा नामों में अन्तर है।

२—उत्तर सङ्गीत पद्धति में केवल १० थाटों से रागों की उत्पत्ति हुई है, किन्तु दक्षिण पद्धति में ७२ जनक थाटों का प्रमाण मिलता है।

३—दक्षिणी पद्धति की चीज़ें, कन्नड़, तेलगू, तामिल इत्यादि भाषाओं में रची हुई होती हैं और उत्तरी सङ्गीत पद्धति के गीत ब्रजभाषा, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मारवाड़ी इत्यादि भाषाओं में होते हैं।

४—दोनों पद्धतियों के ताल भिन्न होते हैं।

५—दोनों सङ्गीत पद्धतियों में स्वरोच्चारण एवं आवाज़ निकालने की शैलियां भिन्न-भिन्न हैं।

६—इन पद्धतियों में राग अपने-अपने स्वतन्त्र हैं। अर्थात् दक्षिणी राग उत्तरी रागों से समानता नहीं रखते।

७—दक्षिण पद्धति के शुद्ध सप्तक को 'कनकांगी' अथवा मुखारी मेल कहते हैं, किन्तु उत्तर सङ्गीत के शुद्ध स्वर-सप्तक को 'बिलावल थाट' कहा गया है।

उत्तरी और दक्षिणी स्वरों की तुलना

कर्नाटक (दक्षिणी) तथा हिन्दुस्तानी (उत्तरी) दोनों ही पद्धतियों में एक सप्तक में १२ स्वर माने गये हैं, किन्तु उनके नामों में कहीं-कहीं परिवर्तन हो गया है, जैसे

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर्नाटकी शुद्ध रे, ध हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति के कोमल रे, ध के समान हैं तथा हमारे शुद्ध रे, ध उनके शुद्ध ग, नि हैं।

हिन्दुस्तानी स्वर	कर्नाटकी (दक्षिणी) स्वर
१ सा	सा
२ कोमल रे	शुद्ध रे
३ शुद्ध रे	पंचश्रुति रे या शुद्ध ग
४ कोमल ग	षटश्रुति रे, साधारण ग
५ शुद्ध ग	अन्तर ग
६ शुद्ध म	शुद्ध म
७ तीव्र म	प्रति म
८ प	प
९ कोमल ध	शुद्ध ध
१० शुद्ध ध	पंचश्रुति ध, या नि शुद्ध
११ कोमल नि	षटश्रुति ध, या कैशिक नि
१२ शुद्ध नि	काकली नि

क्योंकि हमारे कोमल रे, ध उनके शुद्ध रे, ध हैं और हमारे शुद्ध रे, ध उनके शुद्ध ग, नि हैं, अतः उनके (कर्नाटकी) स्वरों के अनुसार शुद्धस्वर सप्तक इस प्रकार होगा:—

सा रे ग म प ध नि—कर्नाटकी

सा रे रे म प ध ध—हिन्दुस्तानी

उपरोक्त कर्नाटकी शुद्ध सप्तक को दक्षिणी विद्वान् 'मुखारी मेल' कहते हैं। कर्नाटकी स्वरों में किसी स्वर को कोमल अवस्था में नहीं माना गया है, अर्थात् उनके शुद्ध स्वर ही सबसे नीची अवस्था में हैं। जब उनका रूप बदलता है अर्थात् विकृत होते हैं तो वे और नीचे न हटकर ऊपर को जाते हैं,जैसे शुद्ध रे के आगे उनका चतुःश्रुतिक रे आता है, उसी को वे शुद्ध ग कहते हैं और शुद्ध ग के आगे साधारण ग फिर अन्तर ग नाम उन्होंने दिये हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नाद, श्रुति और स्वरविवेचन

नाद

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः ।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ।।

—संगीत रत्नाकर

अर्थात् 'नकार' यानी प्राण (वायु) वाचक तथा 'दकार' अग्निवाचक है अतः जो वायु और अग्नि के सम्बन्ध (योग) से उत्पन्न होता है, उसी को 'नाद' कहते हैं ।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।
सोयं प्रकाशते पिंडे तस्मात् पिंडोऽभिधीयते ।।

अर्थात् नाद के दो प्रकार माने जाते हैं, आहत तथा अनाहत । जो देह (पिण्ड) से प्रकट हुआ है, उसे पिण्ड नाम प्राप्त होता है ।

अनाहत नाद—जो नाद केवल ज्ञान से जाना जाता है, जिसके पैदा होने का कोई खास कारण न हो, यानी जो बिना संघर्ष या स्पर्श के पैदा हो जाय, उसे आनाहत नाद कहते हैं । जैसे दोनों कान ज़ोर से बन्द करने पर भी अनुभव करके देखा जाय तो "घन्न-घन्न" या "सांय-सांय की आवाज़ सुनाई देती है । इसी अनाहत नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि करते थे । यह नाद मुक्तिदायक तो है, किन्तु रक्तिदायक नहीं । इसलिये यह सङ्गीतोपयोगी भी नहीं है, अर्थात् सङ्गीत से अनाहत नाद का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

आहत नाद—जो कानों से सुनाई देता है और जो दो वस्तुओं के संघर्ष या रगड़ से पैदा होता है, उसे आहत नाद कहते हैं । इस नाद का सङ्गीत से विशेष सम्बन्ध है । यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तिदाता माना गया है, किन्तु आहत नाद को भी भवसागर से पार लगाने वाला बताकर सङ्गीतदर्पण में दामोदर पण्डित ने लिखा है:—

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः ।
श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिर्निरूप्यते ।।

भावार्थ—आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि (स्वर ग्राम मूर्च्छना) से रंजक बनकर भव-भंजक भी बन जाता है, इस कारण उसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि आहतनाद ही सङ्गीत के लिये उपयोगी है। इसी नाद के द्वारा सूर-मीरा इत्यादि ने प्रभु-सान्निध्य प्राप्त किया था।

नाद के सम्बन्ध में तीन बातें ध्यान में रहनी चाहियेः—

(१) नाद का छोटा-बड़ापन (Magnitude)
(२) नाद की जाति अथवा गुण (Timbre)
(३) नाद का ऊंचा-नीचापन (Pitch)

(१) नाद का छोटा-बड़ापन—जो आवाज़ नजदीक हो और धीरे-धीरे सुनाई पड़े उसे छोटा नाद कहेंगे, और जो आवाज़ दूर से आरही हो, तथा जोर-जोर से सुनाई पड़े, उसे बड़ा नाद कहेंगे।

(२) नाद की जाति—नाद की जाति से यह मालुम होता है कि जो आवाज़ आ रही है, वह किसी मनुष्य की है, या किसी बाजे से निकल रही है। उदाहरणार्थ एक नाद हारमोनियम, सारंगी, सितार, बेला इत्यादि से प्रकट हो रहा है, और एक नाद किसी गवैये के गले से प्रकट होरहा है, तो हम नाद प्रकट होने की उस क्रिया को देखे बिना ही यह बता देंगे कि यह नाद किसी साज़ का है या किसी मनुष्य का। इसी क्रिया को पहिचानना 'नाद की जाति' कहलाती है।

(३) नाद का ऊँचा-नीचापन—नाद की उच्च-नीचता से यह मालुम होता है कि जो आवाज़ आरही है, वह ऊँची है या नीची। मान लीजिये हमने सा स्वर सुना, इसके बाद रे स्वर सुनाई दिया और फिर ग सुनाई दिया। इस प्रकार नियमित ऊँचे स्वर सुनने पर हम उसे उच्च-नाद कहेंगे, और सां स्वर के नीचे नि, ध, प इत्यदि स्वर सुनाई दिये, तब उसे नीचा नाद कहेंगे। इसी बात को और अच्छी तरह इस प्रकार समझें कि कोई भी नाद हवा में थरथराहट या कम्पन होने पर पैदा होता है। यह कम्पन एक नियमित वेग यानी रफ्तार से तथा शीघ्रतापूर्वक होता है, तभी हमारे कानों को वह सुनाई देता है। प्रत्येक नाद उत्पन्न होने के लिये कम्पन का वेग प्रति सैकिण्ड निश्चित होता है, कम्पन का वेग जितना अधिक होगा, उतना ही नाद ऊँचा होगा और कम्पन संख्या कम होने पर उतना ही नाद नीचा हो जायगा। याद रहे कि यह कम्पन-संख्या नियमित ही होगी, अनियमित कम्पन से शोरगुल ही पैदा होगा, नाद नहीं। जैसे—किसी बाजार की भीड़ में या मेले में कोई जोर से चिल्ला रहा है, कोई धीरे बोल रहा है. किसी और बच्चे रो रहे हैं, कोई हँस रहा है, तो इन क्रियाओं के द्वारा वायु में जो कम्पन होंगे, वे अनियमित ही तो होंगे, और यह अनियमित कम्पन शोर-गुल ही कहलायेगा। इसके विरुद्ध एक व्यक्ति कुछ गा रहा है, या बाजा बजा रहा है, तो उसकी आवाज़ के कम्पन हवा में नियमित रूप से होंगे और वे हमें अच्छे भी मालुम होंगे, बस उसे ही संगीतोपयोगी 'नाद' कहेंगे।

श्रुति—

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीतश्रुतिलक्षणम् ॥

—अभिनवरागमंजरी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अर्थात्—वह आवाज जो गीत में प्रयोग की जा सके और एक दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहिचानी जा सके उसे "श्रुति" कहते हैं।

तस्य द्वाविंशतिर्भेदः श्रवणात् श्रुतयो मताः।
हृदयभ्यंतरसंलग्ना नाड्यो द्वाविंशतिर्मताः॥

—स्वरमेलकलानिधि

अर्थात्—हृदयस्थान में २२ नाड़ियाँ लगी हुई हैं, उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं। अतः उन्हें ही श्रुति कहते हैं। नाद के बाईस भेद माने गये हैं।

हमारे सङ्गीत शास्त्रकार प्राचीन समय से ही २२ नाद मानते चले आ रहे हैं। वह नाद क्रमशः एक से दूसरा ऊँचा, दूसरे से तीसरा ऊँचा, तीसरे से चौथा ऊँचा, इस प्रकार चढ़ते चले गये हैं। इन्हीं २२ नादों को 'श्रुति' कहते हैं। क्योंकि २२ श्रुतियों पर गायन में सर्व साधारण को कठिनाई होती, अतः इन २२ में से १२ स्वर चुनकर गायन-कार्य होने लगा। इन १२ स्वरों में ७ शुद्ध स्वर और ५ विकृत स्वर होते हैं। २२ श्रुतियों में यह ७ शुद्ध स्वर क्रमशः १, ५, ८, १०, १४, १८ और २१ वीं श्रुतियों पर माने गये हैं। जिनका नाम षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद है; इन्हीं के संक्षिप्त नाम सा, रे, ग, म, प, ध, नि हैं।

स्वरों में श्रुतियों को बांटने का नियम

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ॥

—सङ्गीत रत्नाकर

अर्थात्—षड्ज, मध्यम और पंचम इन तीनों स्वरों में चार-चार श्रुतियाँ हैं। निषाद, गांधार इन दोनों स्वरों में दो-दो श्रुतियाँ तथा ऋषभ और धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं, इस प्रकार २२ श्रुतियाँ ७ स्वरों में बांट दी गई हैं। इसे अधिक स्पष्ट इस प्रकार समझ लीजिये कि हारमोनियम बाजे की एक सप्तक में जो १२ स्वर (परदे) होते हैं, वे इन २२ श्रुतियों में से ही चुनकर बनाये गये हैं। अतः हारमोनियम में तो श्रुतियाँ सुनाई नहीं दे सकतीं, किन्तु किसी भी तार-वाद्य वीणा, सारंगी, दिलरुबा, सितार इत्यादि पर श्रुतियाँ सुनी जा सकती हैं। कुशल गायक गले से भी इन्हें प्रकट कर सकते हैं। अब हम उदाहरणार्थ १ तार २२ पर श्रुतियाँ दिखाते हैं:—

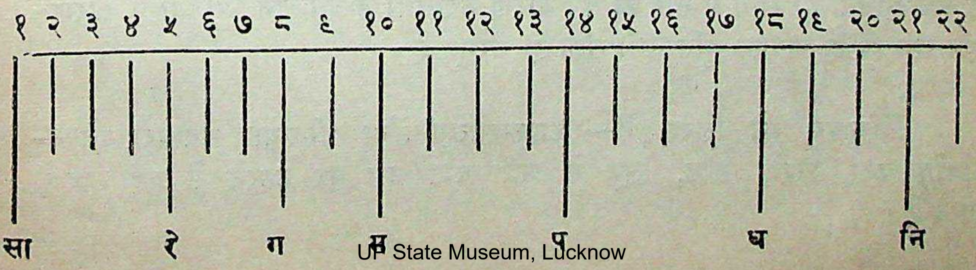

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

छोटी-छोटी लकीरों पर श्रुतियाँ हैं, और बड़ी-बड़ी लकीरों वाले शुद्ध स्वर हैं।

यहाँ पर एक बात बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि पुराने और नये ग्रन्थकार २२ श्रुतियों को १२ स्वरों पर बांटने का उपर्युक्त नियम स्वीकार करते हैं, किन्तु हमारे कुछ प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अन्तिम श्रुति पर कायम करके इस प्रकार मानते हैं:—

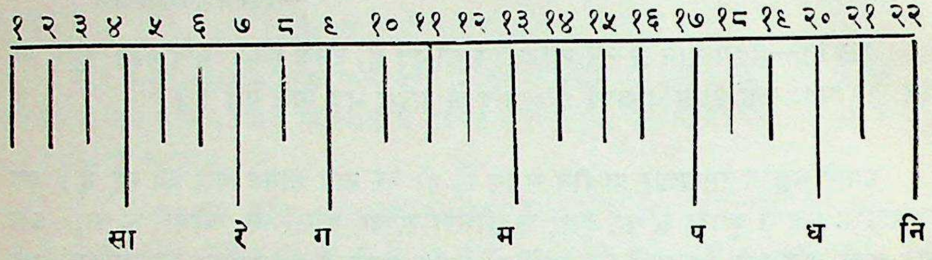

अर्थात्–चौथी श्रुति पर षड्ज, सातवीं पर ऋषभ, नवीं श्रुति पर गान्धार, तेरहवीं पर मध्यम, सत्रहवीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत और बाईसवीं श्रुति पर निषाद।

इसके विपरीत आधुनिक विद्वानों एवं ग्रन्थकारों ने जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं। पहिली श्रुति पर षड्ज, पांचवीं पर ऋषभ, आठवीं पर गान्धार, दसवीं पर मध्यम चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं श्रुति पर निषाद क़ायम किया है। आधुनिक प्रचलित सङ्गीत पद्धति में यही नियम मान्य है।

श्रुति और स्वर–तुलना

श्रुतय स्युः स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना।
अहिकुण्डलवत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता॥
सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाः हेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव संमता॥

—"सङ्गीत पारिजात"

अर्थात्—जो सुनी जा सकती है, श्रुति कहलाती है। श्रुति और स्वर में भेद इतना ही है कि जितना सर्प तथा उसकी कुण्डली में। यही भेद शास्त्रसम्मत है और वे सब श्रुतियां ही रागों में स्वर का रूप धारण कर लेती हैं तथा इन श्रुतियों के कारण-रूप राग ही हैं, अतएव श्रुति ऐसी संज्ञा ही सम्मत है।

विश्वावसु ने लिखा है—"कणस्पर्शैःश्रुतिर्ज्ञेया स्थित्या सैवस्वरोच्यते"—अर्थात् कण, स्पर्श, मींड, सूत से श्रुति तथा उस पर ठहरने से वही स्वर हो जाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सङ्गीत दर्पणकार दामोदर पंडित ने श्रुति और स्वर का भेद इस प्रकार बताया है:—

श्रुत्यनंतरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः ।
स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते ॥
स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परकीर्तितः ।

भावार्थ—श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित होता है (मधुर लगता है) तथा जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नहीं होती, उसे "स्वर" समझना चाहिये।

इस व्याख्या से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर मात्र से जो क्षणिक ध्वनि (आवाज) पैदा हुई, वह श्रुति है और तुरन्त ही वह आवाज स्थिर होगई तो वह "स्वर" है।

श्रुतिस्वरूप

स्वरूपमात्रश्रवणान्नादोऽनुरणनं विना ।
श्रुतिपित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः ॥

—सङ्गीतदर्पण

अर्थात्—प्रथमाघात से अनुरणन (प्रतिध्वनि) हुए बिना जो ह्रस्व (टंकोर) नाद उत्पन्न होता है, उसे श्रुति समझना चाहिए।

श्रुति और स्वर देखने में यह दो नाम अवश्य हैं; किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो श्रुति और स्वर में कोई विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही सङ्गीतोपयोगी आवाज़ें हैं, दोनों का ही प्रयोग गायन-वादन में होता है और दोनों ही आवाजें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं अब श्रुति और स्वर का भेद सरलता पूर्वक समझाते हैं:—

श्रुति—सुरीली ध्वनियों के एक समूह में से सङ्गीत के प्राचीन पंडितों ने २२ स्थान ऐसे चुन लिये, जिनकी आवाजें परस्पर नीची-ऊंची हैं और जो सङ्गीत में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन्हें ही श्रुति कहा है।

स्वर—इसके बाद उन्हीं २२ ध्वनियों में से १२ ध्वनि ऐसी चुनली गईं, जिनकी आवाजें परस्पर नीची-ऊँची हैं, किन्तु उन २२ ध्वनियों में परस्पर जो अन्तर (Interval) है, वह बहुत ही सूक्ष्म है और इन १२ ध्वनियों में जो परस्पर अन्तर है वह उनसे कुछ अधिक है। यही कारण है कि श्रुतियों के अन्तर को साधारण सङ्गीतज्ञ की अपेक्षा एक उत्तम सङ्गीतज्ञ ही अनुभव कर सकता है, किन्तु स्वरों के अन्तर (फ़ासले) को साधारण सङ्गीत-प्रेमी भी पहचान लेते हैं। १२ ध्वनियों को फिर और भी संक्षिप्त किया तो ७ ध्वनि ही रह गईं। यह ७ शुद्ध स्वर हुए और वे १२ स्वर शुद्ध व विकृत मिलकर हुए।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किसी राग में कोई स्वर लगाते समय कोई-कोई गायक यह कहते देखे जाते हैं कि इस राग का कोमल धैवत ऊंचा है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वहां पर कोमल की बजाय तीव्र धैवत लगेगा। उदाहरणार्थ राग पूर्वी में भी कोमल धैवत लगता है और भैरव में भी, किन्तु गुणी सङ्गीतज्ञों का कहना है कि पूर्वी में लगने वाला कोमल धैवत भैरव राग के कोमल धैवत से १ श्रुति ऊँचा है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि खमाज राग के अवरोह में लगने वाले कोमल निषाद से, खमाज के आरोह का कोमल निषाद १ श्रुति ऊँचा है। इसका अर्थ यह हुआ कि खमाज के आरोह में जो कोमल निषाद लगेगा वह तीव्र निषाद की ओर कुछ खींचकर इस प्रकार ले जाया जायगा कि तीव्र निषाद को तनिक छूकर शीघ्र ही अपने स्थान पर वापिस आजाय, क्योंकि यदि वहां अधिक देर लगगई तो वह श्रुतिप्रयोग न होकर स्वरप्रयोग हो जायेगा। इस प्रकार दूसरे स्वर का तनिक स्पर्श करना या छूना "कण' कहलाता है। ऊपर कहा ही जा चुका है कि कण-मींड-सूत द्वारा जब स्वर दिखाया जाता है तब तक तो वह 'श्रुति' है और उस पर ठहरने से वही 'स्वर' कहलाता है। उपरोक्त विवेचन से श्रुति और स्वर की तुलना में निम्नलिखित ४ सिद्धांत निश्चित हुए:—

१—श्रुति २२ होती हैं और स्वर ७ या १२

२—श्रुतियों का परस्पर अन्तर या फ़ासला (Interval) स्वरों की अपेक्षा कम होता है। स्वरों का परस्पर अन्तर श्रुतियों की अपेक्षा अधिक होता है।

३—कण, मींड़ और सूत द्वारा जब किसी सुरीली ध्वनि को व्यक्त किया जाता है तब तक तो वह श्रुति है और जहां उस पर ठहराव हुआ तो उसे स्वर कहेंगे।

श्रुति और स्वर की तुलना में अहोबल पंडित ने 'सङ्गीत पारिजात' में सर्प और कुंडली का जो उदाहरण दिया है, उसके अनुसार सर्प की कुंडली तो श्रुति है और सर्प स्वर है। कुंडली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है; उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर स्वर स्थित हैं।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ

प्राचीनकाल में सङ्गीत के दो मुख्य ग्रन्थकार भरत और शाङ्गदेव हुए हैं। ईसा से काफी पूर्व भरत ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "नाट्यशास्त्र" लिखा और तेहरवीं शताब्दी में शाङ्गदेव ने "सङ्गीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका प्रमाण आज भी बहुत सी सङ्गीत-पुस्तकों द्वारा मिलता है। इन दोनों पंडितों ने अपने-अपने ग्रन्थों में श्रुतियों का वर्णन भी किया है, जिसमें इन दोनों ने एक मत से कुल २२ श्रुतियां ही मानी हैं, साथ ही उनका श्रुति-स्वरविभाजन भी एक ही सिद्धान्त पर हुआ है। अर्थात् ये दोनों ही पंडित अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालुम करने के लिये श्रुति का एक निश्चित नाद स्वीकार करते थे, यानी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वे सब श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पहली श्रुति से दूसरी श्रुति जितने फासले पर है उतना ही फासला उन्होंने समस्त श्रुतियों में रक्खा है। इसी फासले या अन्तर को "श्रुत्यंतर" कहते हैं।

'षड्जग्रामवीणा' पर भरत की श्रुतियाँ—

भरत का कहना है कि ऐसी दो वीणा लेकर जिनमें सात-सात तार चढ़े हुए हों, षड्जग्राम में मिलाओ। दोनों वीणाओं में जो सात-सात तार चढ़े हुए हैं, उनको ७ स्वरों में मिलाने का ढङ्ग भरत इस प्रकार बताते हैं:—

षड्ज—यह स्वर चौथी श्रुति पर रहे।
ऋषभ— " सातवीं "
गांधार— " नवीं "
मध्यम— " तेरहवीं "
पंचम— " सत्रहवीं "
धैवत— " बीसवीं "
निषाद— " बाईसवीं "

इस प्रकार की वीणा जो तैयार हुई, वह "षड्जग्राम की" "अचलवीणा" कही जायगी।

इसके पश्चात् षड्जग्राम वाली इन दो वीणाओं में से एक वीणा लेकर उसका केवल पंचम का तार १ श्रुति कम करदो, और अन्य तारों को उसी प्रकार रहने दो अर्थात् इस वीणा का पंचम वाला तार १ श्रुति नीचा होगया, बाकी सा रे ग म ध नि यह ६ तार अपने-अपने स्थान पर कायम रहे। यह मध्यमग्राम वीणा कही जायगी।

इसके बाद, इसी वीणा के शेष ६ तारों को भी एक-एक श्रुति कम कर दो, तो यह "चलवीणा" कही जायगी। इस चलवीणा पर स्वरों की स्थिति इस प्रकार हो जायगी:—

स्वर—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
श्रुति नं०—	३	६	८	१२	१६	१९	२१

अर्थात्-उपरोक्त सातों स्वर क्रमशः तीसरी, छठी, आठवीं, बारहवीं, सोलहवीं उन्नीसवीं और इक्कीसवीं श्रुति पर पहुँच गये। ऐसा होने से यह स्पष्ट है कि पहिली षड्जग्राम वीणा या 'अचलवीणा' से चलवीणा के सातों स्वरों में एक श्रुति का अन्तर हो गया।

इसके पश्चात् भरत लिखते हैं कि चलवीणा के पंचम को फिर एक श्रुति से कम करदो, और उसी प्रकार शेष ६ स्वरों को भी एक-एक श्रुति नीचे करदो तो स्वरों की स्थिति इस प्रकार हो जायगी:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
२	५	७	११	१५	१८	२०

ऐसा होने से चलवीणा के ग और नि जो कि ७ और २० नम्बर की श्रुतियों पर स्थित हैं, अचलवीणा के रे और ध से मिलने लगेंगे क्योंकि अचलवीणा के रे-ध भी क्रमशः ७ और २० नम्बर की श्रुतियों पर स्थित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि चलवीणा और अचलवीणा के स्वरों में २ श्रुतियों का अन्तर हो गया।

इसी प्रकार भरत ने चलवीणा के स्वरों को १-१ श्रुति कम करके आगे और बताया है, इससे यह सिद्ध होता है कि, उनकी श्रुतियाँ परस्पर समानता रखती थीं, क्योंकि यदि उनके आपसी-फासले कम या ज्यादा होते तो "अचलवीणा" का उपयुक्त स्वर-निर्देशन सम्भव ही नहीं था। भरत के इसी सिद्धान्त अर्थात् "समान श्रुत्यन्तर" को शाङ्गदेव भी मानते हैं।

इसके विरुद्ध मध्यकालीन विद्वानों ने श्रुतियाँ तो एक सप्तक में २२ ही मानी हैं, किंतु वे "समान श्रुत्यन्तर" वाले सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।

१४ वीं सदी से १८ वीं शताब्दी तक मध्यकालीन विद्वानों में मुख्य चार विद्वानों के सङ्गीत-ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

(१) रागतरंगिणी—यह ग्रंथ लोचन कवि ने १५ वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखा।

(२) सङ्गीत पारिजात—यह ग्रन्थ पं० अहोबल ने १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लिखा।

(३) हृदयकौतुक और हृदयप्रकाश—यह दोनों ग्रन्थ हृदयनारायण देव ने १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखे।

(४) रागतत्वविबोध—१८ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यह ग्रन्थ श्रीनिवास पंडित ने लिखा।

वीणा के तार पर १२ स्वरों के स्थान निश्चित करने का सर्वप्रथम प्रयास "सङ्गीत पारिजात" के लेखक अहोबल पण्डित ने किया, उनके बाद हृदयनारायण देव और श्रीनिवास ने भी वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना अहोबल के अनुसार ही की है।

यद्यपि मध्यकालीन विद्वान "चतुश्चतुश्चतुश्चैव ......" वाले श्लोक के अनुसार सात स्वरों का विभाजन २२ श्रुतियों पर स्वीकार करते हैं, तथा प्राचीन पण्डितों के अनुसार ही उन्होंने भी प्रत्येक शुद्ध स्वर को उस स्वर की अन्तिम श्रुति पर स्थित किया है; किन्तु प्राचीन और मध्यकालीन विद्वानों में श्रुतियों के समान अन्तर पर मतभेद है।

आधुनिक ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ

ऊपर बताये हुए प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथकारों के विवेचन द्वारा यह बताया जा चुका है कि इन्होंने अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अन्तिम श्रुति पर निश्चित किया है,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसके विरुद्ध हमारे आधुनिक ग्रन्थकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित करते हैं। आधुनिक ग्रन्थकारों में "अभिनव राग मंजरी" के लेखक श्री विष्णुनारायण भातखण्डे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने श्रुतियों के विभाजन के बारे में इस प्रकार लिखा है:—

> वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ तथा।
> सप्तदश्यां च विंश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥
> षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता शुद्धाख्या भरतादिभिः।
> हिन्दुस्थानीयसंगीते श्रुतिक्रमविपर्ययः।
> ऐते शुद्धस्वराः सप्त स्वस्वाद्यश्रुतिसंस्थिताः ॥

अर्थात्—भरत इत्यादि प्राचीन शास्त्रकारों ने श्रुतियां शुद्ध स्वरों में इस क्रम से बाँटी हैं कि षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ सातवीं श्रुति पर, गांधार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थित है। किन्तु हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति में श्रुतियों को ७ शुद्ध स्वरों पर बांटने का क्रम इसके विपरीत रखकर प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक ग्रंथकार पहिली श्रुति पर षड्ज, पांचवीं पर ऋषभ, आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं श्रुति पर निषाद कायम करते हैं।

प्राचीन व आधुनिक श्रुति स्वर-विभाजन

निम्नलिखित कोष्ठक में प्राचीन ग्रन्थों द्वारा, श्रुतियों का शुद्ध स्वरों पर विभाजन दिखाया गया है, साथ ही आधुनिक सङ्गीत-ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वर कौन-कौन सी श्रुतियों पर माने हैं, यह भी दिखाया गया है।

श्रुति नं०	श्रुति नाम	प्राचीन ग्रन्थों के शुद्ध स्वर-स्थान	आधुनिक संगीत पद्धति के अनुसार शुद्ध स्वर-विभाजन
१	तीव्रा	... ...	षड्ज
२	कुमुद्वती	... ...	
३	मन्दा	... ...	
४	छन्दोवती	षड्ज	
५	दयावती	... ...	ऋषभ
६	रंजनी	... ...	
७	रक्तिका	ऋषभ	
८	रौद्री	... ...	गांधार
९	क्रोधा	गांधार	

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१०	वज्रिका	... ...	मध्यम
११	प्रसारिणी	... ...	
१२	प्रीति	... ...	
१३	मार्जनी	मध्यम	
१४	क्षिती	... ...	पंचम
१५	रक्तिका	... ...	
१६	संदीपिनी	... ...	
१७	अलापिनी	पंचम	
१८	मदंती	... ...	धैवत
१९	रोहिणी	... ...	
२०	रम्या	धैवत	
२१	उग्रा	... ...	निषाद
२२	क्षोभिणी	निषाद	

यह तो हुआ श्रुतियों का शुद्ध स्वर-विभाजन। अब रहे ५ विकृत स्वर। उनके लिये यह नियम है कि जिस श्रुति पर शुद्ध स्वर कायम हुआ है, उससे तीसरी श्रुति पर आगे वाला विकृत स्वर आयेगा। इस प्रकार शुद्ध स्वरों से दो-दो श्रुति पर विकृत स्वरों की स्थापना करने पर यह तालिका बनेगी:—

२२ श्रुतियों पर आधुनिक पद्धति के १२ स्वरों की स्थापना—

नं०	श्रुति नाम	स्वर	स्वर-आंदोलन
१	तीव्रा	सा (अचल)	२४०
२	कुमुद्वती	... ...	... ...
३	मंदा	रे (कोमल)	२५४ २/१७
४	छंदोवती	... ...	... ...
५	दयावती	रे (तीव्र)	२७०
६	रंजनी	... ...	... ...
७	रक्तिका	ग (कोमल)	२८८
८	रौद्री	ग (तीव्र)	३०१ १७/४३
९	क्रोधा	... ...	... ...
१०	वज्रिका	म (कोमल)	३२०
११	प्रसारिणी	... ...	... ...
१२	प्रीति	म (तीव्र)	३३८ १४/१७

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१३	मार्जनी	....	....
१४	क्षिती	प (अचल)	३६०
१५	रक्तिका	....	... .
१६	संदीपनी	ध (कोमल)	३६१ ३/१७
१७	अलापनी	....	....
१८	मदन्ती	ध (तीव्र)	४०५
१९	रोहिणी	....	... .
२०	रम्या	नि (कोमल)	४३२
२१	उग्रा	नि (तीव्र)	४५२ ४/४३
२२	क्षोभिणी	....	....
१	तीव्रा	सां (तार)	४८०

अब हम प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक संगीत ग्रन्थकारों का एक तुलनात्मक चार्ट देकर यह बताते हैं कि श्रुति-स्वर के बारे में उनके विचारों में कहां-कहां एकता और मतभेद हैं:—

प्राचीन-मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों का श्रुति-स्वर के बारे में

तुलनात्मक विवेचन

(१) वे सिद्धांत जिन पर तीनों ग्रन्थकार एकमत हैं।

प्राचीन ग्रन्थकार (भरत-शार्ङ्गदेव आदि)	मध्यकालीन ग्रन्थकार (अहोबल, श्रीनिवास, लोचन)	आधुनिक ग्रन्थकार (भातखण्डे आदि)
२२ श्रुतियां एक सप्तक में मानते हैं।	२२ श्रुतियां एक सप्तक में मानते हैं।	२२ श्रुतियां एक सप्तक में मानते हैं।
शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर इन्हीं २२ श्रुतियों पर बांटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर इन्हीं २२ श्रुतियों पर बांटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर इन्हीं २२ श्रुतियों पर बाँटते हैं।
षड्ज, मध्यम, पंचम की ४-४ श्रुतियां, निषाद गांधार की २-२ श्रुतियां और ऋषभ धैवत की ३-३ श्रुतियां मानकर स्वरों की स्थापना करते हैं।	प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह ही इन्होंने भी उसी प्रकार यह विभाजन स्वीकार करके प्राचीन सिद्धान्त स्वीकार किया है।	प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों के अनुसार इन्होंने भी इसी नियम का पालन करके उनका मत स्वीकार किया है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) वे सिद्धांत जिनपर आपस में मतभेद है ।

अपनी २२ श्रुतियों को समानान्तर पर मानते हैं, अर्थात् प्रत्येक श्रुति का फ़ासला (Interval) बराबर-बराबर रखते हैं ।	२२ श्रुतियों को असमान मानकर, उनका आपसी श्रुयन्तर बराबर-बराबर नहीं मानते ।	२२ श्रुतियों को असमान मानकर उनका आपसी श्रुत्यन्तर बराबर-बराबर नहीं मानते ।
अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर उस स्वर की शास्त्रोक्त अन्तिम श्रुति पर रखते हैं । अर्थात् सा रे ग म प ध नि ४-७-६-१३-१७-२०-२२ इन श्रुतियों पर रखते हैं ।	इस विषय में यह भी प्राचीन ग्रन्थकारों का अनुकरण करते हैं और उसी प्रकार अपने सातों शुद्ध स्वर ४-७-६-१३-१७-२०-२२ वीं श्रुतियों पर रखते हैं ।	अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर पहिली श्रुति पर कायम करके सा, रे, ग, म, प, ध, नि क्रमशः १-५-८-१०-१४ १८-२१ इन श्रुतियों पर स्थापित करते हैं ।
अपने शुद्ध स्वर सप्तक में ग—नि कोमल मानते हैं ।	अपने शुद्ध स्वर सप्तक में ग-नि कोमल मान कर शुद्ध थाट कायम करते हैं ।	अपने शुद्ध स्वर सप्तक में सब शुद्ध स्वर ही मानकर अपना शुद्ध थाट बिलावल निश्चित करते हैं ।
वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न स्वरों की स्थापना करने का इनके ग्रंथों में कोई उल्लेख नहीं मिलता ।	वीणा के तार की लम्बाई पर शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं ।	वीणा के तार की लम्बाई पर शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं, किन्तु रे॒ मं ध॒ इन तीन विकृत स्वरों पर मतभेद है ।
शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आंदोलन-संख्या निकालने का इनके ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता ।	शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आंदोलन-संख्या निकालने का इन्होंने भी कोई प्रयास नहीं किया ।	शुद्ध तथा विकृत १२ स्वरों की आन्दोलन-संख्या निकालकर अपने ग्रन्थों में इसका वर्णन किया है ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

स्वर-शास्त्र (Tonality)

स्वर-स्थान और आन्दोलन संख्या

जब हम वीणा, सितार या तानपूरा के किसी तार को छेड़ते या बजाते हैं, तो उस तार से एक झनकार पैदा होती है। उस झनकार द्वारा १ सैकिंड में हवा में जो कम्पन पैदा होता है, उसे ही आंदोलन (Vibration) कहते हैं। आंदोलन-संख्या जितनी अधिक होती है, नाद उतना ही ऊँचा होता है और आंदोलन-संख्या जितनी कम होती है, उतना ही नाद नीचा होता है।

इसी प्रकार तार की लम्बाई पर से नाद की ऊँचाई और निचाई ज्ञात होती है। तार की लम्बाई कम होगी तो नाद ऊँचा पैदा होगा और तार की लम्बाई अधिक होगी तो नाद नीचा पैदा होगा।

स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालना

ऊपर बताया जा चुका है कि जितनी ही आवाज़ ऊँची होगी, उतने ही आंदोलन अधिक होंगे और आवाज़ जितनी नीची होती जायगी, आंदोलन-संख्या उसी अनुपात से कम होती जायगी।

विज्ञान के पण्डितों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सबसे नीची आवाज़ द्वारा १ सैकिण्ड में १६ आंदोलन हो सकते हैं और सबसे ऊँची आवाज़ के १ सैकिण्ड में ३८००० आंदोलन हो सकते हैं। यह ऊँची आवाज़ लगभग ११ सप्तक ऊँचाई की होगी। इस हिसाब से षड्ज स्वर की आंदोलन-संख्या २४० मानकर हमारे शास्त्रकारों ने तथा पश्चिमी विद्वानों ने १२ स्वरों की आंदोलन-संख्या नियत की है।

स्वरों की आंदोलन-संख्या मालुम करने के तीन आधार हैं:—

(१) जिस स्वर की आंदोलन-संख्या मालुम करनी हो, उसके तार की लम्बाई का नाप।
(२) षड्ज स्वर के तार की लम्बाई।
(३) षड्ज स्वर की आंदोलन-संख्या।

स्वरों का गुणान्तर

स्वरों की आंदोलन-संख्या मालुम करने के लिये स्वरों के आपसी गुणान्तर को समझे बिना आगे बढ़ना ठीक न होगा। दो स्वरों की आंदोलन-संख्याओं के भजनफल को उनका गुणांतर या स्वरांतर कहते हैं। जैसे षड्ज स्वर की आंदोलन-संख्या २४० मानली गई है और पंचम स्वर की आंदोलन-संख्या ३६० हो तो षड्ज और पंचम का

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गुणान्तर बड़ी संख्या में छोटी संख्या का भाग देने से निकल आवेगा। अर्थात् ३६०÷२४०=$\frac{३६०}{२४०}$ अथवा $\frac{३}{२}$ या १$\frac{१}{२}$ इसका अर्थ यह हुआ कि पंचम स्वर षड्ज स्वर से डेढ़ गुना ऊँचा है।

इस प्रकार यदि किसी स्वर का गुणांतर हमें मालुम हो तो षड्ज की आन्दोलन-संख्या २४० को उससे गुणा कर देने से उस स्वर की आन्दोलन-संख्या निकल आती है। चाहे जिस स्वर की आन्दोलन-संख्या निकाली जाय, किन्तु षड्ज की मदद बिना वह नहीं निकल सकेगी क्योंकि षड्ज ही सब स्वरों का आधार है।

तार की लम्बाई के नाप से भी स्वरों का गुणांतर निकल आता है। जैसे-षड्ज के तार की लम्बाई ३६ इञ्च है और मध्यम की लम्बाई २७ इञ्च है। अब हमने इसका गुणांतर निकाला तो ३६ में २७ का भाग दिया, इसका अर्थ हुआ $\frac{३६}{२७}$ या $\frac{४}{३}$ इस प्रकार षड्ज और मध्यम में ४ : ३ का या $\frac{४}{३}$ का स्वरान्तर है। अब इसी गुणांतर या स्वरांतर को लेकर मध्यम स्वर की आन्दोलन संख्या मालुम की जावे तो इस प्रकार निकलेगी— $\frac{४}{३}$×२४०=३२० क्योंकि षड्ज की मानी हुई आन्दोलन-संख्या २४० है और षड्ज मध्यम का स्वरांतर $\frac{४}{३}$ है इसलिये $\frac{४}{३}$ को २४० से गुणा करके आसानी से मध्यम को आन्दोलन-संख्या ३२० निकल आई। इसी प्रकार पंचम को आन्दोलन-संख्या निकालने के लिये सा=३६ इञ्च, प=२४ इञ्च इनका स्वरान्तर हुआ $\frac{३६}{२४}$ यानी $\frac{३}{२}$ इसको षड्ज की आन्दोलन-संख्या २४० से गुणा कर दिया तो $\frac{३}{२}$×२४०=३६० 'प' की आन्दोलन संख्या निकल आई।

यह तो हुआ स्वरों की लम्बाई से आन्दोलन-संख्या निकालने का नियम। अब यह बताते हैं कि आन्दोलन संख्या से स्वरों की लम्बाई किस प्रकार निकलती है:—

आन्दोलन-संख्या से लम्बाई निकालना

अगर दो स्वरों की आन्दोलन-संख्या हमें मालुम हो तो उनकी लम्बाई भी निकाली जा सकती है और यदि उनमें से एक ही स्वर की लम्बाई मालुम हो तो गुणान्तर (स्वरान्तर) निकाल कर लम्बाई मालुम की जायेगी। उदाहरणार्थः—षड्ज और मध्यम की आन्दोलन संख्याओं से हमें मध्यम स्वर की लम्बाई मालुम करनी है, तो इस प्रकार करेंगेः-षड्ज=२४०" मध्यम ३२०" इनका गुणान्तर हुआ $\frac{३२०}{२४०}$=$\frac{४}{३}$ इस गुणान्तर का षड्ज की लम्बाई ३६ इञ्च में भाग दिया गया ३६÷$\frac{४}{३}$=२७ इञ्च मध्यम की लम्बाई निकल आई। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि लम्बाई से आन्दोलन निकालने में तो स्वरान्तर का षड्ज की आन्दोलन संख्या से गुणा करना होगा और जब आंदोलन से लम्बाई निकाली जायगी तब षड्ज की लम्बाई में उस स्वरान्तर का भाग देना होगा। इस प्रकार मालुम होगा कि तार को लम्बाई और स्वर की आंदोलन-संख्या का सम्बन्ध बिलकुल उलटा है। लम्बाई घटेगी तो नाद या आवाज ऊँची होगी, जैसे सा की लम्बाई ३६ इञ्च है प की २४ इञ्च ही रह गई। सा से प की आवाज तो ऊँची हो गई किन्तु लम्बाई कम हो गई। इसके विरुद्ध स्वर ऊँचा होता है तो आंदोलन-संख्या बढ़ती है और स्वर नीचा होता है तो आंदोलन-संख्या कम होती है। जैसे सा की आंदोलन-संख्या २४० है और प की बढ़कर ३६० हो गई।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार ध्वनि (नाद) की दृष्टि से स्वर-स्थानों का स्पष्टीकरण करने के लिये दो साधन हुए:—

(१) प्रत्येक ध्वनि के एक सैकिण्ड में होने वाले तुलनात्मक आंदोलन बताना।

(२) वीणा के बजने वाले तार की लम्बाई के भिन्न-भिन्न भागों से ध्वनि की ऊँचाई-निचाई बताना।

हमारे प्राचीन ग्रंथकारों को इनमें से पहिला साधन या तो मालुम नहीं था या उन्होंने इसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने अपने ग्रंथों में दूसरे साधन की ही चर्चा विशेष रूप से की है। प्रथम साधन की चर्चा आधुनिक ग्रन्थकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई है।

सङ्गीत के इतिहास का मध्यकाल १४ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक माना जाता है, इसमें सङ्गीत के विद्वानों ने सङ्गीत पर कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। जिनके नाम हैं-

(१) सङ्गीत पारिजात (२) हृदय कौतुक (३) हृदय प्रकाश (४) रागतत्वविबोध इत्यादि।

इनमें से मुख्य ग्रन्थ 'सङ्गीत पारिजात' है, जिसके लेखक हैं अहोबल पण्डित। इन्होंने ही सर्वप्रथम वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न भागों से १२ स्वरों के ठीक-ठीक स्थान निश्चित किये। इसके पश्चात् श्रीनिवास पण्डित ने भी अपने लिखे हुए ग्रन्थ 'रागतत्वविबोध' में १२ स्वरों के स्थान बताये हैं।

पं० श्रीनिवास ने वीणा के ३६ इन्च लम्बे खुले तार पर षड्ज स्वर मानकर क्रमशः बारहों स्वरों के परदे बांधने का ढङ्ग बताया है।

पण्डित श्रीनिवास के स्वरों की स्थापना का नियम समझने से पहले हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि श्रीनिवास का शुद्ध थाट आधुनिक "काफी थाट" था, अर्थात् इनके शुद्ध थाट में गांधार और निषाद कोमल थे, जबकि हमारे सङ्गीतज्ञ आजकल शुद्ध-थाट बिलावल मानते हैं। इसी प्रकार अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों के ७ शुद्ध स्वरों में ग, नि कोमल होते थे। उनके ७ शुद्ध स्वर इस प्रकार थे:—

सा (शुद्ध)	प (शुद्ध)
रे (तीव्र)	ध (तीव्र)
ग (कोमल)	नि (कोमल)
म (कोमल)	

वीणा के तार पर श्रीनिवास के स्वर

सबसे पहले श्रीनिवास पण्डित, तार षड्ज और मध्य षड्ज का स्थान वीणा पर इस प्रकार बताते हैं:—

पूर्वांत्ययोश्चमेर्वोश्च मध्ये तारकसः स्थितिः।
तदर्धे त्वतितारस्य सस्वरस्य स्थितर्भवेत् ॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

षड्ज (तार सप्तक)

मेरु से घुड़च तक जो वीणा का तार खिंचा हुआ है, उसके ठीक बीचों बीच तार षड्ज स्थित है। अर्थात् ३६ इञ्च लम्बा तार मानकर उसके दो भाग करने पर ३६÷२=१८ इञ्च पर तार षड्ज बोलेगा।

सां

मेरु○ —————————————— ○घुड़च

१८ इञ्च

सा (षड्ज मध्य सप्तक)

पूरे ३६ इञ्च लम्बे खुले तार को बिना किसी जगह दबाये छेड़ा जाये तो मध्य-सप्तक का षड्ज बोलेगा।

सा

मेरु○ —————————————— ○ घुड़च

३६ इञ्च

इसके बाद बताते हैं अतितार षड्ज और मध्यम स्वरों के स्थानः—

मध्यस्थानादिमषड्जमारभ्यातारषड्जगम् ।
सूत्रं कुर्यात्तदर्धे तु स्वरम् मध्यममाचरेत् ॥

सां (अति तार षड्ज)

घुड़च और तार षड्ज (सां) के बीच में जो १८ इञ्च स्थान है उसके मध्य स्थान में अति तार षड्ज स्थापित है अर्थात् सां से ९ इञ्च आगे जाकर अति तार षड्ज बोलेगा।

सा सां सां

○ —————————————— ○ घुड़च

३६ १८ ९

मध्यम

मेरु और तार षड्ज के बीच में जो १८ इञ्च का तार है, उसके दो भाग ९-९ इञ्च के हुए अतः मध्यम स्वर १८+९=२७ इञ्च पर बोलेगा। अर्थात् सा और सां के बीच में मध्यम स्वर है।

सा म सां

○ —————————————— ○

३६ इञ्च २७ इंच १८ इंच

पंचम

भागत्रयसमायुक्तं तत्सूत्रं कारितम् भवेत् ।
पूर्वभागद्वयादग्रे स्थापनीयोऽथ पंचमः ॥

पंचम स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि मेरु और तार सां के बीच के हिस्से को

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

३ बराबर भागों में बांटा जाय तो १८÷३=६ इन्च पर पंचम स्वर बोलेगा। इस प्रकार पंचम स्वर की लम्बाई घुड़च से १८+६=२४ इन्च हुई।

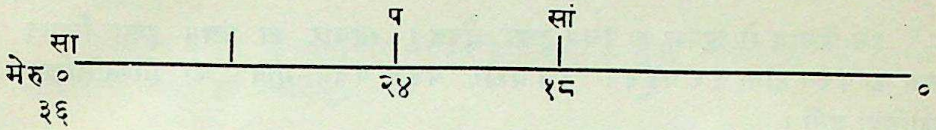

गांधार

षड्जपंचममध्ये तु गान्धारस्थानमाचरेत्।
षड्जपंचमगं सूत्रमंशत्रयसमन्वितम् ॥

षड्ज और पंचम के बीच में गान्धार है। अर्थात् गान्धार स्वर पंचम से ६ इन्च बायीं ओर होगा और घुड़च से गांधार की लम्बाई २४+६=३० इन्च होगी।

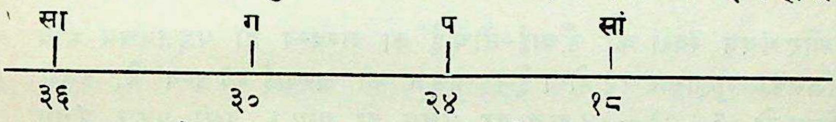

ध्यान रहे श्रीनिवास का यह गांधार वर्तमान प्रचलित कोमल गांधार है, क्योंकि इन्होंने अपने शुद्ध थाट में ग, नि कोमल लिये हैं।

ऋषभ

तत्रांशद्वयसंत्यागात् पूर्वभागे तु रिर्भवेत्।

ऋषभ स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि षड्ज और पंचम के बीच के स्थान के ३ भाग करके मेरु के पूर्व भाग में ऋषभ स्वर बोलेगा। मेरु और पंचम के बीच का स्थान १२ इन्च है तो १२÷३=४ अर्थात् मेरु से चार इन्च पर ऋषभ हुआ,इस प्रकार घुड़च से ऋषभ की लम्बाई ३६—४=३२ इन्च हो जायगी।

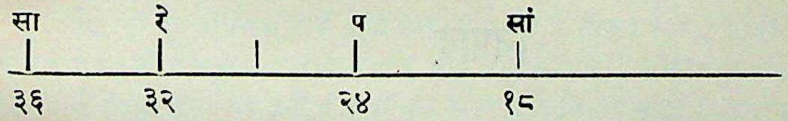

धैवत

पंचमोत्तरषड्जाख्यमध्ये धैवतमाचरेत् ॥

पंचम और तार षड्ज के मध्य स्थान में धैवत स्वर स्थित है, ऐसा श्रीनिवास पंडित का कहना है। किन्तु प – सां के बीचोंबीच धैवत स्थापित करके जब हम बजाते हैं तो कुछ ऊँचा अर्थात् चढ़ा हुआ बोलता है, इस थोड़े से अन्तर के लिये श्रीनिवास का कहना है कि 'स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापन कारणम्' इसका भावार्थ यही है कि ऋषभ का स्थान निश्चित हो जाने पर धैवत का स्थान "षड्जपंचम-भाव" से कायम कर लेना चाहिए। धैवत के उपरोक्त श्लोक में "मध्ये" का अर्थ बीच न मानकर क्षेत्र मान लेने से सब ठीक हो जाता है। षड्ज पंचम-भाव का अर्थ यही है कि जिस प्रकार पंचम स्वर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

षड्ज स्वर से डेढ़गुना ऊँचा है, उसी प्रकार ऋषभ से डेढ़गुना ऊँचा धैवत है, गांधार से डेढ़गुना ऊँचा निषाद है और मध्यम स्वर से डेढ़गुना ऊँचा तार षड्ज होगा।

इस हिसाब से ऋषभ का पंचम हुआ धैवत। गांधार का पंचम हुआ निषाद मध्यम का पंचम होगा तार षड्ज। इस प्रकार "षड्ज पंचम-भाव" की निम्नलिखित ४ जोड़ियां बनीं।

सपयो रिधयोश्चैव तथैव गनिषादयोः।
संवादः संमतो लोके मसयोः स्वरयोर्मिथः॥

अर्थात्, सा – प, रे – ध, ग – नि, म – सां। ये सम्वाद सङ्गीतज्ञों में प्रसिद्ध हैं ही।

षड्ज और पंचम स्वरों की ऊँचाई-नीचाई का सम्बन्ध ही षड्जपंचम-भाव कहलाता है, जिसका गुणान्तर १½ होता है। षड्ज की लम्बाई ३६ इन्च है, इसमें डेढ़ का भाग दिया तो ३६÷१½=२४ इन्च पर पंचम हो गया। इसी प्रकार पंचम जो कि २४ इन्च पर स्थित है; डेढ़ से गुणा कर दिया तो २४×१½=३६ इन्च पर षड्ज हो गया; अब इसी हिसाब को लेकर अर्थात् षड्जपंचम-भाव से रे – ध की दूरी निकाली गई तो इस प्रकार निकली:—

चूँकि ऋषभ की लम्बाई ३२ इन्च है तो ३२÷१½÷२१⅓ इसलिये २१⅓ इन्च पर धैवत स्वर स्थित हुआ।

सा	रे		प	ध	सां	
३६	३२		२४	२१⅓	१८	

निषाद

पसयोर्मध्यभागे स्यात् भागत्रयसमन्विते।
पूर्वभागद्वयं त्यक्त्वा निषादो राजते स्वरः॥

पंचम और तारषड्ज की लम्बाई के ३ भाग करके पहिले दो भागों को छोड़ दिया जाये तो तीसरे भाग पर निषाद स्वर होगा। पंचम और तारषड्ज के बीच की लम्बाई ६ इन्च है, इसके तीन भाग किये गये ६÷३=२ इन्च। क्योंकि षड्ज की लम्बाई १८ इन्च है, अतः १८+२=२० इन्च पर निषाद स्वर स्थापित हुआ।

सा	प		नि	सां
३६	२४		२०	१८

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ध्यान रहे यह निषाद हमारा कोमल निषाद है, ऊपर हम बता चुके हैं कि श्रीनिवास ने अपने शुद्ध थाट में ग, नि यह दोनों स्वर ले लिये हैं, जिन्हें हम आजकल कोमल ग, नि कहते हैं।

उपरोक्त वर्णन के अनुसार श्रीनिवास पंडित के शुद्ध स्वर-स्थानों की लम्बाई आन्दोलनों सहित इस प्रकार हुई:—

श्रीनिवास के शुद्ध स्वर—

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लंबाई	आन्दोलन संख्या
सा	षड्ज (मध्य सप्तक)	३६ इन्च	२४०
सां	षड्ज (तार सप्तक)	१८ "	४८०
सां	षड्ज (अति तार सप्तक)	९ "	९६०
म	मध्यम (मध्य सप्तक)	२७ "	३२०
प	पंचम (")	२४ "	३६०
ग	गांधार (")	३० "	२८८
रे	ऋषभ (")	३२ "	२७०
ध	धैवत (")	२१ $\frac{1}{3}$ "	४०५
नि	निषाद (")	२० "	४३२

यह तो हुए श्रीनिवास के शुद्ध स्वर, अब रहे ५ विकृत स्वर (यानी कोमल ऋषभ, कोमल धैवत, तीव्रतर मध्यम, तीव्र गांधार और तीव्र निषाद)। श्रीनिवास पंडित गांधार और निषाद के विकृत होने पर उन्हें तीव्र गांधार और तीव्र निषाद कहते हैं, जबकि हमारी पद्धति में ग, नि विकृत होने पर कोमल ग, नि कहलाते हैं।

श्रीनिवास के विकृत स्वर

कोमल रे

भागत्रयोदिते मध्ये मेरोर्क्टभसंज्ञितात्।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कूर्यात् कोमलरिस्वरम्॥

मध्य सा और शुद्ध रे के बीच में तार की जितनी लम्बाई है उसके तीन भाग किये तो सा से दूसरे भाग पर या मेरु से दूसरे भाग पर कोमल रे स्वर बोलेगा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सा और रे का अन्तर ४ इन्च है, इसके तीन भाग किये तो प्रत्येक भाग $\frac{४}{३}$ इन्च का हुआ। क्योंकि रे की लंबाई घुडच से ३२ इन्च दूर है अतः $३२+\frac{४}{३}=३३\frac{१}{३}$ इन्च पर कोमल रे स्थापित हुआ। नीचे के चित्र में षड्ज और शुद्ध ऋषभ के तार का ४ इञ्च लंबाई दिखाकर ३ भाग करके कोमल ऋषभ दिखाया जाता है:—

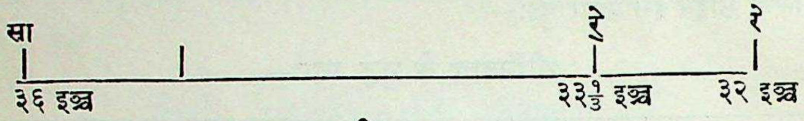

तीव्र ग

मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत् ।

मेरु (षड्ज) और धैवत के बीच में तीव्र गांधार है। मेरु और ध का अन्तर इस प्रकार है:—सा ३६-ध $२१\frac{१}{३}=१४\frac{२}{३}$ इसका आधा हुआ $७\frac{१}{३}$ इञ्च। अतः तीव्र गांधार की लंबाई धैवत से $७\frac{१}{३}$ इन्च हुई और घुड़च से हुई $२१\frac{१}{३}+७\frac{१}{३}=२८\frac{२}{३}$ इञ्च। नीचे के चित्र में सा और ध के बीच में तीव्र गन्धार दिखाया है।

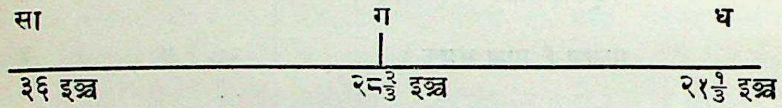

तीव्रतर मध्यम

भागत्रयविशिष्टेस्मन् तीव्रगांधारषड्जयोः ।
पूर्वभागोत्तरं मध्ये मं तीव्रतरमाचरेत् ॥

तीव्र गान्धार और तार षड्ज के मध्यम के तीन भाग करके प्रथम भाग पर तीव्रतर मध्यम स्थापित होगा। तीव्र ग और तार सां का अन्तर=$२८\frac{२}{३}—१८=१०\frac{२}{३}$ अर्थात् $\frac{३२}{३}$ हुआ, इसके ३ भाग किये गये तो $\frac{३२}{३}\times\frac{१}{३}=\frac{३२}{९}$ इञ्च का प्रत्येक भाग होगा। अतः तीव्रतर मध्यम घुडच से $१८+\frac{३२}{९}+\frac{३२}{९}=२५\frac{१}{९}$ इञ्च की दूरी पर होगा। नीचे के चित्र में तार षड्ज और तीव्र गान्धार के बीच में तीव्र मध्यम का स्थान देखिये:—

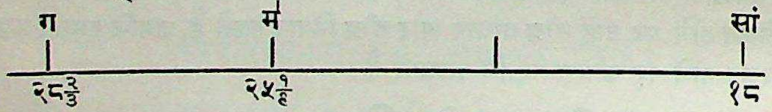

कोमल धैवत

भागत्रयान्विते मध्ये पंचमोत्तरषड्जयोः ।
कोमलो धैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे विवेकिभिः ॥

पंचम और तारषड्ज के बीच के तार की ६ इञ्च लंबाई के ३ भाग करें तो कोमल धैवत पंचम से पहले भाग पर होगा क्योंकि पंचम की लंबाई घुडच से २४ इन्च है, इसमें से २ घटाये जायेंगे तो २२ इन्च पर कोमल धैवत उपरोक्त श्लोक के अनुसार होना चाहिये। किन्तु जब हम इसे वीणा पर बजाते हैं तो यह कुछ चढ़ा हुआ बोलता है, अतः इसे भी

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

षड्जपंचम-भाव से ही निकलना होगा तभी कोमल धैवत का सही-सही स्थान मालुम हो सकेगा।

जिस प्रकार षड्जपंचम-भाव द्वारा शुद्ध धैवत की लंबाई शुद्ध ऋषभ की सहायता से निकाली गई थी; उसी प्रकार कोमल ऋषभ की सहायता से कोमल धैवत की लम्बाई निकलेगी: –

रे॒ की लंबाई ३३$\frac{१}{३}$ है इसमें ड़ेढ़ का भाग दिया ३३$\frac{१}{३}$ ÷ १$\frac{१}{२}$ = $\frac{१००}{३}$ × $\frac{२}{३}$ = २२$\frac{२}{९}$ इञ्च। अर्थात् कोमल धैवत की लम्बाई घुडच से २२$\frac{२}{९}$ इञ्च बिलकुल ठीक है।

तीव्र निषाद

तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥

धैवत और तार षड्ज की लम्बाई (जो कि $\frac{१०}{३}$ इञ्च है) इसके तीन भाग किये जायें तो धैवत से दूसरे भाग पर तीव्र निषाद स्थित होगा। अर्थात्:—

धैवत २१$\frac{१}{३}$ – तार षड्ज १८ = $\frac{१०}{३}$ ÷ ३ = $\frac{१०}{९}$ इञ्च का प्रत्येक भाग हुआ और घुडच से तीव्र निषाद की लम्बाई १८ + $\frac{१०}{९}$ = १९$\frac{१}{९}$ इञ्च हुई। नीचे के चित्र में धैवत और तार षड्ज के ३ भागों में तीव्र निषाद देखिये:--

ध	नि	सां
२१$\frac{१}{३}$	१९$\frac{१}{९}$	१८

इस प्रकार श्रीनिवास के पांचों विकृत स्वर निश्चित हुए जिनकी लम्बाई निम्न-लिखित नक्शे में देखिये:—

श्रीनिवास के ५ विकृत स्वर

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लम्बाई	आन्दोलन
रे॒	कोमल ऋषभ (मध्य सप्तक)	३३$\frac{१}{३}$ इञ्च	२५९$\frac{४}{५}$
ग	तीव्र गांधार "	२८$\frac{२}{३}$ "	३०१$\frac{१७}{४३}$
मं	तीव्रतर मध्यम "	२५$\frac{१}{९}$ "	३४४$\frac{८}{११३}$
ध॒	कोमल धैवत "	२२$\frac{२}{९}$ "	३८८$\frac{४}{५}$
नि	तीव्र निषाद "	१९$\frac{१}{९}$ "	४५२$\frac{४}{४३}$

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

श्रीनिवास के उपरोक्त ५ विकृत स्वरों में ग, नि तीव्र हैं, इसका कारण यही है कि श्रीनिवास इन दोनों तीव्र स्वरों को विकृत मानते थे, जबकि हम आजकल इन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं।

हम पीछे बता चुके हैं कि तार की झनकार द्वारा १ सैकिण्ड में हवा में जो कम्पन पैदा होता है, उसे आन्दोलन कहते हैं। 'अभिनव रागमंजरी' के लेखक श्री भातखंडे जी ने आधुनिक सङ्गीत पद्धति के स्वरों की स्थापना दो प्रकार से बताई है-एक तो वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न नापों द्वारा और दूसरी स्वरों के आन्दोलन द्वारा। वीणा के तार की लम्बाई से उन्होंने जो स्वर-स्थान निश्चित किये हैं उनमें श्रीनिवास की प्रणाली ही अपनाई गई है। शुद्ध स्वरों की लम्बाई तो श्रीनिवास की और भातखण्डे जी (मंजरीकार) की एक सी ही हैं, केवल अन्तर इतना हो है कि मंजरीकार ने अपने शुद्ध ग, नि की लम्बाई वे रक्खी हैं जो श्रीनिवास ने तीव्र ग नि की रक्खी हैं। इसका कारण यही है कि मंजरीकार अपने शुद्ध थाट में ग, नि तीव्र ही लेते हैं, जबकि श्रीनिवास अपने शुद्ध थाट में कोमल ग, नि लेते हैं।

विकृत स्वरों में मंजरीकार ने कोमल ग, नि की लंबाइयाँ वही रक्खी हैं जो श्रीनिवास ने शुद्ध ग, नि की रक्खी थीं, केवल रे॒ ध॒ मं इन तीन स्वरों के स्थान मंजरीकार ने बदलकर इस प्रकार बताये हैं।

कोमल ऋषभ और कोमल धैवत के लिये उन्होंने लिखा है:—

मध्ये षड्जर्षभकयोः संस्थितः कोमलर्षभः।
षड्जपंचम भावेन तत्संवादी ध कोमलः ॥

अर्थात्—मध्य षड्ज और शुद्ध रे के बीचोंबीच कोमल ऋषभ स्थापित है और उसी के षड्जपंचमभाव द्वारा कोमल धैवत का स्थान नियत किया है। इस प्रकार मंजरीकार के कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत की लम्बाई इस प्रकार निकलती है:—

कोमल रे॒—मध्य सा और शुद्ध रे के तार की लम्बाई ४ इन्च के दो बराबर भाग करें तो प्रत्येक भाग दो इन्च का हुआ क्योंकि मध्य षड्ज ३६ इञ्च पर है और शुद्ध रे ३२ इंच पर है अतः कोमल रे॒ घुड़च से ३४ इंच पर होगा।

कोमल ध॒—इसे षड्जपंचमभाव से निकाला गया तो इस प्रकार निकलेगा:—

कोमल ऋषभ की लम्बाई ३४ इंच है, इसमें डेढ़ का भाग दिया तो $३४ \div १\frac{१}{२} = २२\frac{२}{३}$ इंच पर कोमल धैवत हुआ। अब रहा मंजरीकार का तीव्र मध्यम; इसके लिये वे लिखते हैं:—

मध्यपंचमयोर्मध्ये तीव्रमध्यममाचरेत्।

अर्थात् शुद्ध मध्यम और पंचम के ठीक बीचों बीच तीव्र मध्यम है। शुद्ध मध्यम की लम्बाई २७ इंच है और पंचम की २४ इंच है तो $२५\frac{१}{२}$ इंच पर तीव्र मध्यम स्थापित हुआ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसके अतिरिक्त मंजरीकार श्री भातखण्डे जी ने स्वरों के आंदोलन द्वारा स्वरों की ऊँचाई–निचाई नियत की है। मंजरीकार के स्वरों की आंदोलन-संख्या समझने से पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि मंजरीकार का शुद्ध थाट बिलावल है अर्थात् वे अपने थाट में सब शुद्ध स्वर मानते हैं। उनके १२ शुद्ध-विकृत स्वर, तार की लम्बाई तथा आंदोलन-संख्या सहित इस प्रकार हैं:—

मञ्जरीकार (भातखण्डे) के १२ स्वर–स्थान

स्वर	शुद्ध या विकृत	तार की लम्बाई	आन्दोलन-संख्या
१ सा	शुद्ध	३६ इञ्च	२४०
२ <u>रे</u>	कोमल विकृत	३४ "	२५४ २/१७
३ रे	तीव्र (शुद्ध)	३२ "	२७०
४ <u>ग</u>	कोमल (विकृत)	३० "	२८८
५ ग	तीव्र (शुद्ध)	२८ २/३ "	३०१ १७/४३
६ म	कोमल (शुद्ध)	२७ "	३२०
७ मं	तीव्र (विकृत)	२५ १/२ "	३३८ १४/१७
८ प	शुद्ध	२४ "	३६०
९ <u>ध</u>	कोमल (विकृत)	२२ २/३ "	३८१ ३/१७
१० ध	तीव्र (शुद्ध)	२१ १/३ "	४०५
११ <u>नि</u>	कोमल (विकृत)	२० "	४३२
१२ नि	तीव्र (शुद्ध)	१९ १/९ "	४५२ ४/४३
सां	तार (शुद्ध)	१८ "	४८०

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि मंजरीकार के कोमल <u>रे</u> कोमल <u>ध</u> और तीव्र मं यह तीन स्वर-स्थान प्राचीन ग्रन्थों से अलग हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थाट

थाट पद्धति का विकास

१५ वीं शताब्दी के अन्तिम काल में रागतरंगिणी के लेखक लोचन कवि ने रागों के वर्गीकरण की परम्परागत शैली ग्राम और मूर्च्छना का परिमार्जन करके मेल अथवा थाट को सामने रक्खा। उस समय तक लोचन कवि के लेखानुसार १६०० राग थे, जिन्हें गोपियाँ कृष्ण के सामने गाया करती थीं, किन्तु उनमें से ३६ राग प्रसिद्ध थे। उन्होंने इन सब बखेड़ों को समाप्त करके १२ थाट या मेल इस प्रकार क़ायम किये :—

१-भैरवी २-तोड़ी ३-गौरी ४-कर्नाट ५-केदार ६-ईमन ७-सारंग ८-मेघ ९-धनाश्री १०-पूर्वी ११-मुखारी १२-दीपक।

लोचन के मेल (थाटों) की जन्य राग-व्यवस्था इस प्रकार है :—

१-भैरवी-१-भैरवी २-नीलाम्बरी।

२-तोड़ी-१-तोड़ी।

३-गौरी -१-मालव २-श्रीगौरी ३-चैतीगौरी ४-पहाड़ीगौरी ५-देशीतोड़ी ६-देशिकार ७-गौरी ८-त्रिवण ९-मुलतानी १०-धनाश्री ११-बसंत १२-रामकरी १३-गुर्जरी १४-बहुली १५-रेवा १६-भटियार १७-षट १८-पंचम १९-जयंतश्री २०-आसावरी २१-देवगांधार २२-सेंधव्यासावरी २३-गुणकरी।

४-कर्णाट-१-कानर २-वेगीश्वरीकानर ३-खम्बावती ४-सोरट ५-परज ६-मारू ७-जैजयंती ८-ककुभा ९-कामोद १०-कामोदी ११-गौर १२-मालकौशिक १३-हिन्डोल १४-सुग्राही १५-अडाणा १६-गौरकानर १७-श्री राग।

५-केदार-१-केदारनाट २-आभीरनाट ३-खम्बावती ४-शंकराभरण ५-विहागरा ६-हम्मीर ७-श्याम ८-छायानट ९-भूपाली १०-भीमपलासका ११-कौशिक १२-मारु।

६-इमन -१-इमन २-शुद्धकल्याण ३-पूरिया ४-जयतकल्याण।

७-सारंग-१-सारंग २-पटमंजरी ३-वृन्दावनी ४-सामंत ५-बड़हंसक।

८-मेघ—१-मेघमल्लार २-गौड़सारङ्ग ३-नाट ४-वेलावली ५-अलैया ६-सुहू ७-देशी सुहु ८-देशाख्य ९-शुद्ध नाट।

९-धनाश्री-१-धनाश्री २-ललित।

१०-पूर्वी—१-पूर्वी।

११-मुखारी-१-मुखारी।

१२-दीपक-१-दीपक।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लोचन के बाद बहुत समय तक मेल या थाट के बारे में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। १६५५ ई० के लगभग श्री हृदयनारायण देव ने लोचन के उक्त थाटों के वर्गीकरण की पुष्टि करते हुए इस प्रकार व्याख्या की:—

१—भैरवी-शुद्ध स्वर 'सांशन्यासा च सम्पूर्णा षड्जादिर्भैरवोभवेत्।'

२—कर्नाट-'कर्णाटस्त्रय सम्पूर्णः षड्जादिः परिकीर्तितः ॥'

३—मुखारी-कोमल धैवत 'ध कोमला मुखारी स्यात्पूर्णाधादिक मूर्धना।'

४—तोड़ी—कोमलर्षभवधैतो, तीव्रतरगांधारनिषादौ च।

कोमलर्षभधा पूर्णा गांशा तोड़ी निरूप्यते ॥

५—केदार—गांधार और निषाद।

६—यमन—तीव्रतर गान्धार, धैवत और निषाद।

७ - मेव—

८—हृदयराम—तीव्रतम गांधार, मध्यम और निषाद।

'गस्यतीव्रतमत्वेऽथ तथा तीव्रतमौ मनी।

इहैवोत्प्रैच्चिता पूर्णा हृदयाद्यारिभोच्यते ॥'

९—गौरी—

१०-सारंग—

११-पूर्वी—

१२-धनाश्री—

सत्रहवीं शताब्दी में थाटों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण प्रचार में आगया था जो उस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ सङ्गीत पारिजात और रागविबोध से स्पष्ट है। इसी काल में श्रीनिवास ने मेल की परिभाषा करते हुए बताया कि राग की उत्पत्ति थाट से होती है और थाट के तीन रूप हो सकते हैं-औडव, षाडव और संपूर्ण। उसके पश्चात् सत्रहवीं-शताब्दी के अन्त तक थाटों की संख्या में विद्वानों का विशेष मतभेद रहा। उदाहरणार्थ राग विबोध के लेखक ने थाटों की संख्या २३ बताई, स्वरमेलकलानिधि के लेखक ने २० बताये तथा चतुर्दण्डिप्रकाशिका के लेखक ने १६ लिखे, आदि।

दक्षिणी सङ्गीत पद्धति के विद्वान लेखक पं० व्यंकटमखी ने थाटों की संख्या निश्चित करने के लिये गणित का सहारा लिया और पूर्णरूप से हिसाब लगाकर थाटों की कुल निश्चित संख्या ७२ बताई। इसके बारे में अपने दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने कहा कि इस संख्या में सङ्गीत के जनक भगवान शंकर भी घटाबढ़ी नहीं कर सकते। ७२ में से व्यंकटमखी ने १६ थाट काम चलाऊ चुनलिये, जिनकी तालिका आगे दी जायगी। व्यंकटमखी की इस थाट

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

९—कोमल रे, कोमल ध और तीव्रतर म को छोड़कर बाकी सब शुद्ध और विकृत स्वर वर्तमान हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं।

१०—कोमल रे, तीव्रतर म और कोमल ध यह तीन स्वर सङ्गीत पारिजात तथा अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों के आधार पर हैं।

९—इनके कोमल तीव्र या शुद्ध और विकृत सभी स्वर एक मत से वर्तमान हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं।

१०—कोमल रे, तीव्र म और कोमल ध इनके यह तीनों स्वर-स्थान मध्यकालीन ग्रंथकारों से मेल नहीं खाते। यह इनके स्वयं आविष्कारक हैं।

भारतीय तथा योरोपीय स्वर-सम्वाद

हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में जिन स्वरों को सा, रे, ग, म, प, ध, नि कहा जाता है, पश्चिमी (अँग्रेजी) सङ्गीत पद्धति में इन्हें Do. Re. Mi. Fa. Sol. La. Se. कहते हैं। उन्होंने अपने निर्धारित स्वर स्टेंडर्ड के लिये सप्त स्वरों के संक्षिप्त नाम या इशारे इस प्रकार कायम किये हैं।

C. D. E. F. G. A. B. इन स्वर-संकेतों के आधार पर ही पश्चिम तथा अन्य देशों के सङ्गीत कलाकार (Artist) अपने-अपने वाद्य (Instruments) तैयार करते हैं।

उपर्युक्त अँग्रेजी स्वरों की तुलना यदि हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के स्वरों से की जावे तो दोनों में काफी अन्तर दिखाई देता है। यद्यपि पश्चिमी सङ्गीतज्ञ अपने ७ स्वरों को हमारी सङ्गीत पद्धति के लगभग बिलावल थाट अर्थात् शुद्ध स्वर सप्तक के समान मानते हैं, फिर भी हमारे और उनके स्वरों की आन्दोलन-संख्या में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारे और उनके स्वरान्तर अलग-अलग हैं।

वे अपने सात स्वरों को तीन भागों में विभाजित करते हैं (१) मेजरटोन Major-Tone (२) माइनरटोन Minor Tone (३) सेमीटोन Semi Tone। पश्चिमी विद्वानों ने अपने सात स्वरों का परस्पर अन्तर अर्थात् स्वरान्तर निकाल कर उनकी आंदोलन-संख्या निश्चित की है, उनके स्वरांतर (फ़ासले) इस प्रकार हैं।

C-D	D-E	E-F	F-G	G-A	A-B	B-C
९/८	१०/९	१६/१५	९	१०/९	९/८	१६/१५

इन स्वरांतरों में पहला, चौथा और छठा स्वरांतर मेजरटोन दूसरा और पांचवाँ स्वरांतर माइनरटोन तथा तीसरा और सातवां सेमीटोन कहलाता है।

उपरोक्त स्वरांतरों के द्वारा ही पश्चिमी सङ्गीत-पण्डितों ने स्वरों की आंदोलन-संख्या इस प्रकार निश्चित की है।

State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पश्चिमी स्वर	हिन्दुस्थानी में उनके स्वर नाम	पश्चिमी आंदोलन संख्या	हिन्दुस्थानी आंदोलन संख्या (मंजरीकार)
C	सा (अचल)	२४०	२४०
	रे॒ कोमल	२५६	२५४ $\frac{३}{१७}$
D	रे तीव्र	२७०	२७०
	ग॒ कोमल	२८८	२८८
E	ग तीव्र	३००	३०१ $\frac{१७}{४३}$
F	म कोमल	३२०	३२०
	मं तीव्र	३३७ $\frac{१}{२}$	३३८ $\frac{१४}{१७}$
G	प (अचल)	३६०	३६०
	ध॒ कोमल	३८४	३८१ $\frac{३}{१७}$
A	ध तीव्र	४००	४०५
	नि॒ कोमल	४३२	४३२
B	नि तीव्र	४५०	४५२ $\frac{४}{४३}$
C	सां (तार)	४८०	४८०

उपर्युक्त नक्शे से यह स्पष्ट है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा निर्धारित किये हुए रे॒ कोमल, ग तीव्र, मं तीव्र, ध॒ कोमल, ध तीव्र तथा नि तीव्र इन ६ स्वरों के आन्दोलन मंजरीकार अथवा हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के आंदोलनों से मेल नहीं खाते। केवल सा अचल, रे तीव्र, ग॒ कोमल, म कोमल, प अचल और नि॒ कोमल के स्वरान्दोलन ही हमारी पद्धति से ठीक-ठीक मिलते हैं।

नोटः—कुछ सङ्गीत-विद्वानों का मत है कि अँग्रेजी स्वरों में से E को सा मानकर ही सप्तक कायम करनी चाहिये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वीणा के तार पर

श्रीनिवास तथा मंजरीकार के स्वर-स्थान तथा आंदोलन-संख्या

श्रीनिवास के स्वर-स्थान			मंजरीकार के स्वर-स्थान		
स्वर-नाम	लम्बाई	आंदोलन	स्वर-नाम	लम्बाई	आंदोलन
षड्ज शुद्ध	३६ इन्च	२४०	षड्ज	३६ इञ्च	२४०
ऋषभ कोमल	३३ १/३"	२५६ १/५	ऋषभ कोमल	३४ "	२५४ २/१७
ऋषभ शुद्ध	३२ "	२७०	ऋषभ तीव्र	३२ "	२७०
गांधार शुद्ध	३० "	२८८	गांधार कोमल	३० "	२८८
गांधार तीव्र	२८ २/३"	३०१ १७/४३	गांधार तीव्र	२८ २/३"	३०१ १७/४३
मध्यम शुद्ध	२७ "	३२०	मध्यम कोमल	२७ "	३२०
मध्यम तीव्रतर	२५ १/९"	३४४ ८/१५३	मध्यम तीव्र	२५ १/२"	३३८ १४/१७
पंचम शुद्ध	२४ "	३६०	पंचम	२४ "	३६०
धैवत कोमल	२२ २/९"	३८८ ४/५	धैवत कोमल	२२ २/३"	३८१ ३/१७
धैवत शुद्ध	२१ १/३"	४०५	धैवत तीव्र	२१ १/३"	४०५
निषाद शुद्ध	२० "	४३२	निषाद कोमल	२० "	४३२
निषाद तीव्र	१९ १/९"	४५२ ४/४३	निषाद तीव्र	१९ १/९"	४५२ ४/४३
षड्ज शुद्ध (तार)	१८ "	४८०	तार षड्ज	१८ "	४८०

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि श्रीनिवास के सभी शुद्ध स्वर-स्थान मंजरीकार ने मान लिये हैं, केवल कुछ विकृत स्वर-स्थानों के बारे में इन दोनों विद्वानों के मत नहीं मिलते, अतः आगे हम लिखते हैं कि इनका मतैक्य तथा मतभेद कौन-कौन सी बातों पर है।

मतैक्य (समानता)

(१) दोनों ही विद्वान् कोमल धैवत तथा शुद्ध धैवत को षड्ज पंचम से निकालकर वीणा के तार पर स्थापित करते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२—दोनों ही विद्वानों ने तीव्र निषाद को भिन्न रीति से वीणा के तार पर स्थापित करके एकमत से उसकी लम्बाई १६$\frac{1}{9}$ इन्च स्वीकार की है।

३—दोनों ही विद्वानों ने कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम और कोमल धैवत यह ३ स्वर वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न रीति से स्थापित किये हैं।

४—कोमल रे, कोमल ध, और तीव्र म को छोड़कर शेष स्वर-स्थान दोनों ही विद्वानों के एक से हैं।

५—दोनों ही विद्वानों के शुद्ध स्वरों तथा कोमल गांधार और कोमल निषाद के स्थानों को वर्तमान सङ्गीतज्ञ मानते हैं और वे हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं।

मतभेद (असमानता)

श्रीनिवास	मंजरीकार (भातखण्डे)
१—शुद्ध थाट में गांधार निषाद कोमल रखते हैं।	१—शुद्ध थाट में गांधार निषाद तीव्र(शुद्ध) रखते हैं।
२—हमारे काफी ठाठ को शुद्ध थाट मानते हैं	२—बिलावल थाट को शुद्ध थाट मानते हैं।
३—सा और रे के तार की लम्बाई के तीन भाग करके सा से दूसरे भाग पर कोमल रे स्थापित करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से ३३ इंच होती है।	३—सा और रे के तार की लम्बाई के दो भाग करके इन दोनों स्वरों के ठीक मध्य में कोमल रे की स्थापना करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से ३४ इञ्च होती है।
४—कोमल धैवत २२$\frac{2}{9}$ इञ्च पर स्थापित करते हैं।	४—कोमल धैवत २२ इञ्च पर स्थापित करते हैं।
५—तीव्र निषाद १६$\frac{1}{9}$ इन्च पर स्थापित करते हैं।	५—तीव्र निषाद १६ इञ्च पर स्थापित करते हैं।
६—तीव्र निषाद का स्थान निकालने के लिये तीव्र ध और तारषड्ज के तार की लम्बाई के तीन भाग करके तीव्र ध से दूसरे भाग पर तीव्र नि वीणा पर स्थापित करते हैं।	६—षड्ज पंचम-भाव से तीव्र निषाद की लम्बाई निकाल कर वीणा पर इसका स्थान निश्चित करते हैं।
७—तीव्रतर मध्यम ३५$\frac{1}{9}$ इन्च पर स्थापित करते हैं।	७—तीव्र मध्यम २५$\frac{1}{3}$ इन्च पर स्थापित करते हैं।
८—कोमल ऋषभ ३३$\frac{1}{3}$ इञ्च पर स्थापित करते हैं, क्योंकि इन्होंने सा और रे की लम्बाई के ३ भाग करके कोमल रे को सा से दूसरे भाग पर रक्खा है।	८—कोमल ऋषभ ३४ इन्च पर स्थापित करते हैं। क्योंकि इन्होंने सा और रे की लम्बाई के दो भाग करके उनके मध्य में कोमल ऋषभ माना है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संख्या को दक्षिणी सङ्गीतज्ञों ने तो अपनाया, किन्तु उत्तरी विद्वानों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी उत्तर भारत के सङ्गीतज्ञ थाटों की कुल निर्धारित ७२ वाली संख्या को ग़लत नहीं मानते। थाटों की यह संख्या अधिक होने के कारण उत्तरी पद्धति के लिये अनुकूल नहीं रही, अतः आधुनिक काल के विद्वान् संगीताचार्य पं० विष्णु-नारायण भातखण्डे ने उक्त ७२ थाटों में से केवल १० थाट चुनकर समस्त प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया, जिसे उत्तर भारतीय सङ्गीत विद्यार्थियों ने अपनाकर राग-रागिनी की प्राचीन पद्धति से अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार लोचन कवि से आरम्भ होकर यह थाट पद्धति चक्कर काटती हुई श्री भातखण्डे के समय में आकर वैज्ञानिक रूप से स्थिर हो गई।

थाट-व्याख्या

मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्।

—अभिनवरागमञ्जरी

अर्थात्—'मेल' (थाट) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिससे राग उत्पन्न हो सकें। नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से थाट तैयार होते हैं।

एक सप्तक में शुद्ध विकृत (कोमल, तीव्र) मिलकर कुल १२ स्वर होते हैं, यह पहले बताया ही जा चुका है। इन्हीं १२ स्वरों की सहायता से थाट तैयार होते हैं। थाट को ही संस्कृत में 'मेल' कहते हैं।

(१) यद्यपि थाट १२ स्वरों से तैयार किये गये हैं, किन्तु एक थाट में ७ स्वर ही लिये जाते हैं, यह ७ स्वर उन्हीं १२ स्वरों में से चुन लिये जाते हैं।

(२) वे सात स्वर, सा रे ग म प ध नि इसी क्रम से और इन्हीं नामों से होने चाहिये। यह हो सकता है कि उपरोक्त ७ स्वरों में कोई कोमल या कोई तीव्र लेलिया जाय, किन्तु सिलसिला यही रहेगा। राग में यह स्वर इस क्रम से हों या न हों; किन्तु थाट में इस क्रम का होना आवश्यक है। राग में ७ स्वर से कम भी हो सकते हैं, किन्तु थाट में ७ स्वरों का होना जरूरी है। अर्थात् थाट का सम्पूर्ण होना आवश्यक है, क्योंकि बहुत से ऐसे राग हैं जिनमें सातों स्वर लगते हैं, इसलिये थाट में सातों स्वरों का होना आवश्यक है, अन्यथा उनसे सम्पूर्ण जाति के राग तैयार करने में असुविधा होगी।

(३) थाट में आरोह-अवरोह दोनों का होना जरूरी नहीं है, बल्कि इसमें केवल आरोह ही होता है।

(४) थाट में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल व तीव्र) साथ-साथ आसकते हैं।

(५) थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है, यानी यह जरूरी नहीं कि थाट सुनने में कानों को अच्छा ही लगे। कारण, थाट में क्रमानुसार ७ स्वर लेने जरूरी होते हैं और कभी-कभी एक स्वर के दो स्वरूप (कोमल, तीव्र) भी साथ-साथ आ सकते हैं, इसलिये प्रत्येक थाट में रंजकता का रहना सम्भव है ही नहीं।

(६) थाट को पहचानने के लिये, उसमें से उत्पन्न हुए किसी प्रमुख राग का नाम दे दिया जाता है, जैसे भैरव एक प्रसिद्ध राग है और वह भैरव थाट से ही

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उत्पन्न (पैदा) हुआ है, इसीलिये इस थाट का नाम भी "भैरव थाट" रख दिया। इसी प्रकार अन्य थाटों के नाम रखे गये हैं। प्रत्येक थाट में स्वर तो केवल ७ ही होते हैं लेकिन उनके स्वरों में कोमल, तीव्र का अन्तर पड़ जाता है। इस अन्तर या फर्क से ही तरह-तरह के थाट बना लिये गये हैं।

यमन विलावल और खमाजी, भैरव पूरवि मारुव काफी।
आसा भैरवि तोड़ि बखाने, दशमित ठाठ चतुर गुनमाने ॥

चतुर पंडित की इस कविता से १० थाटों के नाम आसानी से याद हो जाते हैं। नीचे १० थाटों में लगने वाले कोमल व तीव्र स्वर दिखाये गये हैं :—

दस थाटों के सांकेतिक चिन्ह

१	यमन या कल्याण थाट—	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
२	बिलावल थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
३	खमाज थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
४	भैरव थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
५	पूर्वी थाट—	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
६	मारवा थाट—	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
७	काफी थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
८	आसावरी थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
९	भैरवी थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१०	तोड़ी थाट—	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां

७२ थाट कैसे बनते हैं ?

एक सप्तक के १२ स्वरों से ७२ थाट कैसे बनते हैं, इसे समझाते हैं :—

सा रे रे ग ग म म॑ प ध ध नि नि।

इन १२ स्वरों में से कुछ देर के लिये म॑ (तीव्र मध्यम) हटा दीजिये और ऊपर की सप्तक का सां जोड़कर स्वर संख्या १२ पूरी कर लीजिये। अब यह स्वरूप हो गया :—

सा रे रे ग ग म प ध ध नि नि सां।

इस स्वरसमुदाय के दो भाग कर दिये तो पहिले ६ स्वर वाले समुदाय का नाम पूर्वार्ध और आगे के ६ स्वरों के समुदाय को उत्तरार्ध कहेंगे।

पूर्वार्ध	उत्तरार्ध
सा रे रे ग ग म	प ध ध नि नि सां

अब यह देखिये कि प्रत्येक ६ स्वरों के समुदाय को उलट-पलट कर रखने से चार-चार स्वरों वाले कितने "मेल" बन सकते हैं। पहले पूर्वार्ध वाले स्वरसमुदाय को लेकर चलते हैं :—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पूर्वार्ध				उत्तरार्ध			
१—सा	<u>रे</u>	रे	म	१—प	<u>ध</u>	ध	सां
२—सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	२—प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां
३—सा	<u>रे</u>	ग	म	३—प	<u>ध</u>	नि	सां
४—सा	रे	<u>ग</u>	म	४—प	ध	<u>नि</u>	सां
५—सा	रे	ग	म	५—प	ध	नि	सां
६—सा	<u>ग</u>	ग	म	६—प	<u>नि</u>	नि	सां

उपर्युक्त प्रकारों के अलावा और कोई नवीन प्रकार का मेल इन स्वरों से नहीं बन सकता। अब इन दोनों को आपस में मिलाया गया तो ६×६=३६ थाट बने, जो निम्नलिखित हैं:—

पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के ३६ थाट—

(१)								(२)							
१—सा	<u>रे</u>	रे	म	प	<u>ध</u>	ध	सां	७—सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	ध	सां
२—सा	<u>रे</u>	रे	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां	८—सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां
३—सा	<u>रे</u>	रे	म	प	<u>ध</u>	नि	सां	९—सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	नि	सां
४—सा	<u>रे</u>	रे	म	प	ध	<u>नि</u>	सां	१०-सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	ध	<u>नि</u>	सां
५—सा	<u>रे</u>	रे	म	प	ध	नि	सां	११-सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	ध	नि	सां
६—सा	<u>रे</u>	रे	म	प	<u>नि</u>	नि	सां	१२-सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	<u>नि</u>	नि	सां

(३)								(४)							
१३-सा	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>ध</u>	ध	सां	१९-सा	रे	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	ध	सां
१४-सा	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां	२०-सा	रे	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां
१५-सा	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>ध</u>	नि	सां	२१-सा	रे	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	नि	सां
१६-सा	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां	२२-सा	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	<u>नि</u>	सां
१७-सा	<u>रे</u>	ग	म	प	ध	नि	सां	२३-सा	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	नि	सां
१८-सा	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>नि</u>	नि	सां	२४-सा	रे	<u>ग</u>	म	प	<u>नि</u>	नि	सां

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(५)								(६)							
२५-सा	रे̱	ग	म	प	ध̱	ध	सां	३१-सा	ग̱	ग	म	प	ध̱	ध	सां
२६-सा	रे	ग	म	प	ध̱	नि̱	सां	३२-सा	ग̱	ग	म	प	ध̱	नि̱	सां
२७-सा	रे	ग	म	प	ध̱	नि	सां	३३-सा	ग̱	ग	म	प	ध̱	नि	सां
२८-सा	रे	ग	म	प	ध	नि̱	सां	३४-सा	ग̱	ग	म	प	ध	नि̱	सां
२९-सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३५-सा	ग̱	ग	म	प	ध	नि	सां
३०-सा	रे	ग	म	प	नि̱	नि	सां	३६-सा	ग̱	ग	म	प	नि̱	नि	सां

उपर्युक्त पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के मेल से उत्पन्न हुए ३६ थाटों में केवल शुद्ध मध्यम ही लिया गया है। अब अगले ३६ थाट भी इसी तरह तैयार होंगे। फर्क केवल इतना हो जायगा कि शुद्ध मध्यम की जगह उनमें तीव्र मध्यम लग जायगा। इस प्रकार ७२ थाट हो जाते हैं। अर्थात् दोनों मध्यमों से ३६ × २ = ७२ थाट उत्पन्न हो गये। उपर्युक्त ७२ प्रकारों के अलावा अन्य कोई नवीन प्रकार इन स्वरों से नहीं बन सकता।

एक शंका

यहाँ पर यह शङ्का होना स्वाभाविक है कि जब थाट सदैव सम्पूर्ण होता है अर्थात् उसमें सातों स्वरों का होना जरूरी है तो क्या कारण है कि थाट नम्बर १ में ग नि वर्जित होगए हैं, तथा थाट नम्बर ३१ में रे नि वर्जित होगए हैं, एवं अन्य कुछ थाटों में भी रे तथा कुछ थाटों में ग वर्जित होगया है ?

इसका उत्तर यह है कि पं० व्यंकटमखी के बारहों स्वर हमारे प्रचलित १२ स्वरों के समान नहीं थे। उनमें प्रति सैकिण्ड में होने वाले आंदोलन आधुनिक १२ स्वरों के आंदोलनों से भिन्न थे। व्यंकटमखी ने थाट को सम्पूर्ण बनाने के लिये अपने स्वरों के कुछ और ही नाम रख लिये थे। जैसे—पूर्वार्ध सप्तक में हमारे यहाँ सा रे̱ रे म रखा गया है उन्होंने वहाँ इसे सा रा गा मा इस प्रकार नाम दिया है, देखियेः—

व्यंकटमखी पंडित के कल्पित स्वरों के पूर्वार्ध—

हमारा पूर्वार्ध सप्तक				व्यंकटमखी के कल्पित नाम			
१—सा	रे̱	रे	म	१—सा	रा	गा	मा
२—सा	रे̱	ग̱	म	२—सा	रा	गी	मा
३—सा	रे̱	ग	म	३—सा	रा	गू	मा
४—सा	रे	ग̱	म	४—सा	री	गी	मा
५—सा	रे	ग	म	५—सा	रू	गी	मा
६—सा	ग̱	ग	म	६—सा	रू	गू	मा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हमारा उत्तरार्ध सप्तक				व्यंकटमखी के कल्पित नाम			
१—प	धु	ध	सां	१—प	धा	ना	सां
२—प	धु	नि	सां	२—प	धा	नि	सां
३—प	धु	नि	सां	३—प	धा	नू	सां
४—प	ध	नि	सां	४—प	धी	नी	सां
५—प	ध	नि	सां	५—प	धू	नी	सां
६—प	नि	नि	सां	६—प	धू	नू	सां

इस प्रकार स्वरों को कल्पित संज्ञाएँ देकर उन्होंने थाट की सम्पूर्णता कायम रखी है। इस युक्ति से उनके ७२ थाटों में कोई भी स्वर वर्जित दिखाई नहीं देगा।

उपरोक्त ७२ थाटों में से हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में केवल १० थाट ही प्रचलित हैं क्योंकि इनसे ही हमारा काम भली-भाँति चल जाता है। इनके नाम और स्वर इस लेख के आरम्भ में बताये ही जा चुके हैं।

उत्तरी संगीत-पद्धति के १२ स्वरों से ३२ थाट

यह बताया जा चुका है कि व्यंकटमखी पंडित के स्वर हमारे स्वरों के समान नहीं थे, इसलिये उन्होंने अपने स्वरों के हिसाब से ७२ थाट बनाये। किंतु यदि हम व्यंकटमखी के स्वरों पर ध्यान न देकर अपनी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के १२ स्वरों के अनुसार थाट-रचना करें तो उनके अनुसार केवल ३२ थाट ही बनने सम्भव हैं। वह किस प्रकार बनेंगे, यह बताया जाता है।

सप्तक के पूर्वाङ्ग और उत्तरांग दो भाग पहिले की तरह कर लीजिये:—

(१) सा रे रे ग ग म और (२) प धु ध नि नि सां।

सप्तक के प्रथम भाग से				सप्तक के दूसरे भाग से			
१—सा	रे	ग	म	१—प	धु	नि	सां
२—सा	रे	ग	म	२—प	धु	नि	सां
३—सा	रे	ग	म	३—प	ध	नि	सां
४—सा	रे	ग	म	४—प	ध	नि	सां

इस प्रकार चार स्वर वाले ८ मेल बनाने के बाद अब इनको मिलाकर ७ स्वर वाले मेल बनाये जाएँ तो ४×४=१६ मेल इस प्रकार बनेंगे:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शुद्ध मध्यम वाले १६ मेल

* १—सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	५—सा रे॒ ग म प ध॒ नि॒ सां
२—सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि सां	* ६—सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां
३—सा रे॒ ग॒ म प ध नि॒ सां	७—सा रे॒ ग म प ध नि॒ सां
४—सा रे॒ ग॒ म प ध नि सां	८—सा रे॒ ग म प ध नि सां
* ९—सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	१३-सा रे ग म प ध॒ नि॒ सां
१०-सा रे ग॒ म प ध॒ नि सां	१४-सा रे ग म प ध॒ नि सां
* ११-सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां	* १५-सा रे ग म प ध नि॒ सां
१२-सा रे ग॒ म प ध नि सां	* १६-सा रे ग म प ध निं सां

उपरोक्त १६ थाटों में शुद्ध मध्यम लगाया गया है, अब यदि हम शुद्ध की बजाय तीव्र मध्यम लगाकर बिल्कुल इसी प्रकार से स्वर लिखें तो १६ मेल और बन जायेंगे।

तीव्र मध्यम वाले १६ थाट (मेल)

१—सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां	५—सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि॒ सां
* २—सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	* ६—सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां
३—सा रे॒ ग॒ म॑ प ध नि॒ सां	७—सा रे॒ ग म॑ प ध नि॒ सां
४—सा रे॒ ग॒ म॑ प ध नि सां	* ८—सा रे॒ ग म॑ प ध नि सां
९—सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां	१३-सा रे ग म॑ प ध॒ नि सां
१०-सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	१४-सा रे ग म॑ प ध॒ नि सां
११-सा रे ग॒ म॑ प ध नि॒ सां	१५-सा रे ग म॑ प ध नि॒ सां
१२-सा रे ग॒ म॑ प ध नि सां	* १६-सा रे ग म॑ प ध नि सां

इस प्रकार १६ मेल शुद्ध मध्यम वाले और १६ मेल तीव्र मध्यम वाले मिलकर १६+१६=३२ मेल हमारी पद्धति से बन सकते हैं और इनमें सिलसिलेवार स्वरों में से कोई स्वर भी नहीं छूटा तथा एक स्वर के दो रूप पास-पास भी नहीं आये।

* उपरोक्त ३२ मेलों में फूल के निशान वाले हमारे प्रचलित १० थाट भी मौजूद हैं। देखियेः—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शुद्ध मध्यम वाले १६ मेलों में:—

नं० १ पर भैरवी थाट

नं० ६ पर भैरव थाट

नं० ६ पर आसावरी थाट

नं० ११ पर काफी थाट

नं० १५ पर खमाज थाट

नं० १६ पर बिलावल थाट

तीव्र मध्यम वाले १६ मेलों में:—

नं० २ पर थोड़ी थाट

नं० ६ पर पूर्वी थाट

नं० ८ पर मारवा थाट

नं० १६ पर कल्याण थाट

यद्यपि हमारी पद्धति से उपर्युक्त ३२ थाट ही सम्भव हैं, फिर भी व्यंकटमखी के ७२ थाट का सिद्धान्त इसलिये मानना पड़ता है कि इसके आविष्कारक व्यंकटमखी पंडित ही थे और उन्होंने अपने देश की अर्थात् कर्नाटकी पद्धति के स्वरों से ७२ थाट बनाने का जो सिद्धान्त सबसे पहले ईजाद किया, गणित के अनुसार वह बिलकुल ठीक था। किन्तु उन्होंने ७२ थाटों में से १९ थाट अपना काम चलाने को ऐसे चुन लिये जिनसे दक्षिणी रागों का वर्गीकरण किया जा सकता था। इसी प्रकार उत्तरीय विद्वानों ने उपर्युक्त ७२ थाटों में से ३२ थाट ऐसे चुने जिनके अन्तर्गत उत्तरीय हिन्दुस्थानी सङ्गीत-पद्धति के रागों का वर्गीकरण सम्भव हो सकता था। फिर अपना काम चलाने के लिये ३२ में से केवल १० थाट उत्तरीय सङ्गीत में चालू रक्खे गये, जो आजकल प्रचलित हैं।

इन १० थाटों को भी ३ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

प्रथम वर्ग

कल्याण, बिलावल, खमाज } — रे, ध, ग, शुद्ध वाले रागों के लिये

दूसरा वर्ग

भैरव, पूर्वी, मारवा } — रे॒, कोमल तथा ग, नि शुद्ध वाले रागों के लिये

तीसरा वर्ग

काफी, भैरवी, आसावरी, तोड़ी } — ग॒, नि॒ कोमल वाले रागों के लिये

इस प्रकार इन १० थाटों के अन्तर्गत हमारे प्रत्येक समय के राग आ सकते हैं इसीलिये भातखण्डे जी ने १० थाट लेकर शेष सब थाट विदेशी समझकर छोड़ दिये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के १० थाट

और

उनसे उत्पन्न कुछ राग

(१) कल्याण थाट के राग

१-यमन २-भूपाली ३-शुद्ध कल्याण ४-चन्द्रकान्त ५-जयतकल्याण ६-मालश्री ७-हिन्दोल ८-हमीर ९-केदार १०-कामोद ११-श्याम १२-छायानट १३-गौडसारङ्ग ।

(२) बिलावल थाट के राग

१-बिलावल शुद्ध २-अल्हैयाबिलावल ३-शुक्लबिलावल ४-देवगिरी ५-यमनी ६-ककुभ ७-नटबिलावल ८-लच्छासाख ९-सरपर्दा १०-बिहाग ११-देशकार १२-हेम-कल्याण १३-नटराग १४-पहाड़ी १५-मांड १६-दुर्गा १७-मलुहा १८-शंकरा, इत्यादि ।

(३) खमाज थाट के राग

१-झिंझोटी २-खमाज ३-द्वितीय दुर्गा ४-तिलंग ५-रागेश्वरी ६-खम्बावती ७-गारा ८ सोरठ ९-देस १०-जैजैवन्ती ११-तिलककामोद, इत्यादि ।

(४) भैरव थाट के राग

१-भैरव २-रामकली ३-बंगालभैरव ४-सौराष्ट्रटंक ५-प्रभात ६-शिवभैरव ७-आनन्दभैरव ८-अहीरभैरव ९-गुणकली १०-कालिङ्गड़ा ११-जोगिया १२-विभास १३-मेघरंजनी इत्यादि ।

(५) पूर्वी थाट के राग

१-पूर्वी २-पूर्याधनाश्री ३-जेताश्री ४-परज ५-श्री राग ६-गौरी ७-मालवी ८-त्रिवेणी ९-टंकी १०-बसन्त इत्यादि ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

[६] मारवा थाट के राग

१-मारवा २-पूरिया ३-जेत ४-मालीगौरा ५-साजगिरी ६-वराटी ७-ललित ८-सोहनी ९-पंचम १०-भटियार ११-बिभास १२-भंखार इत्यादि ।

[७] काफी थाट के राग

१-काफी २-सैंधवी ३-सिंदूरा ४-धनाश्री ५-भीमपलासी ६-धानी ७-पटमंजरी ८-पटदीपकी ९-हंसकंकणी १०-पीलू ११-बागेश्वरी १२-सहाना १३-सूहा १४-सुघराई १५-नायकीकान्हरा १६-देवसाख १७-बहार १८-वृन्दावनी सारङ्ग १९-मध्यमादिसारङ्ग २०-सामन्तसारङ्ग २१-शुद्धसारङ्ग २२-मियांसारङ्ग २३-बड़हंससारङ्ग २४-शुद्धमल्लार २५-मेघ २६-मियांमल्हार २७-सूरमल्लार २८-गौड़मल्लार इत्यादि ।

[८] आसावरी थाट के राग

१-आसावरी २-जौनपुरी ३-देवगांधार ४-सिंधुभैरवी ५-देसी ६-षटराग ७-कौशिककानड़ा ८-दरबारीकान्हड़ा ९-अडाणा १०-द्वितीयनायकी इत्यादि ।

[९] भैरवी थाट के राग

१-भैरवी २-मालकोंस ३-धनाश्री ४-बिलासखानीतोड़ी इत्यादि ।

[१०] तोड़ी थाट के राग

१-तोड़ी (१४ प्रकार की) २-मुलतानी इत्यादि ।

यद्यपि उपर्युक्त १० थाटों द्वारा और भी बहुत से राग उत्पन्न होते हैं, किन्तु यहाँ खास-खास प्रचलित रागों का ही उल्लेख किया गया है ।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

व्यंकटमखी पंडित के ७२ मेल (थाट)

१—कनकाम्बरी	२५-शरावती	४९-धवलाङ्ग
२—फेनद्युति	२६-तरङ्गिणी	५०-नामदेशी
३—सामवराली	२७-सौरसेना	५१-रामक्रिया
४—भानुमती	२८-केदारगौल	५२-रमामनोहरी
५—मनोरंजनी	२९-शंकराभरण	५३-गमकक्रिया
६—तनुकीर्ति	३०-नागाभरण	५४-वन्शावती
७—सेनाग्रणी	३१-कलावती	५५-शामला
८—तोड़ी	३२-चूड़ामणि	५६-चामरा
९—भिन्नषड्ज	३३-गंगातरंगिण	५७-समद्युति
१०-नटाभरण	३४-छायानट	५८-सिंहरव
११-कोकिलरव	३५-देशाक्षी	५९-धामवती
१२-रूपवती	३६ चलनाट	६०-नैषध
१३-हेजुज्जी	३७-सौगंधिनी	६१-कुन्तल
१४-बसन्त भैरवी	३८-जगमोहिनी	६२-रतिप्रिया
१५-मायामालवगौल	३९-वरालिका	६३-गीतप्रिया
१६-वेगवाहिनी	४०-नभोमणि	६४-भूषावती
१७-छायावती	४१-कुम्भिनी	६५-शान्तकल्याण
१८-शुद्ध मालवी	४२-रविक्रिया	६६-चतुरङ्गिणी
१९-झंकार भ्रमरी	४३-गीर्वाणी	६७-सन्तान मंजरी
२०-रीतिगौल	४४-भवानी	६८-ज्योति
२१-किरणावली	४५-शैवपन्तुवराली	६९-धौतपंचम
२२-श्रीराग	४६-स्तवराज	७०-नासामणि
२३-गौरीवेलावली	४७-सौवीरा	७१-कुसुमाकर
२४-बीर बसन्त	४८-जीवन्तिका	७२-रसमंजरी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

व्यंकटमखी पंडित के १६ थाट (मेल) और उनके स्वर

थाट नाम	सा	रि	ग	म	प	ध	नि
१—मुखारी	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध
२—सामवराली	"	"	साधारण	"	"	"	काकली
३—भूपाल	"	"	"	"	"	"	कैशिक
४—हेजुज्जी	"	"	अन्तर	"	"	"	शुद्ध
५—वसन्तभैरवी	"	"	"	"	"	"	कैशिक
६—गौल	"	"	"	"	"	"	काकली
७—भैरवी	"	पंचश्रुति	साधारण	"	"	"	कैशिक
८—आहीरी	"	"	"	"	"	"	"
९—श्री	"	"	"	"	"	पंचश्रुति	"
१०-कांभोजी	"	"	अन्तर	"	"	"	"
११-शंकराभरण	"	"	"	"	"	"	काकली
१२-सामंत	"	"	"	"	"	षटमुख	"
१३-देशाची	"	षट्श्रुति	"	"	"	पंचश्रुति	"
१४-नाट	"	"	"	"	"	षट्श्रुति	"
१५-शुद्धवराली	"	शुद्ध	शुद्ध	वराली	"	शुद्ध	"
१६-पंतुवराली	"	"	साधारण	"	"	"	"
१७-शुद्धरामक्रिया	"	"	अन्तर	"	"	"	"
१८-सिंहरव	"	पंचश्रुति	साधारण	"	"	पंचश्रुति	कैशिक
१९-कल्याणी	"	"	अन्तर	"	"	"	काकली

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पंडित व्यंकटमखी के जनकमेल तथा जन्यराग

"चतुर्दण्डिप्रकाशिका" में पं० व्यंकटमखी के १९ थाटों से उत्पन्न हुए रागों की नामावली इस प्रकार दी गई है :—

जनक मेल	जन्य राग
१ मुखारी	१ मुखारी
२ सामवराली	१ सामवराली
३ भूपाल	१ भूपाल २ भिन्नषड्ज
४ वसन्तभैरवी	१ वसंतभैरवी
५ गौल	१ गौल २ गुण्डक्रिया ३ सालंगनाट ४ नादरामक्रिया ५ ललिता ६ पाडी ७ गुर्जरी ८ बहुली ९ मल्लहरी १० सावेरी ११ छायागौल १२ पूर्वगौल १३ कर्णाटक १४ बंगाल १५ सौराष्ट्र
६ अहीरी	१ आभेरी २ हिन्दोलवसंत
७ भैरवी	१ भैरवी २ हिन्डोल ३ अहीरी ४ घंटारव ५ रीतिगौल
८ श्रीराग	१ श्री २ सालगभैरवी ३ धन्यासी ४ मालवश्री ५ देवगांधार ६ आंधाली ७ बेलावली ८ कन्नडगौल
९ हेजुज्जी	१ हेजुज्जी २ रेवगुप्ति
१० कांभोजी	१ कांभोजी २ केदारगौल ३ नारायण गौल
११ शंकराभरण	१ शंकराभरण २ आरभी ३ नागध्वनि ४ साम ५ शुद्धवसंत ६ नारायणदेशाक्षी ७ नारायणी
१२ सामन्त	१ सामन्त
१३ देशाक्षी	१ देशाक्षी
१४ नाट	१ नाट
१५ शुद्धवराली	१ वराली
१६ पंतुवराली	१ पन्तुवराली
१७ शुद्धरामक्रिया	१ शुद्धरामक्रिया
१८ सिंहरव	१ सिंहरव
१९ कल्याणी	१ कल्याणी

इस प्रकार १९ मेलों से ५५ जन्य राग बताये हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रागलक्षणम् के ७२ कर्नाटकी मेल

पण्डित व्यंकटमखी के बाद कर्नाटकी सङ्गीत की एक पुस्तक "रागलक्षणम्" और लिखी गई, उसके लेखक ने भी ७२ थाट मानकर उनसे लगभग ५०० जन्य रागों की उत्पत्ति बताई है। इस ग्रन्थ के अनुसार ७२ थाट आजकल कर्नाटकी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं। इसे वे अपना आधार-ग्रन्थ मानते हैं।

रागलक्षणम् के लेखक के स्वरों में और व्यंकटमखी के स्वर-नामों में कहीं-कहीं अन्तर पाया जाता है। नीचे की तालिका में हम अपने प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति के १२ स्वरों के साथ-साथ व्यंकटमखी और रागलक्षणम् के स्वर दिखाते हैं:—

हिन्दुस्तानी स्वर	व्यंकटमखी के स्वर	रागलक्षणम् के स्वर
१—सा	सा	सा
२—रे॒ (कोमल)	शुद्ध रि	शुद्ध रि
३—रे (शुद्ध)	पंचश्रुति रि या शुद्ध ग	चतुःश्रुति रि या शुद्ध ग
४—ग॒ (कोमल)	षट्श्रुति रि या साधारण ग	षट्श्रुति रि या साधारण ग
५—ग (शुद्ध)	अन्तर ग	अन्तर ग
६—म (शुद्ध)	शुद्ध म	शुद्ध म
७—मं (तीव्र)	प्रति म या वराली म	प्रति म
८—प	प	प
९—ध॒ (कोमल)	शुद्ध ध	शुद्ध ध
१०-ध (शुद्ध)	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि	चतुःश्रुति ध या शुद्ध नि
११-नि॒ (कोमल)	षट्श्रुति ध या कैशिक नि	षट्श्रुति ध या कैशिक नि
१२-नि (शुद्ध)	काकली नि	काकली नि

अब आगे की तालिका में "रागलक्षणम्' ग्रंथ के अनुसार ७२ मेल नाम और स्वरों सहित दिये जाते हैं। इसमें आरम्भ के ३६ मेल शुद्ध मध्यम वाले हैं और उसके बाद के ३६ मेल प्रति मध्यम वाले हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रागलक्षणम्—(कर्नाटकी पद्धति) के ७२ थाट (मेल) और उनके स्वर

(शुद्ध मध्यम वाले ३६ मेल)

थाट (मेल) नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
१—कनकांगी	सा	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	प	शुद्ध	शु.
२—रत्नांगी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
३—गानमूर्ति	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
४—वनस्पति	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
५—मानवती	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
६—तानरूपी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
७—सेनावती	,,	,,	साधारण	,,	,,	शु.	शु.
८—हनुमत्तोड़ी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
९—धेनुका	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१०-नाटकप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
११-कोकिलप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१२-रूपवती	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
१३-गायकप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	शु.	शु.
१४-बकुलाभरण	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
१५-मायामालवगौल	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१६-चक्रवाल	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
१७-सूर्यकांत	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१८-हाटकांवरी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
१९-झंकारध्वनि	,,	च.	साधारण	,,	,,	शु.	शु.
२०-नटभैरवी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२१-कीरवीणा	सा	शुद्ध	साधारण	शुद्ध	प	शु.	का.
२२-खरहरप्रिय	"	"	"	"	"	च.	कै.
२३-गौरीमनोहरी	"	"	"	"	"	"	का.
२४-वरुणप्रिय	"	"	"	"	"	ष.	"
२५-मानरंजनी	"	"	अन्तर	"	"	शु.	शु.
२६-चारुकेशी	"	"	"	"	"	"	कै.
२७-सांगी	"	"	"	"	"	"	का.
२८-हरिकांभोजी	"	"	"	"	"	च.	कै.
२९-धीरशंकराभरण	"	"	"	"	"	"	का.
३०-नागानन्दिनी	"	"	"	"	"	ष.	"
३१-यागप्रिया	"	ष. श्रु.	"	"	"	शु.	शु.
३२-रागवर्धिनी	"	"	"	"	"	"	कै.
३३-गांगेयभूषणा	"	"	"	"	"	"	का.
३४-वागधीश्वरी	"	"	"	"	"	च.	कै.
३५-शूलिनी	"	"	"	"	"	"	का.
३६-बलनाट	"	"	"	"	"	ष.	"

(प्रति मध्यम वाले ३६ मेल)

३७-सालग	सा	शु.	शुद्ध	प्रति	प	शु.	शु.
३८-जलार्णव	"	"	"	"	"	"	कै.
३९-झालवराली	"	"	"	"	"	"	का.
४०-नवनीत	"	"	"	"	"	च.	कै.
४१-पावनी	"	"	"	"	"	"	का.
४२-रघुप्रिय	"	"	"	"	"	ष.	"
४३-गवांबोधी	"	"	साधारण	"	"	शु.	शु.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४४-भवप्रिय	सा	शुद्ध	साधारण	प्रति	प	शु.	कै.
४५-शुभपन्तुवराली	"	"	"	"	"	शु.	का.
४६-षड्विधमार्गिणी	"	"	"	"	"	च.	कै.
४७-सुवर्णांगी	"	"	"	"	"	"	का.
४८-दिव्यमणि	"	"	"	"	"	ष.	"
४६-धवलाम्बरी	"	"	अन्तर	"	"	शु.	शु.
५०-नामनारायणी	"	"	"	"	"	"	कै.
५१-कामवर्धनी	"	"	"	"	"	"	का.
५२-रामप्रिय	"	"	"	"	"	च.	कै.
५३-गमनश्रिय	"	"	"	"	"	"	का.
५४-विश्वम्भरी	"	"	"	"	"	ष.	"
५५-श्यामलांगी	च.	"	साधारण	"	"	शु.	शु.
५६-षण्मुखप्रिय	"	"	"	"	"	"	कै.
५७-सिहेंद्रमध्यम	"	"	"	"	"	"	का.
५८-हेमवती	"	"	"	"	"	च.	कै.
५६-धर्मवती	"	"	"	"	"	"	का.
६०-नीतिमणी	"	"	"	"	"	ष.	"
६१-कांतामणी	"	"	अन्तर	"	"	शु.	शु.
६२-ऋषभप्रिय	"	"	"	"	"	"	कै.
६३-लतांगी	"	"	"	"	"	"	का.
६४-वाचस्पति	"	"	"	"	"	च.	कै.
६५-मेचकल्याणी	"	"	"	"	"	"	का.
६६-चित्राम्बरी	"	"	"	"	"	ष.	"
६७-सुचरित्र	"	"	"	"	"	शु.	शु.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

६८-ज्योतिः स्वरूपिणी	सा	शुद्ध	अन्तर	प्रति	प	शु.	कै.
६९-धातुवर्धिनी	"	"	"	"	"	"	का.
७०-नासिका	"	"	"	"	"	च.	कै.
७१-कोसल	"	"	"	"	"	"	का.
७२-रसिकप्रिया	"	"	"	"	"	ष.	"

इन ७२ थाटों से लगभग ५०० रागों की उत्पत्ति भी बताई गई है। उपरोक्त तालिका में स्वरों के संक्षिप्त इशारे इस प्रकार समझिये:—

शु—शुद्ध
ष—षटश्रुतिक
च—चतुःश्रुतिक
कै—कैशिक निषाद
का—काकली निषाद
साधारण—साधारण गांधार
अन्तर—अन्तरगांधार
प्रति—प्रतिमध्यम

राग लक्षणम् के ७२ थाटों की जो तालिका ऊपर दी गई है उसमें अपने हिन्दुस्थानी पद्धति के १० थाट भी मिलते हैं, उनके नाम और नम्बर इस प्रकार हैं:—

हिन्दुस्थानी १० थाट				दक्षिणी पद्धति के मेल व नम्बर			
१	कल्याण	...	...	मेच कल्याणी	...	...	६५
२	बिलावल	...	...	धीर शंकराभरण	...	...	२९
३	खमाज	...	...	हरिकाम्भोजी	...	...	२८
४	भैरव	...	...	मायामालवगौल	...	...	१५
५	पूर्वी	...	...	कामवर्धिनी	...	...	५१
६	मारवा	...	...	गमनश्रिय	...	...	५३
७	काफी	...	...	खरहरप्रिय	...	...	२२
८	आसावरी	...	...	नट भैरवी	...	...	२०
९	भैरवी	...	...	हनुमत्तोड़ी	...	...	८
१०	तोड़ी	...	...	शुभपन्तुवराली	....	...	४५

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

स्थान

नाद अर्थात् आवाज़ की ऊँचाई और नीचाई के आधार पर उसके मन्द्र, मध्य और तार ऐसे तीन भेद माने जाते हैं। इनको 'नाद-स्थान' (Voice Register) कहते हैं। इन तीन नाद-स्थानों में एक-एक सप्तक मानकर क्रमशः मन्द्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक कहलाते हैं। इस प्रकार ३ सप्तक होती हैं। यथा:—

प्रथमं सप्तकं मन्द्रं द्वितीयं मध्यमं स्मृतम्।
तृतीयं तारसंज्ञं स्यादेवं स्थानत्रयं मतम्॥

—अभिनवरागमंजरी

अर्थात्—पहली सप्तक को मन्द्र, दूसरी को मध्य और तीसरी सप्तक को तार सप्तक कहते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक मानी गई हैं।

सप्तक

सप्तक—का अर्थ है सात। क्योंकि एक स्थान पर ७ शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अतः इसका नाम 'सप्तक' हुआ।

ध्वनि की साधारण ऊँचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा आ ऽ ऽ ऽ इस प्रकार आलाप लेता है, उसे 'मध्य सप्तक' कहते हैं, किन्तु जब कभी गाने-बजाने में नीचे को आवाज़ ले जाने की आवश्यकता होती है, वहाँ पर 'मन्द्र सप्तक' के स्वर काम देते हैं और जब मध्य सप्तक से भी ऊँचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब 'तार सप्तक' के स्वर स्तैमाल किये जाते हैं।

मन्द्र सप्तक के स्वरों को बोलने या गाने में हृदय पर, मध्य सप्तक के स्वरों को बोलने में कण्ठ पर और तार सप्तक के स्वरों का व्यवहार करने में तालू पर जोर लगाना पड़ता है।

मन्द्र सप्तक—जिस सप्तक के स्वरों की आवाज़ सबसे नीची हो, अथवा मध्य सप्तक से आधी हो, उसे मन्द्र सप्तक कहते हैं, भातखण्डे पद्धति में इसके स्वरों की पहिचान यह है:—

सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ (मन्द्र सप्तक)

मध्य सप्तक—मन्द्र सप्तक से दुगुनी आवाज़ होने पर मध्य सप्तक कहलाता है। मध्य का अर्थ है बीच, यानी न अधिक नीचा न अधिक ऊँचा। इसके स्वरों पर कोई चिन्ह नहीं होता।

सा रे ग म प ध नि (मध्य सप्तक)

तार सप्तक—मध्य सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज़ होने पर तार सप्तक कहलाता है। इसे उच्च सप्तक भी कहते हैं। इसकी पहिचान के लिये स्वरों के ऊपर एक बिन्दु लगा दिया जाता है, जैसे:—

सां रें गं मं पं धं निं (तार सप्तक)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नोटः—यद्यपि एक सप्तक में ७ स्वर कहे गये हैं, किन्तु पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि कोमल-तीव्र रूप करके स्वरों की संख्या एक सप्तक में १२ हो जाती है, देखिये बारह-बारह स्वरों की इस प्रकार तीन सप्तक होती हैं :—

सा̣	रे̣॒	रे̣	ग̣॒	ग̣	म̣	म̣॑	प̣	ध̣॒	ध̣	नि̣॒	नि̣	मन्द्र सप्तक
सा	रे॒	रे	ग॒	ग	म	म॑	प	ध॒	ध	नि॒	नि	मध्य सप्तक
सां	रें॒	रें	गं॒	गं	मं	मं॑	पं	धं॒	धं	निं॒	निं	तार सप्तक

वर्ण

गान क्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम् ॥

—अभिनवरागमंजरी

अर्थात्—गाने की जो क्रिया है उसे वर्ण कहते हैं। वर्ण ४ प्रकार के होते हैं जिन्हें (१) स्थायी, (२) आरोही, (३) अवरोही, (४) संचारी वर्ण कहते हैं।

(१) स्थायी वर्ण—एक ही स्वर बारम्बार ठहर-ठहरकर बोलने या गाने की क्रिया को स्थायी वर्ण कहते हैं, जैसे—सा सा सा सा रे रे रे रे अथवा ग ग ग ग। स्थायी का अर्थ है ठहरा हुआ।

(२) आरोही वर्ण—नीचे स्वर से ऊँचे स्वरों तक चढ़ने या गाने की क्रिया को आरोही वर्ण कहते हैं। जैसे हमें षड्ज से आगे स्वर बोलने हैं—सा रे ग म प ध नि यह आरोही वर्ण हुआ।

(३) अवरोही वर्ण—ऊँचे स्वर से नीचे स्वरों पर आने या गाने की क्रिया को अवरोही वर्ण कहते हैं। जैसे षड्ज स्वर से नीचे के स्वर बोलने हैं तो सां नि ध प म ग रे सा यह अवरोही वर्ण हुआ।

(४) संचारी वर्ण—स्थायी, आरोही और अवरोही उपरोक्त तीनों वर्णों के संयोग यानी मिलावट से जब स्वरों की उलट-पलट की जाती है, अर्थात् जब तीनों वर्ण मिलकर अपना रूप दिखाते हैं, तब इस क्रिया को संचारी वर्ण कहते हैं।

नोट—गाते-बजाते समय उपरोक्त चारों वर्ण काम में लाये जाते हैं। कोई गायक जब गाना गा रहा हो तो उसके गाने में उपरोक्त चारों वर्ण अवश्य ही मिलेंगे, क्योंकि इनके बिना गायन-क्रिया चल नहीं सकती।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अलंकार

प्राचीन ग्रन्थकार 'अलंकार' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं :—

विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकारं प्रचक्षते ।

अर्थात् कुछ नियमित वर्ण-समुदायों को अलंकार कहते हैं।

अलंकार का अर्थ है आभूषण या गहना। जिस प्रकार आभूषण शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन की शोभा बढ़ जाती है। 'अभिनवरागमंजरी' में लिखा है:—

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव ।
अविभूषिते कांता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥

अर्थात्—जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, बिना फूलों के लता एवं बिना आभूषणों के स्त्री शोभा नहीं देती, उसी प्रकार अलंकार बिना गीत भी शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकारों को पल्टे भी कहते हैं। गायन सीखने से पहिले विद्यार्थियों को अलंकार सिखाये जाते हैं, क्योंकि इनके बिना न तो अच्छा स्वर-ज्ञान ही होता है और न उन्हें आगे सङ्गीतकला में सफलता ही मिलती है। अलंकारों से राग-विस्तार में भी काफी सहायता मिलती है। अलंकारों के द्वारा राग की सजावट करके उसमें चार चाँद लगाये जा सकते हैं। तान इत्यादि भी अलंकारों के आधार पर ही बनती हैं, जैसे सारे गरे गम गम पऽ। रेग रेग मप मप धऽ। इत्यादि।

अलंकार वर्ण-समुदायों में ही होते हैं। उदाहरण के लिये एक वर्ण-समुदाय को लीजिये, सा रे ग सा इसमें आरोही और अवरोही दोनों वर्ण आगये हैं। यह एक सीढ़ी मान लीजिये, अब इसी आधार पर आगे बढ़िये और पिछला स्वर छोड़कर आगे का स्वर बढ़ाते जाइये, रे ग म रे यह दूसरी सीढ़ी हुई, ग म प ग यह तीसरी सीढ़ी हुई, इसी प्रकार बहुत से अलंकार तैयार किये जा सकते हैं, शुद्ध स्वरों के अलावा कोमल, तीव्र स्वरों के अलंकार भी तैयार किये जा सकते हैं, किन्तु उनमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं, वे ही स्वर उस राग के अलंकारों में लिये जावें।

राग

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधै ॥

—अभिनवरागमंजरी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अर्थात्—ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसमें स्वर तथा वर्णों के कारण सौन्दर्य होता है, जो मनुष्य के चित्त का रंजन करे यानी जो श्रोताओं के मन को प्रसन्न करे बुद्धिमान लोग उसे "राग" कहते हैं।

राग में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है :—

(१) राग किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए।

(२) ध्वनि (आवाज) की एक विशेष रचना हो।

(३) उसमें स्वर तथा वर्ण हों।

(४) रंजकता यानी सुन्दरता हो।

(५) राग में कम से कम ५ स्वर अवश्य होने चाहिये।

(६) *राग में एक ही स्वर के दो रूप पास-पास लेने को शास्त्रकारों ने निषेध किया है। जैसे—ग॒ ग या म मं इत्यादि।

(७) राग में आरोह तथा अवरोह का होना आवश्यक है। क्योंकि इनके बिना राग का रूप पहिचाना नहीं जा सकता।

(८) किसी भी राग में षड्ज (सा) स्वर वर्जित नहीं होता।

(९) मध्यम और पञ्चम यह दो स्वर एक साथ तथा एक ही समय कभी भी वर्जित नहीं होते।

(१०) राग में वादी-सम्वादी स्वर अवश्य रहते हैं, इन स्वरों पर ही विशेष जोर रहता है।

रागों की जाति

पहिले यह बताया जा चुका है कि थाट के ७ स्वरों में से ही राग तैयार होते हैं, और यह भी बताया गया था कि थाट में ७ स्वर होने जरूरी हैं, किन्तु राग में यह जरूरी नहीं कि ७ ही स्वर हों, अतः किसी थाट के ७ स्वरों में से ५-६ या ७ स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है, तो जितने स्वर उस थाट में से लिये गये हों, उसी आधार पर उनकी जाति निश्चित की जाती है।

इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों के ३ भेद माने गये हैं जिन्हें औडुव-षाडव और सम्पूर्ण कहते हैं:—

(१) औडुव राग— जब किसी थाट में से कोई से दो स्वर घटाकर (वर्जित करके) कोई राग उत्पन्न होता है अर्थात् जिस राग में ५ स्वर लगते हैं उसे

---

* नोट :—नियम नं० ६ के विरुद्ध कुछ राग ऐसे भी हैं जिनमें एक ही स्वर के दो रूप पास-पास आजाते हैं, जैसे—ललित, बिहाग, केदार इत्यादि। किन्तु इन्हें इस नियम के अपवाद स्वरूप ही समझना चाहिये।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"औडुव राग" कहते हैं, जैसे—भूपाली, मालकोष इत्यादि। ध्यान रहे कि सा स्वर कभी भी वर्जित नहीं किया जाता।

(२) षाडव राग—किसी थाट में से केवल १ स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जिस राग में ६ स्वर स्तैमाल किये जाते हैं, उसे षाडव राग कहते हैं। जैसे—मारवा, पूरिया इत्यादि।

(३) सम्पूर्ण राग—थाट से कोई भी स्वर-रचना न घटाकर सातों स्वर जिस राग में लगते हैं, उसे संपूर्ण जाति का राग कहते हैं। जैसे यमन, बिलावल, भैरव और भैरवी इत्यादि। ऊपर बताई हुई तीन जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः ५-६ स्वर हैं, लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं जिनके आरोह में ६ तथा अवरोह में ६ स्वर लगते हैं अथवा आरोह में ७ और अवरोह में ५ स्वर लगते हैं,ऐसे रागों को पहिचानने के लिये ग्रंथकारों ने उपर्युक्त ३ जातियों में से हर एक जाति की तीन-तीन उप-जातियाँ और बनादी हैं, इस प्रकार ६ प्रकार की जातियाँ बनीं।

(१) सम्पूर्ण

१ सम्पूर्ण सम्पूर्ण | २ सम्पूर्ण षाडव | ३ सम्पूर्ण औडुव

(२) षाडव

१ षाडव सम्पूर्ण | २ षाडव षाडव | ३ षाडव औडुव

(३) औडुव

१ औडुव सम्पूर्ण | २ औडुव-षाडव | ३ औडुव औडुव

इस प्रकार ३ जातियों से ६ उपजातियों की उत्पत्ति हुई, अब इनका पूर्ण विवरण देखिये :—

१—सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—जिस राग के आरोह में ७ स्वर हों और अवरोह में भी ७ स्वर हों, उसे सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे।

२—सम्पूर्ण-षाडव—जिस राग के आरोह में ७ स्वर और अवरोह में ६ स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण-षाडव जाति का राग कहेंगे।

३—सम्पूर्ण-औडुव—जिस के आरोह में ७ स्वर और अवरोह में ५ स्वरों हों।

४—षाडव-सम्पूर्ण—आरोह में ६ स्वर और अवरोह में ७ स्वर हों।

५—षाडव-षाडव—आरोह में भी ६ स्वर हों तथा अवरोह में भी ६ स्वर हों।

६—षाडव-औडुव—आरोह में ६ स्वर और अवरोह में ५ स्वर हों।

७—औडुव-सम्पूर्ण—जिसके आरोह में ५ स्वर और अवरोह में ७ स्वर हों।

८—औडुव-षाडव—जिसके आरोह में ५ स्वर और अवरोह में ६ स्वर हों।

९—औडुव-औडुव—जिसके आरोह में भी ५ स्वर हों तथा अवरोह में भी ५ स्वर लगते हों।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रागों की इन जातियों से राग-संख्या मालुम हो जाती है। देखिये उपरोक्त ६ जातियों से किस प्रकार १० थाटों द्वारा ४८४ राग तैयार हुए।

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—इससे केवल १ राग ही बन सका, क्योंकि आरोह में भी ७ स्वर हैं और अवरोह में भी ७ स्वर हैं।

सम्पूर्ण-षाडव—इस जाति के ६ राग बन सकते हैं क्योंकि आरोह तो सम्पूर्ण रखते जाइये और अवरोह में प्रत्येक बार १ स्वर बदलकर छोड़ते जाइये।

सम्पूर्ण-औडुव—इसके आरोह में ७ स्वर रखते जाइये और अवरोह में २ स्वर (बदल-बदलकर) छोड़ते जाइये तो इससे १५ राग बने।

षाडव-सम्पूर्ण—आरोह में ६ स्वर होने के कारण, ६ बार एक-एक स्वर बदलकर छोड़ने से, इसके भी ६ राग बने।

षाडव-षाडव—इसके आरोह में ६ बार एक-एक स्वर बदलकर रखा तो ६ टुकड़े हुए; इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया तो ६×६=३६ राग इस जाति से बने।

षाडव-औडुव—इस जाति के ९० राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में १ स्वर छोड़ने से ६ और अवरोह में दो-दो स्वर छोड़ने से १५ अर्थात् १५×६=९० राग बने।

औडुव-सम्पूर्ण—आरोह में २ स्वर छोड़ने से १५ प्रकार बने और अवरोह तो इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से १५ राग पैदा हुए।

औडुव-षाडव—क्योंकि इसके आरोह में प्रतिबार कोई से २ स्वर छोड़ने पड़े तो १५ प्रकार बने और अवरोह में १ स्वर प्रतिबार छोड़ना पड़ा तो ६ प्रकार बने, इसलिये १५×६=९० राग इस जाति से उत्पन्न हुए।

औडुव-औडुव—इस जाति के सबसे अधिक अर्थात् २२५ राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रतिबार २ स्वर छोड़ने से १५ प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही २ स्वर छोड़ने से १५ प्रकार बने तो १५×१५=२२५ राग तैयार हुए।

इस प्रकार एक थाट की ९ जातियों से ४८४ राग बने, जो निम्नलिखित नक्शे द्वारा स्पष्ट किये जाते हैं :—

नं०	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयार हो सकते हैं
१	सम्पूर्ण-सम्पूर्ण	७	७	१
२	सम्पूर्ण-षाडव	७	६	६
३	सम्पूर्ण-औडुव	७	५	१५
४	षाडव-सम्पूर्ण	६	७	६

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

५	षाडव-षाडव	६	६	६३
६	षाडव-औडुव	६	५	६०
७	औडुव-सम्पूर्ण	५	७	१५
८	औडुव-षाडव	५	६	६०
९	औडुव-औडुव	५	५	२२५
	१ थाट की ९ जातियों से उत्पन्न रागों का कुल जोड़			४८४

जब १ थाट से ४८४ राग तैयार हो सकते हैं तो उत्तरी सङ्गीत-पद्धति के १० थाटों से ४८४×१०=४८४० राग बने और दक्षिणी सङ्गीत-पद्धति के ७२ थाटों से ४८४×७२=३४८४८ राग तैयार हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और भी राग केवल वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं, इस प्रकार यद्यपि रागों की संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है, किन्तु प्रचार में २०० रागों से अधिक दिखाई नहीं देते, क्योंकि राग में रंजकता होनी आवश्यक है, इस बन्धन के कारण राग-संख्या मर्यादित-सी हो जाती है।

ग्राम

अथ ग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वर सन्दोहरूपिणः।
षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥ ९७ ॥

—सङ्गीत पारिजात

ग्राम के सम्बन्ध में अहोबल पंडित उक्त श्लोक में बताते हैं कि स्वरों का एक समूह ही ग्राम कहलाता है। ग्राम ३ होते हैं, जिन्हें षड्ज, मध्यम तथा गांधार इन नामों से घोषित करते हैं।

दामोदर पंडित 'सङ्गीत दर्पण' में लिखते हैं:—

ग्रामः स्वरसमूहः स्यात्मूर्च्छनादेः समाश्रयः।
तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात् षड्जग्राम आदिमः ॥७५॥
द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते ॥ ७६ ॥

अर्थात्—ग्राम स्वरों का समुदाय है। ग्राम का आधार मूर्च्छना है, इस लोक में ग्राम दो हैं, उनमें से पहला षड्ज ग्राम और दूसरा मध्यम ग्राम है······॥

इस प्रकार संस्कृत-ग्रंथों में ग्रामों की परिभाषा देखने में आती है। श्री भातखंडेजी का कहना है कि प्राचीन ग्राम-रचना प्राचीन सङ्गीत में उत्तम रूप से प्रयुक्त थी; परन्तु इस समय हमारे सङ्गीत में वैसी नहीं है। फिर भी सङ्गीत के विद्यार्थियों को ग्राम के विषय में जानकारी तो रखनी ही चाहिये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ऊपर दिये पारिजात के श्लोक के अनुसार ग्राम तीन प्रकार के हुए:—

१—षड्जग्राम   २—मध्यम ग्राम   ३—गांधारग्राम

गांधार ग्राम के बारे में यह बताया जाता है कि यह किसी प्रकार धरातल से हटकर देवलोक पहुँच गया। यह वास्तव में निषादग्राम था क्योंकि इसका आरम्भ निषाद स्वर से होता था, किन्तु गन्धर्वों द्वारा उसका प्रयोग होने के कारण उसका नाम गन्धर्वग्राम हुआ, फिर आगे चलकर इसका अपभ्रंश रूप गांधारग्राम होगया।

७ स्वरों में जो श्रुतियाँ हैं उनके समूह को ग्राम कहते हैं। स्वरों पर श्रुतियों के बांटने के सिद्धान्तः—

चतुश्चतुश्चैव ......के अनुसार ४ – ७ – ९ – १३ – १७ – २० – २२

इन श्रुतियों पर क्रमशः— सा रे ग म प ध नि

इस प्रकार स्वरों को स्थापित करने पर जो ग्राम बनता है उसे षड्जग्राम कहेंगे। यदि इस श्रुत्यन्तर में तनिक भी फर्क पड़ेगा तो वह षड्जग्राम नहीं माना जायगा। अब मध्यमग्राम इस प्रकार होगा कि पंचम स्वर को जो १७ वीं श्रुति पर है, हटाकर १६ वीं पर ले आया जाय। जैसे:—

४ –	७ –	९ –	१३ –	१६ –	२० –	२२
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

यह हो गया मध्यमग्राम। अब गान्धारग्राम इस प्रकार होगा कि ऋषभ स्वर एक श्रुति नीचे उतरकर ६ वीं श्रुति पर, गांधार १ श्रुति ऊपर चढ़कर १० वीं पर, धैवत १ श्रुति नीचे उतरकर १९ वीं पर और निषाद १ श्रुति ऊपर चढ़कर पहली श्रुति पर स्थिर होगा। इस प्रकार:—

४ –	६ –	१० –	१३ –	१६ –	१९ –	१
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न गावों में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य रहते हैं, उसी प्रकार सङ्गीत के भिन्न-भिन्न 'ग्रामों' में भिन्न प्रकार के अन्तर (फासले) पर स्वर रहते हैं। अतः स्वरों को भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रुतियों पर स्थिर करने के लिये ही प्राचीनकाल में 'ग्राम" की उत्पत्ति हुई। अब आगे के एक नक्शे में प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर तीनों ग्रामों को २२ श्रुतियों पर एक साथ दिखाया जाता है:—

State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्राचीन ग्रन्थों में

२२ श्रुतियों पर तीन ग्राम

श्रुति नं०	श्रुति नाम	षड्जग्राम	मध्यमग्राम	गांधारग्राम
१	तीव्रा	...	...	...
२	कुमुद्वती	...	...	...
३	मंदा	...	...	...
४	छंदोवती	षड्ज	षड्ज	षड्ज
५	दयावती	...	...	...
६	रंजनी	...	...	ऋषभ
७	रक्तिका	ऋषभ	ऋषभ	...
८	रौद्री	...	...	...
९	क्रोधा	गांधार	गांधार	...
१०	वज्रिका	...	...	गांधार
११	प्रसारिणी	...	...	...
१२	प्रीति	...	...	...
१३	मार्जनी	मध्यम	मध्यम	मध्यम
१४	क्षिति	...	...	...
१५	रक्ता	...	...	...
१६	सदीपनी	...	पञ्चम	पञ्चम
१७	अलापिनी	पञ्चम	...	...
१८	मदंती	...	...	...
१९	रोहिणी	...	...	धैवत
२०	रम्या	धैवत	धैवत	...
२१	उग्रा	...	...	...
२२	क्षोभिणी	निषाद	निषाद	...
१	तीव्रा	...	...	निषाद

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रुतियों पर ग्राम दिखाये गये हैं, किन्तु बहुमत इसी पक्ष में है, जैसा कि उपरोक्त कोष्ठक (नक्शे) में दिखाया गया है। उपरोक्त कोष्ठक को देखने पर विदित होगा कि मध्यमग्राम के स्वरान्तर अधिकांश रूप में षड्जग्राम के ही अनुसार हैं, केवल पञ्चम को १ श्रुति नीचे माना गया है। गांधारग्राम में ऋषभ तथा धैवत स्वर उपरोक्त दोनों ग्रामों के ऋषभ, धैवत स्वरों से एक-एक श्रुति नीचे माने गये हैं और गांधार, निषाद स्वर एक-एक श्रुति ऊँचे माने गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे प्राचीन ग्रंथकार इस प्रकार ग्राम-योजना से अपने विकृत स्वर क़ायम करके भिन्न-भिन्न मेल बनाते होंगे, किन्तु ग्राम-रचना का यह ढङ्ग

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आज की १२ स्वरों की प्रणाली पर लागू नहीं होता, इसलिये वर्तमान सङ्गीतज्ञ उपर्युक्त प्राचीन ग्राम योजना को आधुनिक सङ्गीत के लिये निरर्थक ही समझते हैं।

सङ्गीत के कुछ आधुनिक ग्रन्थों में तीन ग्रामों का कोष्ठक वर्तमान १२ स्वरों के हिसाब से इस प्रकार दिया है:—

आधुनिक ग्राम चक्र—

१	३	५	६	८	१०	१२				
सा	रे	ग	म	प	ध	नि				षड्जग्राम
		सा	रे	ग	म	प	ध	नि		गांधार ग्राम
			सा	रे	ग	म	प	ध	नि	मध्यम ग्राम

स्वरों के ऊपर जो नम्बर दिये हैं, हारमोनियम के परदों के नम्बर मान लिये जायँ तो इस ग्राम चक्र से हमारे शुद्ध और विकृत १२ स्वर आसानी से निकल आते हैं। क्योंकि हारमोनियम बाजे की जिस चाभी या परदे पर षड्ज स्वर माना जाता है, उससे तीसरे पर शुद्ध रे, पाँचवें पर शुद्ध ग, छठे पर शुद्ध म, आठवें पर प, दसवें पर शुद्ध ध और बारहवें पर शुद्ध नि होते हैं। इस प्रकार इन ७ शुद्ध स्वरों का "षड्ज ग्राम" हो गया। इसे हम अपना शुद्ध बिलावल थाट भी कह सकते हैं। इसके बाद हमने षड्जग्राम के ५ नम्बर के शुद्ध ग को सा मानकर स्वर खींचे तो हमें भैरवी थाट के सभी कोमल स्वर मिल गये, क्योंकि गांधार स्वर को सा मानकर हमने स्वर खींचे थे, अतः यह "गांधार ग्राम" हुआ। इसके पश्चात् हमने षड्जग्राम के ६ नम्बर "म" स्वर को सा मानकर स्वर खींचे तो इस सप्तक में हमें तीव्र मध्यम मिल गया, क्योंकि षड्जग्राम के पंचम पर ऋषभ बोला, धैवत पर शुद्ध गांधार और निषाद पर तीव्र मध्यम। इस प्रकार यह "मध्यमग्राम" हुआ और इससे हमें कल्याण थाट के स्वर प्राप्त हो गये।

ग्रामों का यह विवेचन आधुनिक "स्केल चेन्ज" की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकता है, किन्तु यदि बारीकी से देखा जाय और स्वरों के आन्दोलनों का हिसाब लगाकर स्वरान्तरों की जांच की जावे तो यह विवेचन गणित की कसौटी पर ठीक नहीं उतरेगा। फिर भी हारमोनियम बाजे पर उपर्युक्त नियम से ३ ग्रामों के द्वारा शुद्ध, विकृत १२ स्वर निकालने का यह ढङ्ग सरल और सुबोध है।

———

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मूर्च्छना

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ।
मूर्च्छनेत्युच्युते ग्रामत्रये ताः सप्तसप्त च ॥ ६२ ॥

अर्थात्—सात स्वरों का क्रम से आरोह तथा अवरोह करना मूर्च्छना कहलाता है। तीन ग्राम हैं, उनमें से प्रत्येक की ७-७ मूर्च्छनाएँ हैं।

तत्र मध्यस्थषड्जेन षड्जग्रामस्य मूर्च्छना ।
प्रथमारभ्यतेऽन्यास्तु निषादाद्यैरधस्तनै ॥ ६४ ॥

—सङ्गीत दर्पण

मध्यस्थान के षड्ज स्वर से षड्ज ग्राम की पहिली मूर्च्छना आरम्भ होती है। शेष छः मूर्च्छनाएँ स्वर (षड्ज) के नीचे के निषादादि स्वरों से शुरू होती हैं।

इस प्रकार ३ ग्रामों से २१ मूर्च्छना प्राचीन शास्त्रकार बताते हैं। नीचे उनके नाम और स्वर दिये जाते हैं:—

षड्ज ग्राम की मूर्च्छना—

नं०	नाम मूर्च्छना	आरोह	अवरोह
१	उत्तरामन्द्रा	सा रे ग म प ध नि	नि ध प म ग रे सा
२	रजनी	नि़ सा रे ग म प ध	ध प म ग रे सा नि़
३	उत्तरायता	ध़ नि़ सा रे ग म प	प म ग रे सा नि़ ध़
४	शुद्ध षड्जा	प़ ध़ नि़ सा रे ग म	म ग रे सा नि़ ध़ प़
५	मत्सरीकृता	म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग	ग रे सा नि़ ध़ प़ म़
६	अश्वक्रान्ता	ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे	रे सा नि़ ध़ प़ म़ ग़
७	अभिरुद्गता	रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा	सा नि़ ध़ प़ म़ ग़ रे़

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मध्यम ग्राम की मूर्छना—

१	सौवीरी	म	प	ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म
२	हरिणाश्वा	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	रें	सां	नि	ध	प	म	ग
३	कलोपनता	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
४	शुद्धमध्या	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा
५	मार्गी	नि़	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	प	म	ग	रे	सा	नि़
६	पौरवी	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	प	प	म	ग	रे	सा	नि़	ध़
७	हृश्यका	प़	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	म	ग	रे	सा	नि़	ध़	प़

गांधार ग्राम की मूर्छना—

नोट—प्राचीन शास्त्रों में गांधार को ही निषादग्राम भी कहा है, अतः इस ग्राम की पहली मूर्छना निषाद स्वर से ही आरम्भ होती है:—

१	नन्दा	नि	सां	रें	गं	मं	पं	धं	धं	पं	मं	गं	रें	सां	नि
२	विशाला	ध	नि	सां	रें	गं	मं	पं	पं	मं	गं	रें	सां	नि	ध
३	सुमुखी	प	ध	नि	सां	रें	गं	मं	मं	गं	रें	सां	नि	ध	प
४	विचित्रा	म	प	ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म
५	रोहिणी	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	रें	सां	नि	ध	प	म	ग
६	सुखा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
७	आलापा	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा

गांधारग्राम की इन ७ मूर्च्छनाओं के बारे में दर्पणकार कहता है:—

ताश्चस्वर्गे प्रयोक्तव्या विशेषादत्र नोदिताः ॥९९॥

अर्थात्—इनका प्रयोग स्वर्गलोक में होता है इसलिए विशेष वर्णन नहीं किया गया। इस प्रकार दर्पणकार ने केवल १४ मूर्च्छनाओं का ही उल्लेख किया है, यद्यपि नाम २१ मूर्च्छनाओं के दे दिये हैं।

संगीत के विद्यार्थियों को यहाँ पर यह बता देना उचित होगा कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने मूर्च्छनाओं के जो स्वर दिये हैं, उन्हें केवल आरोह-अवरोह ही न समझ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लिया जावे, बल्कि इनके अन्दर जो रहस्य छिपा हुआ है, उस पर ध्यान देकर ही प्राचीन मूर्च्छनाओं की उपयोगिता जानी जा सकती है। वह रहस्य क्या है, यह नीचे के उदाहरणों से भली प्रकार जाना जा सकता है :—

जिस प्रकार हमारे यहाँ रागों की उत्पत्ति थाटों से हुई है उसी प्रकार प्राचीन ग्रंथों में मूर्च्छनाओं के द्वारा भिन्न-भिन्न राग उत्पन्न करके बनाये हैं। प्राचीन ग्रंथकार अपने किसी राग का वर्णन करते समय यह नहीं कहते थे कि इसमें अमुक स्वर तीव्र या कोमल हैं बल्कि वे कहते थे कि इस राग में अमुक मूर्च्छना है। उदाहरणार्थ :—

षड्जग्राम की पहली मूर्च्छना "उत्तरामंद्रा" को लीजिये, इसमें सा, रे, ग, म, प, ध, नि यह सात शुद्ध स्वर हैं।

आजकल की बोलचाल में हम इसे अपना शुद्ध थाट 'बिलावल' कहेंगे और इसी बिलावल थाट के अन्तर्गत जब किसी राग में शुद्ध स्वर प्रयुक्त होंगे, जैसे "गुणकली" तो हम कहेंगे कि गुणकली में सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह बिलावल थाट का राग है। किन्तु ऐसे राग का वर्णन करते समय प्राचीन ग्रथकार कहेंगे कि गुणकली में षड्जग्राम की पहली मूर्च्छना है।

अब दूसरी मूर्च्छना लीजिये, जिसका नाम 'रजनी' है। ध्यान दीजिये प्रथम मूर्च्छना (उत्तरामन्द्रा के षड्ज स्वर पर इसका निषाद है, ऋषभ पर इसका षड्ज है, गांधार पर इसका ऋषभ है एवं इसी क्रम से उसके म प ध नि स्वरों पर मूर्च्छना के ग म प ध स्वर हैं, तो पहली मूर्च्छना के ऋषभ को दूसरी मूर्च्छना में षड्ज स्वर मानकर हमने स्वर खींचे तो नतीजा क्या हुआ ?

सा रे ग म प ध नि—पहिली मूर्च्छना
नि॒ सा रे ग॒ म प ध—दूसरी मूर्च्छना

नतीजा यह हुआ कि इस प्रयोग से हमें दूसरी मूर्च्छना में निषाद और गांधार कोमल मिल गये और चूँकि ऋषभ स्वर को षड्ज मानकर यह मूर्च्छना निकली है, इसलिये ग्रंथकार इसे 'ऋषभ की मूर्च्छना' या 'रजनी' इन नामों से सम्बोधित करेंगे और हम अपनी भाषा में इस दूसरी मूर्च्छना को 'काफी थाट' कहेंगे; क्योंकि इसमें हमें ग॒ नि॒ कोमल स्वर प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार तीसरी मूर्च्छना (उत्तरायता) में सब स्वरों की स्थिति कोमल हो जायगी क्योंकि पहली मूर्च्छना (उत्तरामंद्रा) के गांधार को इसमें षड्ज माना गया है:—

सा रे ग म प ध नि—पहली मूर्च्छना
ध॒ नि॒ सा रे॒ ग॒ म प—तीसरी मूर्च्छना

इस प्रकार के कोमल स्वर जब हमारी किसी रचना में आयेंगे तो हम उसे भैरवी थाट का राग ही तो कहेंगे; किन्तु प्राचीन ग्रंथकारों की भाषा में ऐसे राग को गांधार की मूर्च्छना का राग कहा जायगा, क्योंकि इसमें शुद्ध गांधार को सा मानकर तीसरी मूर्च्छना निकाली गई थी। अथवा वे इसे 'उत्तरायता' की मूर्च्छना का राग कहेंगे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार मूर्च्छनाओं से प्राचीन ग्रन्थकारों ने बहुत से राग उत्पन्न किये, फिर उनके औडुव, षाडव, सम्पूर्ण ऐसे ३ रूप करके रागों की जातियाँ कायम कीं और बहुसंख्यक राग इन मूर्च्छनाओं के द्वारा उत्पन्न होगये।

प्राचीनकाल के बाद मध्यकालीन सङ्गीत-पण्डितों ने मूर्च्छना का रूप ही बदल दिया, इन्होंने मूर्च्छना को इस अर्थ में प्रयुक्त किया कि जब किसी राग के स्वरविस्तार की तान किसी गृह स्वर से आरम्भ करके ली जाती है और वर्जित तथा विकृत स्वरों का ध्यान रखते हुए उसका आरोहावरोह किया जाता है, उसे वे 'मूर्च्छना' कहने लगे। उदाहरणार्थ—मालकौंस राग का गृह स्वर यदि मध्यम मान लिया जाय और रे, प वर्जित करते हुए "मगुमधनिधमगुसा" इस प्रकार स्वर खींचकर उसका आरोह-अवरोह किया जाय तो उनकी भाषा में यह "मालकौंस की मूर्च्छना" हुई।

इसके पश्चात् आधुनिक काल में मूर्च्छना का अर्थ कुछ और ही हो गया। क्योंकि इस काल में गृह स्वर तो सब रागों का षड्ज ही माना जाने लगा, अतः दक्षिणी या कर्नाटकी सङ्गीतज्ञ किसी राग के आरोह-अवरोह को ही 'मूर्च्छना' कहने लगे, जैसे:—

"सा ग मं ध नि ध सां। सां नि ध मं ग सा" इसे वे 'हिण्डोल राग की मूर्च्छना' कहेंगे और उत्तरीय हिन्दुस्थानी सङ्गीत में तो मूर्च्छना का व्यवहार ही बन्द हो गया। हाँ, कोई-कोई सङ्गीतज्ञ किसी राग के स्वरों का कम्पन दिखाते समय कह देते हैं कि वह इस राग की मूर्च्छना है। अथवा किसी एक स्वर पर घर्षण करने से दूसरा स्वर जिस क्रिया से दिखाया जाता है, उसे आधुनिक उत्तरीय सङ्गीतज्ञ "मूर्च्छना" कहते हैं। श्री भातखण्डे जी ने अपनी हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति थ्योरी मराठी के प्रथम भाग में भी इसी अन्तिम रूप को मूर्च्छना स्वीकार किया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि मूर्च्छना किस रूप से किस रूप को पहुंच गई। अब हम संक्षेप में मूर्च्छना का तुलनात्मक विवेचन इस प्रकार कर सकते हैं:-

प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक

मूर्च्छनाओं की तुलनात्मक परिभाषा

(१) प्राचीन काल में मूर्च्छनाओं द्वारा भिन्न-भिन्न रागों का निर्माण उसी प्रकार होता था, जिस प्रकार आधुनिक सङ्गीत में थाटों के द्वारा होता है। अतः प्राचीन मूर्च्छना, थाट या मेल के समान थी।

(२) मध्यकालीन मूर्च्छना, एक निश्चित गृह स्वर से आरम्भ किया हुआ किसी राग विशेष का आरोहावरोह था, जिससे उस राग का रूप व्यक्त होता था।

(३) आधुनिक सङ्गीत में मूर्च्छना उसे कहते हैं, जब किसी एक स्वर पर कम्पन या घर्षण देते हुए किसी दूसरे स्वर को दिखाने की क्रिया की जाती है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग के १० लक्षण

रंजयन्ति मनांसीति रागास्ते दशलक्षणाः ।
लक्षणानि दशोक्तानि लक्ष्यन्ते तावदादितः ॥

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम्

रागों को पहिचानने के लिये प्राचीन ग्रंथकारों ने १० लक्षण बताये हैं जो निम्नलिखित हैं:-

१ गृह—जिस स्वर से राग गाना बजाना आरम्भ किया जाता है उसे ग्रह स्वर कहते हैं।

२ अंश—जो स्वर अन्य स्वरों की बनिस्बत किसी राग में अधिक लगता है, उसे अंश स्वर कहते हैं। इसे ही वादी या जीव स्वर भी कहते हैं।

३ न्यास—जिस स्वर पर गायन-वादन समाप्त होता है, उसे न्यास स्वर कहते हैं।

४ तार—तार सप्तक में गाते-बजाते समय, जिस स्वर तक राग का गाना-बजाना पहुँच जाये, उसे "तार स्वर" कहते हैं।

५ मन्द्र—मन्द्र सप्तक में गाते-बजाते समय जिस स्वर तक राग का गाना-बजाना पहुँच जाये उसे 'मन्द्र स्वर' कहते हैं।

६ अपन्यास—राग के १ भाग का अन्त जिस स्वर पर होता है उसे 'अपन्यास' स्वर कहते हैं।

७ सन्यास—जिस स्वर पर राग के प्रथम भाग का अन्त होता है उसे 'सन्यास' स्वर कहते हैं।

८ विन्यास—जिस स्वर पर राग के प्रथम भाग का अंश समाप्त हो, उसे 'विन्यास स्वर' कहते हैं।

९ बहुत्व—स्वरों में दो प्रकार के बहुत्व होते हैं (१) अलंघन से (२) अभ्यास से। अलंघन उसे कहते हैं जब किसी स्वर को थोड़ा सा स्पर्श करके छोड़ दिया हो। इस प्रकार यह स्वर दूसरे स्वरों की अपेक्षा कम महत्व का समझा जाता है। 'अभ्यास' उसे कहते हैं, जिस स्वर का अन्य स्वरों के बीच में आकर बार-बार प्रयोग हो अथवा उसका एक ही स्थान पर पुनः पुनः उच्चारण किया जाय।

१० अल्पत्व—इसके भी दो भेद हैं:—(१) लंघन (२) अनभ्यास। लंघन वह स्वर होता है, जिसे कि राग के आरोह-अवरोह में छोड़ दिया जाता है और अनभ्यास उसे कहते हैं जिस स्वर का प्रयोग राग में बहुत कम होता है।

राग-भेद

प्राचीन ग्रन्थों में रागों के ३ भेद बताये गये हैं:—

(१) शुद्ध—जिस राग में अन्य किसी राग के स्वर लगकर उसकी छाया न पड़ने पावे, उसे शुद्ध राग कहते हैं।

(२) छायालग—दो रागों के मिलाप से अथवा किसी एक राग में अन्य किसी राग के स्वर आजाने से दूसरे राग की जो छाया दिखाई दे जाती है, ऐसे राग को छायालग राग कहेंगे। इसे सालंक भी कहते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) संकीर्ण—जिस राग में दो रागों से अधिक रागों का मिश्रण या मिलावट हो उसे संकीर्ण राग कहते हैं।

वादी, सम्वादी, अनुवादी, विवादी।

राग के नियमों में वादी, सम्वादी आदि स्वरों का भी एक महत्वपूर्ण स्थान होता है उसे बताते हैं :—

वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मंत्री संवादिसंज्ञितः।
स्वरो विवादी वैरी स्यादनुवादी च भृत्यवत ॥

अर्थात्—वादी स्वर को राजा के समान और सम्वादी स्वर को मन्त्री के समान, विवादी स्वर को बैरी (दुश्मन) के समान और अनुवादी स्वर को सेवक के समान समझना चाहिये।

(१) वादी—राग में लगने वाले स्वरों में जिस स्वर पर सबसे अधिक जोर रहता है, अथवा जिसका प्रयोग अधिक या बारम्बार किया जाता है, उसे उस राग का 'वादी' स्वर कहते हैं।

(२) सम्वादी—यह वादी स्वर का सहायक होता है, तभी तो इसे मंत्री की पदवी शास्त्रों ने दी है। यह वादी स्वर से कम तथा अन्य स्वरों से अधिक प्रयोग किया जाता है। वादी स्वर से चौथे या पांचवें नम्बर पर 'सम्वादी' स्वर होता है।

(३) अनुवादी—वादी और सम्वादी के अतिरिक्त जो स्वर राग में लगते हैं, वे 'अनुवादी' कहलाते हैं।

(४) विवादी—विवादी का वास्तविक अर्थ तो बिगाड़ पैदा करने वाला ही होता है अर्थात् ऐसा स्वर जिससे राग का स्वरूप बिगड़ जाये। इसीलिये विवादी को शत्रु (बैरी) की उपमा शास्त्रों में दी गई है। इसे वर्जित स्वर भी कह सकते हैं। इतना सब होते हुए भी कभी-कभी राग में विवादी स्वर का प्रयोग ऐसी कुशलता से कर दिया जाता है जिससे कि राग में एक विचित्रता पैदा हो जाती है। जैसे यमन राग में दो शुद्ध गांधारों के बीच में शुद्ध म लगा दिया जाता है तो उसका सौन्दर्य कुछ बढ़ ही जाता है। इस प्रकार विवादी स्वर का प्रयोग कुशल गायक करते हैं।

आश्रय राग

हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में ऐसा नियम है कि किसी थाट का नाम उस थाट से पैदा होने वाले राग के नाम पर रख दिया जाता है, अतः जिस जन्य (पैदा होने वाले) राग का नाम थाट को दिया जाता है, उसी को 'आश्रय राग' कहते हैं जैसे – सा रे ग म प धु नि इस स्वरसमुदाय से विदित होता है कि यह भैरव थाट है। इसका नाम भैरव थाट इसलिये रक्खा गया; क्योंकि इन्हीं स्वरों से और इसी थाट से प्रसिद्ध राग 'भैरव' की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार यह 'भैरव' आश्रय राग हुआ। इसीलिये किसी भी थाट से पैदा होने वाले जन्य रागों में आश्रय राग का थोड़ा-बहुत अंश अवश्य ही दिखाई

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

देता है, किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये कि आश्रय राग सभी जन्य रागों का उत्पादक है। जन्य रागों का उत्पादक तो थाट ही माना जायगा।

आश्रय राग को ही थाट-वाचक राग भी कहते हैं। उत्तरी पद्धति में कुल १० आश्रय-राग माने गये हैं, जो निम्नलिखित नक्शे में दिखाये जाते हैं:—

१० आश्रय राग

नाम थाट	थाट के स्वर	आश्रय राग	राग के आरोह-अवरोह
१ बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां	बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
२ कल्याण	सा रे ग म॑ प ध नि सां	यमन	सा रे ग म॑ प ध नि सां सां नि ध प म॑ ग रे सा
३ खमाज	सा रे ग म प ध नि॒ सां	खमाज	सा ग म प ध नि सां सां नि॒ ध प म ग रे सा
४ भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां	भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा
५ पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां	पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां सां नि ध॒ प म॑ ग रे॒ सा
६ मारवा	सा रे॒ ग म॑ प ध नि सां	मारवा	सा रे॒ ग म॑ ध नि सां सां नि ध म॑ ग रे॒ सा
७ काफी	सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां	काफी	सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां सां नि॒ ध प म ग॒ रे सा
८ आसावरी	सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	आसावरी	सा रे म प ध॒ सां सां नि॒ ध॒ प म ग॒ रे सा
९ भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां सां नि॒ ध॒ प म ग॒ रे॒ सा
१० तोड़ी	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	तोड़ी	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां सां नि ध॒ प म॑ ग॒ रे॒ सा

ध्यान रहे कि थाट में केवल आरोह ही होता है तथा सातों स्वर पूरे होते हैं, किन्तु राग में आरोह व अवरोह दोनों का होना आवश्यक है चाहे स्वर सात हों या कम।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग गाने का समय-विभाजन

हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति में रागों का गायन-समय दिन और रात के २४ घंटों के दो भाग करके बांटा गया है। पहला भाग—१२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि तक और दूसरा भाग—१२ बजे रात्रि से १२ बजे दिन तक। इनमें पहले भाग को पूर्व भाग और दूसरे भाग को उत्तर भाग कहते हैं।

पूर्व राग—जो राग दिन के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक के (पूर्व भाग) समय में गाये-बजाये जाते हैं, उन्हें "पूर्व राग" कहते हैं।

उत्तर राग—जो राग १२ बजे रात्रि से दिन के १२ बजे तक के (उत्तर भाग) समय में गाये-बजाये जाते हैं, उन्हें "उत्तर राग" कहते हैं।

पूर्वराग और उत्तरराग को ही प्रचार में पूर्वाङ्ग वादी तथा उत्तराङ्ग वादी राग भी कहते हैं। यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि इनको पूर्वाङ्ग वादी या उत्तराङ्ग वादी राग क्यों कहते हैं।

सप्तक के ७ शुद्ध स्वरों में तार सप्तक का सां मिलाकर सा रे ग म, प ध नि सां इस प्रकार स्वरों की संख्या ८ करली जावे और फिर इसके दो हिस्से कर दिये जायँ तो 'सा रे ग म' यह सप्तक का पूर्वाङ्ग होगा और 'प ध नि सां' यह उत्तराङ्ग कहा जायेगा।

पूर्वाङ्ग वादी राग—

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वाङ्ग अर्थात् "सा रे ग म" इन स्वरों में से होता है, वे पूर्वाङ्ग वादी राग कहे जाते हैं। ऐसे राग प्रायः दिन के पूर्व भाग यानी १२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि तक के समय में गाये जाते हैं।

उत्तराङ्ग वादी राग—

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तराङ्ग अर्थात् प ध नि सां इन स्वरों में से होता है, वे उत्तराङ्ग वादी राग कहे जाते हैं। ऐसे राग प्रायः दिन के उत्तर भाग अर्थात् १२ बजे रात्रि से १२ बजे दिन तक ही गाये-बजाये जाते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राग के वादी स्वर को जान लेने पर उस राग के गाने का समय ज्ञात हो जाता है, जैसेः—आसावरी का वादी स्वर धैवत है यानी सप्तक का उत्तराङ्ग स्वर है, तो इसके गाने का समय भी प्रातःकाल है। यानी रात्रि के १२ बजे से दिन के १२ बजे तक का जो समय (उत्तर भाग) है, उसी के अन्तर्गत प्रातःकाल का समय आजाता है। और यमन का वादी स्वर गान्धार है, जो कि सप्तक के पूर्वाङ्ग में से लिया हुआ स्वर है, अतः यमन राग के गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है जोकि दिन के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक के (पूर्व भाग) क्षेत्र में आता है। इसलिये यमन पूर्वाङ्गवादी राग कहा जायगा और आसावरी को उत्तराङ्गवादी राग कहेंगे।

उपरोक्त विवेचन पर सङ्गीत-विद्यार्थियों को यह शंका होना स्वाभाविक है कि भैरवी में मध्यम वादी स्वर है जोकि सप्तक का पूर्वाङ्ग स्वर हुआ, फिर क्या कारण है कि भैरवी का गायन-समय प्रातःकाल बताया गया है। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार तो भैरवी का गायन-समय दिन का उत्तरभाग अर्थात् १२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि होना चाहिये? प्रातःकाल का समय तो 'उत्तर भाग' के अन्तर्गत आता है, फिर भैरवी का वादी स्वर सप्तक के पूर्वाङ्ग में से क्यों है? इसी प्रकार यह भी शंका हो सकती है कि कामोद में पंचम

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वादी है, जो कि सप्तक का उत्तरांग स्वर है फिर क्यों इसे पूर्व भाग (रात्रि के प्रथम प्रहर) में गाते हैं?

उपर्युक्त शंकाओं का समाधान यह है कि हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति में यद्यपि सा रे ग म को सप्तक का पूर्वाङ्ग और प ध नि सां को उत्तरांग कहा गया है, किन्तु कुछ पूर्वाङ्ग वादी तथा उत्तराङ्ग वादी स्वरों को उपर्युक्त वर्गीकरण में लाने के लिये पूर्वाङ्ग का क्षेत्र सा रे ग म प और उत्तराङ्ग का क्षेत्र म प ध नि सां इस प्रकार बढ़ाकर माना गया है। इस प्रकार सप्तक के दो भाग करने से सा, म, प यह तीनों स्वर सप्तक के उत्तराङ्ग तथा पूर्वाङ्ग दोनों भागों में आजाते हैं। और जब किसी राग में इन तीनों स्वरों में से कोई स्वर वादी होता है, तो वह राग पूर्वाङ्ग वादी भी हो सकता है और उत्तराङ्ग वादी भी हो सकता है। ऊपर वर्णित भैरवी और कामोद राग इसी श्रेणी में आजाते हैं, अतः भैरवी में मध्यम वादी होते हुए भी यह उत्तराङ्ग वादी राग माना जा सकता है और कामोद में पंचम वादी होते हुए भी उसे पूर्वाङ्ग वादी राग कह सकते हैं, क्योंकि यह दोनों ही राग सप्तक के बढ़ाये हुए क्षेत्र में आजाते हैं। इसी प्रकार अन्य कुछ राग भी इसी श्रेणी में आकर अपना क्षेत्र बना लेते हैं। अतः यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जब किसी राग में वादी स्वर सा, म, प, इनमें से कोई स्वर हो और यह बताना हो कि यह राग पूर्वाङ्ग वादी है या उत्तराङ्ग वादी, तो उस राग के गाने का समय देखकर तथा सप्तक के उत्तराङ्ग और पूर्वाङ्ग भागों के दोनों प्रकारों को ध्यान में रखकर, आसानी से बताया जा सकता है कि अमुक राग पूर्वाङ्ग वादी है या उत्तरांग वादी।

स्वर और समय की दृष्टि से रागों के ३ वर्ग

हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति में रागों के गाने-बजाने के बारे में समय-सिद्धान्त (Time Theory) प्राचीन काल से ही चला आरहा है। यद्यपि प्राचीन रागों में एवं अर्वाचीन रागों में समय-सिद्धान्त पर कुछ मतभेद हैं, जिनका कारण रागों के स्वरों में उलट-फेर हो जाना है, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारे प्राचीन संगीत-पंडितों ने रागों को उनके ठीक समय पर गाने का सिद्धांत अपने ग्रंथों में स्वीकार किया है। उसी को आज के सङ्गीतज्ञ भी स्वीकार करके अपने रागों में समय-सिद्धान्त का पालन कर रहे हैं।

हिन्दुस्थानीयरागाणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिता।
स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः ॥

—मल्लक्ष्यसंगीतम्

स्वर और समय के अनुसार हिन्दुस्तानी रागों के ३ वर्ग मानकर कोमल-तीव्र (बिकृत) स्वरों के हिसाब से उनका विभाजन किया गया है:—

(१) कोमल रे और कोमल ध वाले राग।
(२) शुद्ध रे और शुद्ध ध वाले राग।
(३) कोमल ग और कोमल नि वाले राग।

सन्धिप्रकाश राग—

ऊपर बताये हुए ३ वर्गों में से प्रथम वर्ग अर्थात् कोमल रे और कोमल ध वाले राग सन्धिप्रकाश रागों की श्रेणी में आ जाते हैं। ध्यान रहे इस वर्ग में रे, ध कोमल के साथ-साथ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ग तीव्र होना जरूरी है। क्योंकि ग यदि कोमल होगा तो वह तीसरे वर्ग में आजायगा। दिन और रात की सन्धि यानी मेल होने के समय को सन्धिकाल कहते हैं। प्रातःकाल सूर्योदय से कुछ पहले और शाम को सूर्यास्त से कुछ पहिले का समय ऐसा होता है जिसे न तो दिन ही कह सकते हैं न रात ही। इसी समय को सन्धिप्रकाश की वेला कहा गया है और इस वेला में जो राग गाये-बजाये जाते हैं, उन्हें ही सन्धिप्रकाश राग कहते हैं। जैसे—भैरव, कालिंगड़ा, भैरवी, पूर्वी, मारवा इत्यादि। सन्धिप्रकाश के भी दो भाग माने गये हैं!

(१) प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश राग और (२) सायंकालीन संधिप्रकाश राग। जो राग सूर्योदय के समय गाये-बजाये जायेंगे वे प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग होंगे और जो सूर्यास्त के समय गाये जायँगे उन्हें सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग कहेंगे।

संधिप्रकाश रागों में मध्यम स्वर बड़े महत्व का है। प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर मध्यम कोमल यानी शुद्ध होगा और सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों में अधिकतर तीव्र मध्यम मिलेगा। जैसे—भैरव और कालिङ्गड़ा प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमें शुद्ध मध्यम है और पूर्वी अथवा मारवा सायंकालीन संधिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमें तीव्र मध्यम है।

संधिप्रकाश रागों की एक साधारण-सी पहचान यह भी है कि उनमें धैवत स्वर चाहे कोमल हो या तीव्र, किन्तु उनमें रे॒ कोमल और ग नि तीव्र ही अधिकतर मिलेंगे। यद्यपि कोई-कोई संधिप्रकाश राग इस नियम का अपवाद भी हो सकता है, जैसे—भैरवी इत्यादि।

(२) रे, ध शुद्ध वाले राग

रे, ध शुद्ध (तीव्र) वाले रागों के गाने का समय संधिप्रकाश काल के बाद आता है, क्योंकि संधिप्रकाश काल दिन में दो बार आता है, अतः इस वर्ग के रागों के गाने का समय भी २४ घण्टों में दो बार आता है। इसमें कल्याण, बिलावल और खमाज थाट के राग गाये-बजाये जाते हैं।

प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों के बाद गाये जाने वाले रागों में, दिन चढ़ने के साथ ही साथ शुद्ध रे तथा शुद्ध ध की प्रधानता बढ़ती जाती है। इस प्रकार प्रातः ७ बजे से १० बजे तक और शाम को ७ बजे से १० बजे तक दूसरे वर्ग अर्थात् रे ध शुद्ध वाले राग गाये-बजाये जाते हैं। इस वर्ग में ग का शुद्ध होना आवश्यक है। साथ ही साथ इस वर्ग के रागों में मध्यम स्वर का भी विशेष महत्व है, वह इस प्रकार कि सवेरे ७ बजे से १० बजे तक गाये जाने वाले रागों में शुद्ध यानी कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, जैसे बिलावल, देशकार, तोड़ी इत्यादि और शाम के ७ बजे से १० तक गाये जाने वाले रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है। जैसे यमन, शुद्धकल्याण, भूपाली इत्यादि।

(३) कोमल ग॒, नि॒ वाले राग

इस वर्ग के रागों को गाने का समय रे ध शुद्ध वाले रागों के बाद आता है, अर्थात् ग॒ नि॒ कोमल वाले राग दिन के १० बजे से ४ बजे तक, रात को १० बजे से ४ बजे

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तक गाये-बजाये जाते हैं। इस वर्ग के रागों की ख़ास पहचान यह है कि उनमें ग कोमल जरूर होगा, चाहे रे, ध शुद्ध हों या कोमल। इस वर्ग के रागों में प्रातःकाल के समय आसावरी, जौनपुरी, गांधारीतोड़ी इत्यादि राग गाये जाते हैं और रात्रि के समय में यमन इत्यादि गाने के बाद जैसे-जैसे आधी रात्रि का समय आता जाता है बागेश्री, जयजयवन्ती, मालकौंस इत्यादि राग गाये-बजाये जाते हैं।

'संगीत सीकर' से रागों के गाने की एक तालिका हम नीचे दे रहे हैं, जोकि रात्रि के प्रथम प्रहर के प्रमुख राग यमन से आरम्भ होती है, क्योंकि गायक-वादक प्रायः यमन राग से ही अपना गायन-वादन प्रारम्भ करते हैं। इस तालिका में 'भैरवी' को इसलिये छोड़ दिया गया है कि महफ़िल की समाप्ति प्रायः भैरवी पर ही करने का रिवाज-सा हो गया है, अतः भैरवी का गायनकाल यद्यपि प्रातःकाल है, किन्तु रात्रि के १ बजे २ बजे जब भी महफ़िल समाप्ति पर हो, भैरवी सुनाई दे जाती है। इसी प्रकार दिन में भी १-२ बजे कभी-कभी भैरवी सुनाई दे जाती है।

तीव्र मध्यम वाले राग

(१) यमन
(२) शुद्धकल्याण
(३) मालश्री
(४) हिंडोल—(इस राग के विषय में दो मत प्रचलित हैं। रात्रिगेय हिंडोल में ग वादी होता है, किन्तु प्रातःकाल गाने वाले धैवत वादी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि बसन्त ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया जा सकता है।)
(५) भूपाली
(६) जैतकल्याण

यहाँ से दोनों मध्यम वाले राग आरम्भ हुए

(७) हमीर
(८) केदार
(९) कामोद
(१०) छायानट
(११) बिहाग
(१२) शंकरा [मध्यम का अभाव]

तीव्र ग तथा कोमल नि लगने वाले रागों का आरम्भ

(१३) खमाज
(१४) देस
(१५) तिलककामोद
(१६) जयजयवन्ती राग (परमेलप्रवेशक) कुछ विद्वान जयजयवन्ती के पश्चात् ही मालकौंस गाने का समय बतलाते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कोमल ग तथा कोमल नि लगने वाले राग

(१७) बागेश्री
(१८) दरबारी
(१९) अड़ाना
(२०) पूरिया (इस राग को रात्रि का पूरिया भी कहा जाता है, क्योंकि पूरियाधनाश्री को प्रायः दिन का पूरिया कहा जाता है।)
(२१) बहार
(२२) मालकौंस

तीव्र मध्यम का पुनः प्रयोग आरम्भ हुआ—

(२३) बसन्त
(२४) परज
(२५) सोहनी

प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों का आरम्भ—

(२६) कालिंगड़ा
(२७) जोगिया
(२८) ललित
(२९) रामकली
(३०) भैरव (सब प्रकार के भैरव)
(३१) विभास (भैरव का अन्तिम प्रकार)
(३२) विभास (मारवा थाट का विभास)
(३३) अल्हैयाबिलावल
(३४) बिलावल के सब प्रकार
(३५) देशकार
(३६) तोड़ी (सब प्रकार)
(३७) आसावरी
(३८) जौनपुरी
(३९) देसी
(४०) सूहा
(४१) सुघराई
(४२) सारङ्ग
(४३) सारङ्ग के सब प्रकार
(४४) गौड़सारङ्ग
(४५) काफी (कुछ विद्वान् काफी का समय मध्यरात्रि मानते हैं तथा कुछ के मतानुसार यह सर्वकालिक राग है।)
(४६) भीमपलासी
(४७) धनाश्री
(४८) धानी
(४९) मुलतानी
(५०) पूर्वी
(५१) पूरियाधनाश्री
(५२) श्री
(५३) जैतश्री
(५४) गौरी
(५५) मारवा

जैत गाने के बाद प्रायः यमन राग गाने का समय फिर आ जाता है। इस प्रकार रागों की यह तालिका हमें बताती है कि पूरे २४ घण्टे का चक्कर लगाकर १ आवर्तन समाप्त करके फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है।

उक्त तालिका का यह अर्थ नहीं कि इसमें दिए हुए किसी राग के बाद अमुक राग गाना ही चाहिये। बहुत से गायक अपनी इच्छानुसार इनके क्रम में परिवर्तन करके गाते हैं, एवं अन्य रागों का समावेश भी इच्छानुसार कर सकते हैं, किन्तु राग के समय का ध्यान रखकर ही उन्हें ऐसा करना चाहिए, क्योंकि कुसमय में कोई राग गाने-बजाने से न तो श्रोताओं पर ही उसका अच्छा प्रभाव होता है और न राग से रसोत्पत्ति ही सम्भव है।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यहाँ पर राग-समय-चक्र का एक चित्र भी दे रहे हैं, जिससे सङ्गीत के विद्यार्थियों को यह विदित हो जायगा कि सङ्गीत के दिन और रात किस प्रकार होते हैं:—

सङ्गीत के दिन-रात

(रागसमय-चक्र)

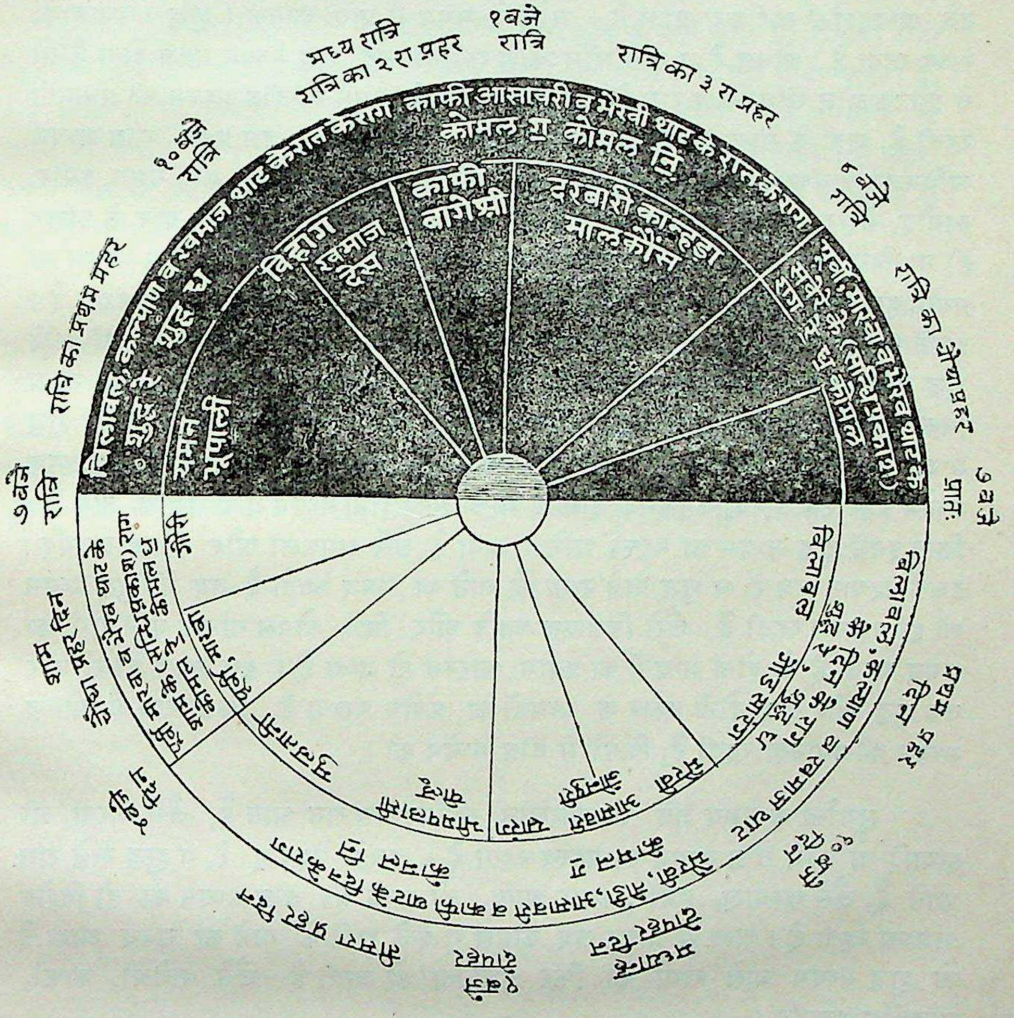

इस चित्र में काला भाग रात्रि का और सफेद भाग दिन का सूचक है।

———

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अध्वदर्शक स्वर (मध्यम) का महत्त्व

हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति में रागों के गाने के समय की दृष्टि से मध्यम स्वर विशेष महत्वपूर्ण है। यह स्वर रागों के समय-विभाजन में पथप्रदर्शक का कार्य करता है, इसीलिए इसे 'अध्वदर्शक' स्वर कहा जाता है। सबेरे के समय में प्रायः कोमल (शुद्ध) मध्यम का राज्य रहता है। कोमल रे ध वाले संधिप्रकाश रागों में यदि शुद्ध मध्यम प्रबल होता है तो वे प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग होते हैं और शाम के रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है, अतः वे संध्याकालीन संधिप्रकाश राग कहे जाते हैं। इस प्रकार तीव्र मध्यम अधिकतर सायंकाल की सूचना देता है और कोमल मध्यम प्रातःकाल की। यमन, हमीर, कामोद, केदार इत्यादि तीव्र मध्यम वाले राग सायंकाल में रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्दर ही गा लिये जाते हैं। शाम को मुलतानी, पूर्वी तथा श्री इत्यादि रागों से तीव्र मध्यम का प्रयोग शुरू होता है और यह प्रयोग लगभग आधी रात तक लगातार चलता रहता है। इसके पश्चात् रात्रि के दूसरे प्रहर में जब बिहाग गाने का समय आता है, तो धीरे-धीरे शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। वह सूचित करता है कि प्रभात का समय निकट आ रहा है और रात्रि काफी बीत चुकी है। इस प्रकार तीव्र मध्यम के बाद शुद्ध मध्यम की प्रधानता स्थापित हो जाती है। प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में पहले शुद्ध मध्यम वाले राग भैरव, कालिंगड़ा इत्यादि गाकर फिर दोनों मध्यम वाले राग आ जाते हैं। किन्तु इनमें शुद्ध मध्यम का महत्त्व अधिक रहता है जैसे रामकली और ललित इत्यादि। इसके पश्चात् जब रे, ध शुद्ध वाले रागों को गाने का समय आता है तब भी शुद्ध मध्यम की ही प्रबलता रहती है, जैसे बिलावल आदि और फिर कोमल गांधार वाले रागों का समय आता है तो दोनों मध्यमों का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार तीसरे प्रहर तक शुद्ध और तीव्र दोनों प्रकार के मध्यमों का प्रयोग चलता है, किसी राग में कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, किसी में तीव्र मध्यम की।

सूर्यास्त के समय जब संध्याकालीन सन्धिप्रकाश राग आते हैं, जैसे मारवा, श्री इत्यादि तो उनमें तीव्र मध्यम का महत्त्व रहता है। इसके पश्चात् रे, ग शुद्ध वाले राग आते हैं, जैसे कल्याण, हमीर, केदार आदि, तो उनमें भी तीव्र मध्यम का ही विशेष प्राधान्य रहता है। अन्त में जाकर जब कोमल ग वाले रागों के गाने का समय आता है तो शुद्ध मध्यम वाले रागों की फिर प्रधानता हो जाती है—जैसे बागेश्री, काफी, मालकौंस इत्यादि।

इसीलिए कहा जाता है कि हमारी पद्धति में मध्यम स्वर का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। केवल मध्यम के परिवर्तन से गायन में अन्तर दीखने लगता है। भैरव प्रातःकाल के प्रथम प्रहर में गाया जाता है, किन्तु इसके स्वरों में यदि कोमल मध्यम की जगह तीव्र मध्यम कर दिया जाय तो सायंकाल में गाया जाने वाला पूर्वी राग हो जायगा तथा प्रातःकाल गाये जाने वाले बिलावल राग के स्वरों में से सिर्फ कोमल मध्यम हटाकर तीव्र मध्यम करने से रात्रि को गाया जाने वाला राग यमन हो जाता है। इस प्रकार केवल मध्यम का स्वरूप बदल देने से प्रातःकाल के स्थान पर यह राग रात्रिगेय हो गये। इसीलिए

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कहा है कि मध्यम के इशारे पर ही सङ्गीतज्ञों के दिन और रात होते हैं। यद्यपि इस नियम के कुछ राग अपवाद भी हैं, किन्तु बहुमत इसी ओर है।

परमेलप्रवेशकराग

परमेल का अर्थ है, दूसरा अन्य कोई मेल और प्रवेशक अर्थात् प्रवेश करने वाला। अर्थात् परमेलप्रवेशक राग वे कहे जाते हैं जो किसी एक मेल (थाट) से अन्य किसी दूसरे मेल या थाट में प्रवेश करते हैं। उदाहरणार्थ—संध्याकाल के गाने वाले संधिप्रकाश रागों को गाकर जब गायक समयानुसार दूसरे अन्य किसी मेल (थाट) के राग गाना चाहता है, जैसे भीमपलासी, धनाश्री और धानी गाकर जब कोई गायक मुलतानी गाने लगता है, तो उससे यह संकेत होता है कि अब गायक किसी दूसरे थाट (यमन इत्यादि) में प्रवेश करने वाला है; इस प्रकार मुलतानी 'परमेलप्रवेशक' राग माना गया है। एक उदाहरण से यह और स्पष्ट किया जाता है:—

रात्रि को जब रे ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों का समय समाप्त हो जाता है और ग॒ नि॒ कोमल वाले वर्ग के रागों को गाने का समय आने वाला होता है, उस समय जयजयवन्ती राग 'परमेलप्रवेशक' राग माना जायगा, क्योंकि जयजयवन्ती राग में रे, ध शुद्ध वाले वर्ग तथा ग॒, नि॒ कोमल वाले वर्ग दोनों की ही कुछ-कुछ विशेषताएँ मौजूद हैं। जयजयवन्ती में दोनों गांधार, दोनों निषाद और शुद्ध रे, ध लगते ही हैं, अतः यह राग दूसरा थाट (मेल) आरम्भ होने की सूचना देकर 'परमेलप्रवेशक' राग कहलाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के ४० सिद्धान्त

कर्नाटकी सङ्गीत की तुलना में हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति अपनी कुछ विशेषताएँ रखती है, यही कारण है कि आज मैसूर, मद्रास और कर्नाटक को छोड़कर शेष समस्त भारत में हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति ही प्रचलित है। यह पद्धति निम्नलिखित विशेष सिद्धांतों पर अवलम्बित है। सङ्गीत विद्यार्थियों को इन सिद्धान्तों का भली प्रकार मनन कर लेना चाहिये। श्री भातखण्डे जी ने क्रमिक पुस्तक पांचवीं में इनका विस्तृत उल्लेख किया है, उसी आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्त दिये जा रहे हैं:—

१—हिन्दुस्तानी सङ्गीत-पद्धति की नींव "बिलावल थाट" को शुद्ध थाट मानकर रखी गई है, अर्थात् बिलावल थाट के स्वर ही शुद्ध स्वर सप्तक का निर्माण करते हैं।

२—समस्त रागों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है (१) औडुव (पांच स्वरों के राग) (२) षाडव (छः स्वरों के राग) (३) सम्पूर्ण (सात स्वरों के राग)।

३—पांच स्वरों से कम का और ७ स्वरों से अधिक का (कोमल तीव्र मिलाकर १२ स्वर) राग नहीं होता।

४—औडुव, षाडव और सम्पूर्ण इनके आरोह-अवरोह में उलट-पलट होने से ९ प्रकार के भेद माने जाते हैं, जिनका विवेचन इस पुस्तक में औडुव-षाडव भेद के अन्तर्गत किया है।

५—प्रत्येक राग में थाट, आरोह-अवरोह, वादी-सम्वादी, समय और रंजकता यह बातें अवश्य होती हैं।

६ - वादी-सम्वादी स्वरों में प्रायः ४ स्वरों का अन्तर होता है। वादी स्वर पूर्वाङ्ग में होगा तो सम्वादी उत्तराङ्ग में होगा अथवा वादी स्वर उत्तराङ्ग में होगा, तो सम्वादी पूर्वाङ्ग में होगा।

७—वादी स्वर को बदलकर शाम को गाया जाने वाला राग सवेरे का गाया जाने वाला राग बनाया जा सकता है।

८—राग में सुन्दरता लाने के लिये विवादी या वर्जित स्वर का भी किंचित प्रयोग किया जा सकता है।

९—हर एक राग में एक वादी स्वर होता है जिसका राग में विशेष जोर रहता है, वादी स्वर के आधार पर ही पूर्व राग और उत्तर राग पहिचाने जा सकते हैं।

१०-इस पद्धति के राग सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं (१) रे ध कोमल वाले राग (२) शुद्ध रे, ध वाले राग (३) ग नि कोमल वाले राग। संधि-प्रकाश राग जो सूर्यास्त और सूर्योदय के समय गाये जाते हैं वे प्रथम वर्ग में अधिकतर पाये जाते हैं। प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में प्रायः रे ध वर्जित नहीं होते तथा सायंकालीन संधिप्रकाश रागों में प्रायः ग नि दोनों ही वर्जित नहीं होते।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

११-इस पद्धति में मध्यम स्वर महत्वपूर्ण माना जाता है, इसे अध्वदर्शक स्वर कहा जाता है क्योंकि इससे दिन-रात के रागों को गाने का समय निर्धारित होता है।

१२-जिन रागों में ग॒ नि॒ कोमल लगते हैं, वे दोपहर को या आधी रात को ही अधिकतर गाये जाते हैं।

१३-संधिप्रकाश रागों के बाद प्रायः रे ग ध नि शुद्ध लगने वाले राग गाये जाते हैं।

१४-षड्ज, मध्यम और पञ्चम यह तीन स्वर प्रायः दिन और रात्रि के तीसरे प्रहर के रागों में अपना महत्व विशेष रूप से रखते हैं।

१५-तीव्र मध्यम अधिकतर रात्रि के रागों में ही पाया जाता है, दिन के रागों में यह स्वर कम दिखाई देता है।

१६-सा, म, प यह स्वर पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग दोनों भागों में ही होते हैं, अतः जो राग प्रत्येक समय (सर्वकालिक) गाये जाने वाले होते हैं उनमें इन तीन स्वरों में से कोई एक वादी होता है।

१७-मध्यम और पञ्चम यह दोनों स्वर एक साथ किसी भी राग में वर्जित नहीं होते। प वर्जित होगा तो म मौजूद होगा और म वर्जित होगा तो प मौजूद होगा।

१८-किसी भी राग में षड्ज स्वर वर्जित नहीं होता।

१९-रागों में प्रायः एक ही स्वर के दो रूप (कोमल, तीव्र) पास-पास नहीं आने चाहिए, किन्तु ललित इत्यादि कुछ राग इस नियम के अपवाद हैं।

२०-अपने नियत समय पर गाने से हो राग सुन्दर लगता है, किन्तु राज-दरबार तथा रंगमंच (स्टेज) पर यह नियम शिथिल भी हो जाता है।

२१-तीव्र म॑ के साथ कोमल नि॒ बहुत कम रागों में आता है।

२२-दोनों मध्यम लगने वाले रागों में कुछ-कुछ एकरूपता पाई जाती है, इनकी भिन्नता प्रायः आरोह में ही दिखाई देती है। ऐसे रागों का अन्तरा बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है।

२३-रात्रि के प्रथम प्रहर में जब दोनों मध्यम वाले राग गाये जाते हैं, उनका एक साधारण-सा नियम यह है कि शुद्ध मध्यम तो आरोहावरोह दोनों में लगता है, किन्तु तीव्र म॑ केवल आरोह में ही दिखाई देता है तथा शुद्ध मध्यम की अपेक्षा तीव्र मध्यम का उपयोग दोनों मध्यम वाले रागों में कम पाया जाता है।

२४-रात्रि के प्रथम प्रहर वाले रागों में एक नियम यह भी दिखाई देता है कि उनके आरोह में निषाद वक्र और अवरोह में गान्धार वक्र रूप से लगता है। ऐसे रागों के अवरोह में प्रायः निषाद दुर्बल दिखाई देता है।

२५-हिन्दुस्तानी पद्धति में ताल की अपेक्षा राग को अधिक महत्व दिया गया है। इसके विरुद्ध कर्नाटकी पद्धति में राग की अपेक्षा ताल का महत्व अधिक माना गया है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२६–पूर्व रागों की विशेषता आरोह में और उत्तर रागों का चमत्कार अवरोह में दिखाई देता है।

२७–प्रायः प्रत्येक थाट से पूर्व और उत्तर राग उत्पन्न हो सकते हैं।

२८–गंभीर प्रकृति के रागों में षड्ज, मध्यम या पञ्चम का विशेष महत्व होता है तथा मन्द्र सप्तक में उनका अधिक महत्व माना गया है। किन्तु क्षुद्र प्रकृति के रागों में यह बात नहीं पाई जाती।

२९–संधिप्रकाश रागों के द्वारा करुण व शांत रस, रे ग ध तीव्र वाले रागों से श्रृङ्गार व हास्य और कोमल ग॒ नि॒ वाले रागों द्वारा वीर, रौद्र व भयानक रसों का परिपोषण होता है।

३०–एक थाट के रागों से दूसरे थाटों के रागों में प्रवेश करते समय, परमेलप्रवेशक राग गाये जाते हैं।

३१–संधिप्रकाश राग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय गाये-बजाये जाते हैं और इनके बाद तीव्र रे ग ध वाले राग गाये जाते हैं या कोमल ग॒ नि॒ वाले राग गाये जाते हैं।

३२–जिन रागों में कोमल नि॒ लगता है जैसे—काफी और खमाज थाट के राग; इनके आरोह में बहुधा तीव्र नि का प्रयोग भी कर दिया जाता है।

३३–किसी राग में जब स्वर लगाये जाते हैं तो वे अपने कम अधिक या बराबर के परिमाण में लगकर दुर्बल, प्रबल या सम माने जाते हैं। दुर्बल का अर्थ वर्जित नहीं है।

३४–दो-तीन या चार स्वरों के समुदाय को 'तान' कहते हैं, राग नहीं कह सकते।

३५–दोपहर १२ बजे के बाद तथा रात्रि के १२ बजे के बाद जो राग गाये जाते हैं, उनमें क्रमशः सा, म, प का प्राबल्य होता चला जाता है।

३६–दोपहर को गाये जाने वाले रागों के आरोह में रे ध या तो लगते ही नहीं, या दुर्बल होते हैं। ठीक दोपहर के समय गाये जाने वाले रागों में ऋषभ और निषाद स्वर खूब चमकते हैं।

३७–जिन रागों में सा, म, प, यह स्वर वादी होते हैं, वे प्रायः गंभीर प्रकृति के होते हैं।

३८–सवेरे के रागों में कोमल रे॒ ध॒ की प्रबलता रहती है और शाम के रागों में तीव्र ग नि अधिक दिखाई देते हैं।

३९–निसारे॒ग यह स्वरसमुदाय शीघ्रतापूर्वक संधिप्रकाशत्व सूचित करता है।

४०–उत्तर रागों का स्वरूप अवरोह में और पूर्व रागों का स्वरूप आरोह में विशेष रूप से खुलकर दिखाई देता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग में वादी स्वर का महत्व

"प्रयोगे बहुलः स्वर वादी राजऽत्र गीयते" ।

शास्त्रों की उक्त व्याख्या के अनुसार वादी स्वर की स्थिति रागरूपी राज्य में राजा के समान मानी गई है। वादी स्वर का प्रयोग राग में अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक होता है। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की विशेषता निर्भर रहती है। इसी कारण वादी स्वर को जीव या अंशस्वर भी कहते हैं। वादी स्वर का प्रयोग राग में कुशल गायक भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। राग में वादी स्वर को बार-बार दिखाना, वादी स्वर से ही राग का आरम्भ करना, वादी स्वर पर ही राग समाप्त करना, तथा राग के प्रमुख भागों में वादी स्वर को बार-बार भिन्न-भिन्न स्वरों के साथ दिखना तथा कभी-कभी वादी स्वर को बड़ी देर तक लम्बा करके गाना, इत्यादि विविध ढङ्गों से वादी स्वर का प्रदर्शन रागों में किया जाता है। उदाहरणार्थ बिहाग में गांधार वादी स्वर है, तो उसका प्रयोग इस प्रकार देखने में आयेगा:—

ग, रेसा, ऩिसाग, मग, प, गमग, निप, गमग, ऩिसागमध पगमग, सा इत्यादि।

इसी प्रकार मारवा में वादी स्वर कोमल रे॒ का प्रयोग देखिये:—

ऩिरे॒ऽऽसा, ऩिरे॒ऽऽ, गरे॒ऽऽ, गमंगरे॒, मंगरे॒ऽऽसा, इत्यादि। यहाँ पर कोमल ऋषभ को लम्बा खींचकर उसका वादित्व कितनी सुन्दरता से प्रकट किया गया है।

वादी स्वर के प्रयोग से रागों के गाने का समय भी जानने में सुविधा मिलती है। जब किसी राग में सप्तक के पूर्वाङ्ग में से कोई स्वर वादी होता है, तो उसे पूर्वाङ्ग वादी राग कहते हैं और उसके गाने का समय प्रायः दिन-रात के पूर्वाङ्ग समय अर्थात् दिन के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक के बीच होता है, जैसे भीमपलासी, पीलू, पूर्वी, मारवा, यमन, भूपाली, बागेश्री इत्यादि रागों में पूर्वाङ्ग वादी स्वर होने के कारण ये राग उपर्युक्त समय (पूर्वाङ्ग समय) में ही गाये-बजाये जाते हैं।

इसी प्रकार किसी राग में जब कोई वादी स्वर सप्तक के उत्तराङ्ग में से होता है तो वह दिन-रात के उत्तराङ्ग भाग अर्थात् रात्रि के १२ बजे से दिन के १२ बजे तक के समय में से किसी समय का राग होता है, जैसे—भैरव, भैरवी, बिलावल, कालिंगड़ा, सोहनी, आसावरी इत्यादि। वादी स्वर की एक विशेषता यह और है कि किसी राग में केवल वादी स्वर बदल देने से ही राग भी बदल जाता है, चाहे उन रागों में लगने वाले स्वर लगभग एक से ही हों। जैसे भीमपलासी और धनाश्री यह दोनों राग काफी थाट से उत्पन्न हुए हैं और दोनों में ही ग॒ नि॒ कोमल प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इन रागों में केवल वादी स्वर के उलटफेर से ही राग परिवर्तित होजाता है। जब भीमपलासी गाया जायगा तो उसमें मध्यम स्वर अधिक दिखाया जायगा क्योंकि म स्वर भीमपलासी में वादी है और जब धनाश्री गाया जायगा तो पञ्चम स्वर अधिक दिखाया जायगा; क्योंकि धनाश्री में प वादी है। इससे स्पष्ट होजाता है कि केवल वादी स्वर को बदल देने से ही भीमपलासी से धनाश्री राग बदल गया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किसी राग का कोई स्वरसमुदाय देखकर उनमें वादी स्वर पहचानने से उस राग का नाम भी ध्यान में आजाता है। जैसे:—सा, ग मध, निध सांनिधप, गमध, प, धप, गमरे, सा। इसमें धैवत स्वर विशेष रूप से चमक कर अपना वादित्व प्रकट कर रहा है अतः यह हमीर राग है, क्योंकि हमीर में वादी धैवत माना जाता है।

वादी स्वर की सहायता से राग का विस्तार तथा राग की बढ़त भी दिखाई जाती है, जैसे मालकौंस में मध्यम स्वर वादी है, तो देखिये उसके स्वरविस्तार में म किस तरह समाया हुआ है:—

सा, ऩिसा, म, मग॒, मध॒, ऩिध॒, मग॒, ग॒मग॒, सा। साम, सामग॒म, ध॒पग॒म, ऩिध॒मग॒, म। इत्यादि।

राग में वादी स्वर का महत्व बताते हुए ऊपर जो वर्णन किया गया है उसके अनुसार निम्नलिखित ७ बातें विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिये :—

(१) वादी स्वर राग का प्रधान स्वर होता है और राग रूपी राज्य में उसका स्थान राजा के बराबर है।

(२) वादी स्वर को ही संगीत शास्त्रों में 'जीवस्वर' भी कहा है अर्थात् इसी स्वर में राग के प्राण होते हैं।

(३) वादी स्वर से राग गाने का समय जाना जा सकता है।

(४) केवल वादी स्वर को बदल देने से कोई-कोई राग भी बदल जाता है, चाहे अन्य स्वर दोनों रागों में एक से ही हों।

(५) वादी स्वर पर राग का सौन्दर्य निर्भर है।

(६) किसी स्वरसमुदाय में वादी स्वर को पहिचानकर यह बताया जा सकता है कि यह अमुक राग है।

(७) राग में लगने वाले अन्य सब स्वरों की अपेक्षा वादी स्वर अधिक प्रयोग में आता है।

राग में विवादी स्वर का प्रयोग

शास्त्र नियम के अनुसार रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग वर्जित है, किन्तु उसका अल्पत्व रखते हुए थोड़ा सा प्रयोग तान इत्यादि में करने की आज्ञा भी शास्त्रों में पाई जाती है, जैसा कि 'राग मंजरी' में कहा है:—

"विवादी तु सदा त्याज्यः क्वचित्तानक्रियात्मकः।"

इस प्रकार विवादी स्वर के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों की धारणा विचित्र रूप से पाई जाती है। इसी का उल्लेख करते हुए 'लक्ष्य सङ्गीत' में कहा है:—

विवादीस्वरव्याख्याने रत्नाकर प्रपंचितम्।
रहस्यं किंचिदप्यासीत् भिन्नं मर्मविदां मते॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इससे सिद्ध होता है कि विवादी स्वर की व्याख्या रत्नाकर आदि ग्रन्थों में रहस्यपूर्ण ढङ्ग से भिन्न-भिन्न रूप में पाई जाती है। कई ग्रन्थों में विवादी स्वर को राग का दुश्मन भी 'शत्रुतुल्याः विवादिनः' कहकर बताया गया है।

इतना सब होते हुए भी स्वर्गीय भातखण्डे जी का मत विवादी स्वर के बारे में यह था कि यदि कुशलता पूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाय और उससे राग की रंजकता बढ़ती हो तो 'मनाक्स्पर्श' के नाते यह कृत्य क्षम्य समझा जावेगा। उन्होंने 'अभिनव रागमंजरी' में लिखा है:—

सुप्रमाणयुतोरागे विवादी रक्तवर्धकः।
यथेषत्कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता॥

'सङ्गीत समयसार' ग्रन्थ में विवादी स्वर की व्याख्या 'प्रच्छादनीयो लोप्यो वा' इस प्रकार की गई है। प्रच्छादन का अर्थ है 'मनाक्स्पर्श' अर्थात् किंचित् मात्र विवादी स्वर का प्रयोग। इस प्रकार आजकल हम देखते भी हैं कि कुशल गायक अपने राग में विवादी स्वर का किंचित प्रयोग करके श्रोताओं से प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं और राग का स्वरूप भी नहीं बिगड़ने पाता, बल्कि उसमें कुछ और विचित्रता ही पैदा हो जाती है। किन्तु यह कार्य अत्यन्त सावधानी से ही करना चाहिये। इसके विरुद्ध यदि गायक चतुर न हुआ और बेढंगे तरीके से विवादी स्वर का प्रयोग कर बैठा तो राग-हानि तो होगी ही, साथ ही वह श्रोताओं से निन्दा भी प्राप्त करेगा।

इसलिए विवादी स्वर का जब कभी प्रयोग किया जाय तो क्षणिक कण के रूप में या जलद तानों में ही करना शोभा देगा। इस मत का समर्थन 'राग विबोध' में इस प्रकार मिलता है—"वर्ज्यस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो नरक्तिहरः" अर्थात् वर्जित स्वर द्रुत गीतों में सौंदर्य को नष्ट नहीं करता।

वर्तमान समय में अनेक रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है। जैसे हमीर, कामोद और गौड़सारङ्ग रागों में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते जब कण स्पर्श या द्रुत लय की मींड़ के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो उस समय बड़ा अच्छा लगता है। इसी प्रकार केदार, छायानट, रागों में तो विवादी स्वर (कोमल निषाद) का प्रचार इतना बढ़ गया है कि कभी-कभी श्रोतागण आश्चर्यचकित हो जाते हैं और भैरवी की तो कुछ पूछिये ही मत, उसमें तो विवादी स्वर का प्रयोग आजकल इतना बढ़ गया है कि यह राग ७ स्वरों की जगह १२ स्वरों का होगया है। अर्थात् कोमल स्वरों के अतिरिक्त रे ग मं ध नि इन तीव्र स्वरों का भी प्रयोग इसमें खूब खुलकर लोग करने लगे हैं। किंतु विवादी स्वरों का अधिकता के साथ प्रयोग करना रागों के साथ अन्याय करना है।

विवादी स्वर आखिर विवादी ही है, अतः उसका प्रयोग सीमित रूप में और कुशलता के साथ करना उचित है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग-रागिनी पद्धति

सङ्गीत के कुछ प्रचीन ग्रंथकारों ने रागों का वर्गीकरण राग-रागिनी-रागपुत्र राग-पुत्रवधू इस प्रकार किया है। इनमें चार मतों का उल्लेख मिलता है:—(१) शिवमत या सोमेश्वर मत, (२) भरतमत, (३) कल्लिनाथ मत, (४) हनुमत मत।

इन मतों के मानने वाले विद्वानों में मुख्य छः रागों के बारे में भी मतभेद था, अर्थात् कोई विद्वान् अपने छः राग एक प्रकार से मानते थे और कुछ विद्वान् अपने छः राग भिन्न प्रकार से मानते थे।

शिवमत (सोमेश्वर मत) के ६ राग ३६ रागिनी

राग	प्रत्येक की ६ रागिनी
१ श्री	१ मालवी, २ त्रिवेणी, ३ गौरी, ४ केदारी, ५ मधुमाधवी, ६ पहाड़िका
२ बसन्त	१ देशी, २ देवगिरी, ३ वराटी, ४ तोड़ी, ५ ललिता, ६ हिंदोली
३ पंचम	१ विभाषा, २ भूपाली, ३ कर्णाटी, ४ बड़हंसिका, ५ मालवी, ६ पटमंजरी
४ मेघ	१ मल्लारी, २ सोरठी, ३ सावेरी, ४ कौशिकी, ५ गांधारी, ६ हरश्रृङ्गारा
५ भैरव	१ भैरवी, २ गुर्जरी, ३ रामकिरी, ४ गुणकिरी, ५ बङ्गाली, ६ सैंधवी
६ नटनारायण	१ कामोदी, २ आभीरी, ३ नाटिका, ४ कल्याणी, ५ सारङ्गी, ६ नट्टहंबीरा

शिवमत को मानने वालों के लिये दामोदर पंडित कृत 'सङ्गीत दर्पण' ग्रन्थ महत्वपूर्ण माना जाता है। शिवमत व कल्लिनाथ मत में राग-संख्या ६ मानकर प्रत्येक की ६-६ रागिनी मानी हैं; किन्तु अन्य मतों में ६ राग मानकर उनकी ५-५ रागिनी मानी हैं। अर्थात् शिवमत व कल्लिनाथ मत ६ राग ३६ रागिनी के सिद्धांत को मानते हैं और भरतमत तथा हनुमान मत में ६ राग ३० रागिनी का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

भरत मत ६ राग ३० रागिनी

राग	प्रत्येक राग की ५-५ रागिनी
१ भैरव	१ मधुमाधवी, २ ललिता, ३ बरारी, ४ भैरवी, ५ बहुली
२ मालकौंस	१ गुजरी, २ विद्यावती, ३ तोडी, ४ खम्बावती, ५ कुकभ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

३	हिण्डोल	१ रामकली, २ मालवी, ३ आसावरी, ४ देवारी, ५ केकी
४	दीपक	१ केदारी, २ गौरा, ३ रुद्रावती, ४ कामोद, ५ गुजरी
५	श्री	१ सैंधवी, २ काफी, ३ ठुमरी, ४ विचित्रा, ५ सोहनी
६	मेघ	१ मल्लारी, २ सारङ्गा, ३ देशी, ४ रतिवल्लभा,५ कानरा

कल्लिनाथ मत के ६ राग ३६ रागिनी

१	श्री राग	१ गौरी, २ कोलाहल, ३ धवला,४ वरोराजी,५ मालकौंस, ६ देवगांधार
२	पंचम	१ त्रिवेणी,२ हस्तंतरेतहा, ३ अहीरी, ४ कोकभ, ५ वेरारी,६ आसावरी
३	भैरवी	१ भैरवी, २ गुजरी, ३ बिलावली, ४ बिहाग, ५ कर्नाट ६ कानड़ा
४	मेघ	१ बङ्गाली, २ मधुरा, ३ कामोद, ४ धनाश्री, ५ देवतीर्थी, ६ दिवाली
५	नटनारायण	१ त्रिबंकी, २ तिलंगी, ३ पूर्वी, ४ गान्धारी, ५ रामा, ६ सिंधमल्लारी
६	वसन्त	१ अंधाली, २ गुणकली, ३ पटमंजरी, ४ गौंडगिरी,५ धांकी,६ देवसाग

हनुमत मत के ६ राग ३० रागिनी

	राग	प्रत्येक राग की ५-५ रागिनी
१	भैरव	१ बङ्गाली, २ सैंधवी, ३ भैरवी, ४ बरारी, ५ मधमादी
२	मालकौंस	१ तोड़ी २ गुणकरी, ३ गौरी, ४ खम्बावती, ५ कुकभ
३	हिण्डोल	१ रामकली, २ देशाख, ३ ललिता, ४ बिलावली,५ पटमंजरी
४	दीपक	१ देशी, २ कामोदी, ३ केदारी, ४ कानड़ा, ५ नटिका
५	श्रीराग	१ मालश्री, २ आसावरी, ३ धनाश्री, ४ वसन्ती, ५ मारवा
६	मेघराग	१ तनक, २ मल्लारी, ३ गुजरी, ४ भोपाली, ५ देशकार

इनके अतिरिक्त प्राचीन, ग्रन्थकारों ने प्रत्येक रागिनी के पुत्र और पुत्रवधू मानकर परिवार विस्तृत किया है।

जिस समय उक्त मत प्रचलित थे,उस समय में उन राग-रागनियों का जो स्वरूप था वह आधुनिक व प्रचलित रागों से नहीं मिलता, अतः इनको आधुनिक थाट पद्धति के रागों

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में लागू नहीं किया जा सकता। फिर सङ्गीत के विद्यार्थियों को अपनी प्राचीन राग-रागिनी पद्धति के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है।

प्राचीन राग-रागिनी पद्धति का खण्डन करते हुए सर्व प्रथम (१८१३ ई० में) पटना के मुहम्मदरज़ा ने अपने ग्रन्थ 'नग़माते-आसफ़ी' में लिखा है कि प्राचीन राग-रागिनी-पुत्र-पुत्रवधू की कल्पना ग़लत और अवैज्ञानिक है, क्योंकि राग और उनकी रागिनियों के स्वरों में समता नहीं पाई जाती। अतः मुहम्मदरज़ा ने बिलावल थाट को शुद्ध थाट मानकर सर्व प्रथम अपना एक नवीन मत प्रचलित किया। इनका कहना है कि रागों और उनकी रागिनियों के स्वरों में कुछ सामंजस्य अवश्य होना चाहिये, अतः इन्होंने ६ राग और ३० रागिनी का अपना नवीन मत तत्कालीन संगीतज्ञों के सम्मुख रक्खा। उन्होंने हनुमत मत से मिलते-जुलते राग-रागिनियों के नामों पर नवीन स्वरों का निर्माण किया। रज़ा साहेब की यह पद्धति भी बहुत समय तक प्रचलित रही, किन्तु बाद में आधुनिक ग्रन्थकारों द्वारा यह पद्धति तथा प्राचीन राग-रागिनी की सभी पद्धतियाँ छोड़कर थाट-राग-पद्धति चालू हो गई।

प्राचीन ग्रन्थकारों ने संगीत की उत्पत्ति देवी-देवताओं से मानी है, अतः इन राग-रागिनियों को भी उन्होंने पुरुष राग और स्त्री रागिनी के रूप में देव-देवी-स्वरूप ही मानकर वर्गीकरण किया। उनके स्वरूप भी वर्णन किये गये, जिनके आधार पर राग-रागिनियों के चित्र भी बन गये जो आज तक पाये जाते हैं।

जिस युग में, जैसे रागों का प्रचार होता है, उसी के आधार पर उस युग के विद्वान् संगीत शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु संगीत परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में रागों के वर्णित स्वरूप या स्वर आज के प्रचलित राग-स्वरों से मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिये राग मालकौंस को लीजिये। प्राचीन शास्त्रों में यह मालवकौशिक मालकोश; मालकौंस आदि नामों से मिलता है। संगीतदर्पणकार ने मालवकौशिक के स्वर सा रे ग म प ध नि सां दिये हैं। हृदयप्रकाश में सा रे ग ध नि सां, सां नि ध म ग रे सा इस प्रकार बताया है; किन्तु आजकल जो मालकौंस राग प्रचलित है, वह रे-प वर्जित होकर सा ग॒ म ध॒ नि॒ सां, सां नि॒ ध॒ म ग॒ सा इस प्रकार है। ऐसे ही अन्य बहुत से रागों के नाम तो आजकल मिलते हैं; किन्तु उनकी स्वरावली बिलकुल दूसरे ही रूप में है। इन्हीं सब कारणों से प्राचीन राग-रागिनी पद्धति धीरे-धीरे पीछे छूटती रही और थाट-पद्धति से रागों की उत्पत्ति की गई। आजकल थाट-राग-पद्धति ही भारत में प्रचलित तथा मान्य हो रही है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गायकों के गुण-अवगुण

सङ्गीतं मोहिनीरूपमित्याहुः सत्यमेव तत् ।
योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनैः ।
गायकः श्रोतृमनसि नियतं जनयेत् फलम् ॥

—लक्ष्यसंगीतम्

योग्य रस, भाव तथा भाषाङ्ग की उचित रूप से साधना करते हुए जो गायक गाता है, उसका सङ्गीत मोहिनी रूप होकर श्रोताओं के मन को जीतने में अवश्य ही सफल होगा। इसीलिये हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने गायकों के गुणावगुणों का वर्णन बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है। उन नियमों पर ध्यान देकर जो सङ्गीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उसके गाने का रंग महफिल में शीघ्र ही जम जाता है। इसके विरुद्ध कुछ गायक ऐसे देखे जाते हैं जिन्होंने या तो "गायकों के गुणावगुणों" का शास्त्रों में मनन ही नहीं किया है, अथवा वे उन्हें जानते हुए भी अपनी आदत से मजबूर होकर उन पर ध्यान नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी भद्दी हरकतें (मुद्रा) महफिल में रंग जमाने के बजाय, हास्य का वातावरण पैदा कर देती हैं। क्योंकि श्रोताओं में सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। कोई गीत की कविता पर ध्यान देता है, तो कोई गायक के सुरीलेपन और लयकारी को देखता है, अथवा कोई गायक-गायिका के रूप, रङ्ग तथा उसके हाव-भाव प्रदर्शित करने के ढङ्ग में ही आनन्द लेता है। इस प्रकार संगीतकला के सभी अंगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रोता अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल रसास्वादन करते हैं। ऐसी हालत में यह निश्चय ही है कि गायक के गुण-अवगुण महफिल में रङ्ग बनाने या बिगाड़ने में कितने सहायक होते हैं। अतः प्रत्येक संगीत-विद्यार्थी को आरम्भ से ही ध्यान देकर गायकों के गुण अपनाने चाहिये और अवगुणों से बचना चाहिये। आरम्भ में जैसी आदत पड़ जाती है, वह आसानी से नहीं छूटती। यदि शुरू में ही हाथ-पैर फेंक-फेंककर या टेढ़ा मुँह करके, भद्दे ढंग से दांत दिखाकर गाने की आदत पड़ गई, तो उससे पीछा छुड़ाना मुशकिल हो जायगा और इसका परिणाम यह होगा कि संगीत-समाज में उसे सम्मान और सफलता कदापि नहीं मिलेगी। ऐसे गायकों की स्थिति बताते हुए लक्ष्यसंगीतकार ने ठीक ही लिखा है:—

भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतीयन्ते विसंगता।
व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाःकेवलम् कर्कशा मताः ॥
एतादृग्गायनान्नस्यात् परिणामो ह्यभीप्सितः।
ततो हास्यरसस्यैव केवलम् स्यात् समुद्भवः ॥ ७३ ॥

—लक्ष्यसंगीतम्

उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ यही है कि भद्दे ढंग से चिल्लाकर और ऊटपटांग हाव-भाव दिखाने से महफिल में केवल हास्यरस का ही वातावरण पैदा होता है।

U.P. State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

'सङ्गीत रत्नाकर' ग्रन्थ में गायकों के गुणों के बारे में इस प्रकार लिखा है:—

गायक के गुण—

हृद्यशब्दः सुशारीरो ग्रहमोक्षविचक्षणः ।
रागरागांगभाषांगक्रियांगोपांगकोविदः ॥
प्रबन्धगाननिष्णातो विविधालप्तितत्त्ववित् ।
सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गतिः ॥
आयत्तकण्ठस्तालज्ञः सावधानो जितश्रमः ।
शुद्धच्छायालगाभिज्ञः सर्वकाकुविशेषवित् ॥
अपारस्थायसंचारः सर्वदोषविवर्जितः ।
क्रियापरोऽजस्त्रलयः सुघटो धारणान्वितः ॥
स्फूर्जन्निर्जवनो हारिरहः कृद्भजनोद्धुरः ।
सुसंप्रदायो गीतज्ञैर्गीयते गायनाग्रणीः ॥

भावार्थ—

१ हृद्यशब्द—जिसका शब्द यानी आवाज मधुर व सुरीली हो ।

२ सुशारीर—जिसकी वाणी में अभ्यास के बिना राग-स्वरूप व्यक्त करने का धर्म (तासीर) हो ।

३ गृहमोक्षविचक्षणः—गृह और न्यास के नियमों को जानने वाला हो (गृह, न्यास की विवेचना इसी पुस्तक में दे दीगई है)।

४ रागरागांगादिकोविदः—राग-रागांग इत्यादि का जानकार हो (देशी संगीत में रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग ऐसे चार भेद कहे गये हैं, उनका विवेचन भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दे दिया है)।

५ प्रबन्धगाननिष्णातः—प्रबन्ध गायन में प्रवीण हो (प्रबन्ध एक प्रकार की प्राचीन गायन-शैली थी, किन्तु वर्तमान समय में प्रचलित नहीं है)।

६ विविधालप्तितत्ववित्—जो भिन्न-भिन्न आलप्तियों के तत्व का ज्ञाता हो। अर्थात् आलाप करने की गूढ़ बातें (राग का आविर्भाव, तिरोभाव दिखाने की कला) जानता हो।

७ सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गतिः—सब स्थानों की गमक जो सहज में ही ले सकता हो। अर्थात् मन्द्र, मध्य और तार, इन तीनों स्थानों में गमकों का प्रयोग कर सके।

८ आयत्तकण्ठः—जिसका कण्ठ (गला) स्वाधीन हो, यानी खुली हुई आवाज हो।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

९ तालज्ञः—ताल का ज्ञान रखने वाला हो।

१० सावधानः—एकाग्र चित्त होकर सावधानी पूर्वक जो गावे।

११ जितश्रमः—श्रम को जीतने वाला हो, अर्थात् गाते समय यह अनुभव न हो कि गाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है।

१२ शुद्धच्छायालगाभिज्ञः—शुद्ध, छायालग और संकीर्ण इन रागभेदों को जानने वाला हो (इन राग भेदों की परिभाषा भी इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)।

१३ सर्वकाकुविशेषवितः—सङ्गीत शास्त्रों में वर्णित षटविधि यानी छः प्रकार के काकुओं का प्रयोग करने की जानकारी रखता हो।*

१४ अपारस्थायसंचार—गाते समय असंख्य स्थाय अर्थात् रागों के भाग या हिस्से तैयार करके सुनाने का ज्ञान रखता हो।

१५ सर्वदोषविवर्जितः—सब प्रकार के दोषों से रहित हो अर्थात् जिसमें कोई दोष न हो।

१६ क्रियापरः—जो अभ्यास में दक्ष हो अर्थात् रियाज़ी हो।

१७ अजस्रलयः—जो अत्यन्त लयदार हो।

१८ सुघटः—जो सुघड़ (सुन्दर) हो, अर्थात् जिसे देखकर श्रोता घृणा न करें।

१९ धारणान्वितः—धारणावान हो।

२० स्फूर्जन्निर्जवनः—"निर्जवन" यह स्थाय का एक विशेष भाग है, इस भाग को गाते समय मेघ-गर्जना के समान गम्भीर आवाज़ निकालने वाला हो।

२१ हारिरहः कृद्‌भजनोद्‌धुरः—अपने गायन से श्रोताओं के मन को मोहित करने वाला हो।

२२ सुसम्प्रदायः—जिसकी गुरु-परम्परा उच्च श्रेणी की हो, यानी ऊँचे सम्प्रदाय का हो।

गायक के अवगुण

संदष्टोद्‌घृष्टसूत्कारिभीतशंकितकम्पिताः ।
कराली विकलः काकी वितालकरभोद्भडाः ॥
झोंबकस्तुम्बकी वक्री प्रसारी विनिमीलकः ।
विरसापस्वराव्यक्तस्थानभ्रष्टाव्यवस्थिताः ॥
मिश्रकोऽनवधानश्च तथाऽन्यः सानुनासिकः ।
पंचविंशतिरित्येते गायना निंदिता मताः ॥

—संगीतरत्नाकर

* सङ्गीत रत्नाकर में ६ प्रकार के काकुओं के नाम इस प्रकार दिये हैं—(१) स्वरकाकु (२) रागकाकु (३) देशकाकु (४) क्षेत्रकाकु (५) अन्यरागकाकु (६) यन्त्रकाकु।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भावार्थ—

१ संदष्ट—दांत पीसकर गाने वाला।

२ उद्घृष्ट—निरस, ज़ोर से चिल्लाने वाला।

३ सूत्कारी—गाते समय सूत्कार करने वाला।

४ भीत—भयभीत होकर गाने वाला। यानी जो डरते-डरते गावे।

५ शंकित—आत्मविश्वास रहित, घबराकर जल्दबाजी से गाने वाला।

६ कम्पित—काँपती हुई आवाज़ से गाने वाला।

७ कराली—भयङ्कर मुँह फाड़कर गाने वाला।

८ विकल—जिसके गाने में श्रुतियाँ कम या अधिक लग जाती हैं, अर्थात् जिसके स्वर अपने उचित स्थान पर नहीं लगते।

९ काकी—कौए के समान कर्कश आवाज़ वाला।

१० विताल—बेताला गाने वाला।

११ करभ—मुंडी ऊँची करके गाने वाला।

१२ उद्बड—भेड़ की तरह मुँह फाड़कर गाने वाला।

१३ झोंबक—गले और मुँह की नसें फुलाकर गाने वाला।

१४ तुम्बकी—तुम्बे के समान मुँह फुलाकर गाने वाला।

१५ वक्री—मुंडी टेढ़ी करने वाला।

१६ प्रसारी—हाथ-पैर फेंक-फेंक कर या हाथ-पैर पटक कर गाने वाला।

१७ निमीलिक—आँख बन्द करके या आंखें मींचकर गाने वाला।

१८ विरस—जिसके गाने में रस न हो अर्थात् निरस गाने वाला।

१९ अपस्वर—जिसके गाने में वर्जित स्वर भी लग जाये।

२० अव्यक्त—गाते समय जिसका शब्दोच्चारण ठीक न हो।

२१ स्थान-भ्रष्ट—जिसकी आवाज़ योग्यस्थान पर नहीं पहुंचती।

२२ अव्यवस्थित—बेढंगे तरीके से यानी अव्यवस्थित रीति से गाने वाला।

२३ मिश्रक—राग मिश्र करके (रागों को मिलाकर) गाने वाला।

२४ अनवधान—लापरवाही से गाने वाला।

२५ सानुनासिक—नाक के स्वर से गाने वाला, अर्थात् जो गाते समय नाक से आवाज़ निकाले।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इन समस्त दोषों से अच्छे गायक को बचना चाहिए, ऐसा शास्त्रविधान है। यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि इन २५ दोषों में कुछ दोष ऐसे भी तो हैं, जो अच्छे-अच्छे गायकों में पाये जाते हैं, जैसे १६ और २३ अर्थात् बहुत से बड़े-बड़े गायक अपने गायन में वर्जित स्वर प्रयोग करते देखे जाते हैं और अनेक गायक रागों को मिश्र करके यानी मिलाकर गाते हैं।

इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि कुशल गायक जब कभी वर्जित स्वर का प्रयोग राग में करते हैं, वहाँ वे विवादी स्वर के नाते ऐसी कुशलता से उसे लगाते हैं कि राग का सौन्दर्य बिगड़ने के बजाय और खिल उठता है, अतः उपरोक्त नियम का अपवाद समझते हुए उनका वह कृत्य "गायक अवगुण" श्रेणी में नहीं आता। 'समरथ को नहिं दोष गुसांई' की उक्ति के अनुसार वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते, क्योंकि उनको यह सामर्थ्य प्राप्त है कि वे राग में विकृत स्वर लगाकर भी उसके द्वारा एक विशेषता दिखादें। इसके विरुद्ध साधारण गायक यदि ऐसे कृत्य करने लगेगा तो वह राग-रूप को ही बिगाड़ बैठेगा, इसी प्रकार रागों में मिश्रण करने के लिये भी कुशल और समर्थ सङ्गीतज्ञ दोषमुक्त किये जा सकते हैं, क्योंकि वे जब किसी एक राग में दूसरे राग के स्वर दिखाते हैं या मिलाते हैं तो उस मुख्य राग का रूप नहीं बिगड़ने देते, प्रत्युत वहां पर अन्य राग की थोड़ी सी छाया लाकर 'तिरोभाव' दिखाते हुए मुख्य राग को कुछ देर के लिये छिपाकर फिर आविर्भाव द्वारा उसे प्रकट करके अपना कौशल दिखाते हैं। इसी कार्य को एक साधारण गायक करने लगे तो वह कठिनाई में पड़ जायगा और मुख्य राग का रूप भी नष्ट कर बैठेगा। इसीलिये शास्त्रकारों ने इसे भी दोष माना है। अतः शास्त्रों में वर्णित उपर्युक्त गण-अवगुणों पर सङ्गीत-विद्यार्थियों को पूर्ण ध्यान देना चाहिये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नायक, गायक आदि के भेद

नायक—जो प्राचीन तथा नवीन दोनों प्रकार के सङ्गीत का पूर्ण ज्ञाता है और गुरुपरम्परा से मिली हुई शिक्षा के अनुसार ताल और स्वर में बंधी हुई चीजें शुद्ध रूप से गाता-बजाता है, उसे नायक कहते हैं और उसके द्वारा प्रदर्शित की हुई कला को नायकी कहते हैं।

गायक—गुरु-परम्परा से बंधी हुई चीज़ों को या नायक द्वारा प्रदर्शित सङ्गीत में अपनी बुद्धि से अलंकार एवं तानों का प्रयोग करके उसमें सौन्दर्य एवं विचित्रता पैदा करके गाता है, उसे 'गायक' कहते हैं और उसके द्वारा जो कला प्रदर्शित होती है उसे 'गायकी' कहते हैं।

कलावन्त—कलावन्त का मुख्य गुण है क्रियासिद्ध। जिसके नित्यप्रति के अभ्यास में गला और हाथ खूब तैयार हों, जो ध्रुपद-धमार का पूर्ण ज्ञाता हो और कुशलतापूर्वक गाकर श्रोताओं का मनोरंजन कर सके, उसे 'कलावन्त' कहते हैं।

गन्धर्व—जो मार्ग-सङ्गीत को गा-बजा सकते हों तथा राग-रागनियों की भी पूर्ण जानकारी रखते हों, उन्हें 'गन्धर्व' कहते हैं।

पण्डित—जिन्हें गायन-शास्त्र का तो पूर्ण ज्ञान हो, किन्तु गायन-कला अर्थात् क्रियात्मक सङ्गीत का साधारण ज्ञान हो, उन्हें सङ्गीत कला के 'पण्डित' कहते हैं।

सङ्गीत शास्त्रकार—जिसे सङ्गीत की प्राचीन और नवीन पद्धति की जानकारी हो, सङ्गीत का पूर्व इतिहास, प्राचीन और अर्वाचीन शुद्ध सप्तकों का ज्ञान हो, प्राचीन और आज की गायन पद्धति का अन्तर प्रकट करने की क्षमता रखता हो। गीत, प्रबन्ध, वाद्यों के प्रकार, ताल, नृत्य का इतिहास अपनी लेखनी द्वारा प्रकट कर सके एवं सङ्गीत का वर्तमान स्वरूप और भविष्य में उसकी उन्नति पर अपने योग्य विचार प्रकट करके सङ्गीत कला का आदर्श उपस्थित कर सके और प्राचीन तथा आधुनिक सङ्गीत पद्धति पर नवीन ग्रन्थों का निर्माण कर सके, उसे 'सङ्गीत शास्त्रकार' कहते हैं।

सङ्गीत शिक्षक—जो शान्तवृत्ति से विद्यार्थी को सङ्गीत-शिक्षा दे सके एवं उसकी कठिनाइयों को जानकर, उसकी आवाज़ का धर्म, ग्रहणशक्ति तथा रुचि पर ध्यान देकर सहज और सरल मार्ग से समझाने-पढ़ाने की क्षमता रखता हो, उसे सङ्गीत-शिक्षक कहते हैं। सङ्गीत-शिक्षक गवैयों की महफ़िल में बैठकर अपना रङ्ग चाहे न जमा सके, किन्तु वह अच्छे सङ्गीत-विद्यार्थी तैयार करने का गुण रखने वाला हो।

कव्वाल—जो गायक गज़ल, दादरा, कव्वाली इत्यादि गाते हैं, उन्हें 'कव्वाल' कहा जाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अताई गायक—जो व्यक्ति किसी एक उस्ताद को अपना उस्ताद या गुरू न मानकर शुद्ध रूप से नियमित सङ्गीत-शिक्षा नहीं लेते, बल्कि इधर-उधर जहाँ से भी प्राप्त हुआ देख, सुनकर गाने-बजाने लगते हैं, और शास्त्र का ज्ञान नहीं रखते उन्हें अताई गवैया कहा जाता है।

ढाढ़ी गायक—उनको कहते हैं जिन्हें विशुद्ध गायन के साथ शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान रहता है।

कत्थक—नृत्य संगीत की शिक्षा देने वाले व्यवसायी, जिनके यहां कई पीढ़ियों से यही कार्य होता आया है, उन्हें कत्थक या ढाढ़ी कहते हैं।

उत्तम वाग्गेयकार

वाक् और गेय से मिलकर वाग्गेय शब्द बना है। वाक् यानी पद्य-रचना और गेय का अर्थ है स्वर-रचना, इसी को मातु और धातु भी कहते हैं। अर्थात् जो स्वर-रचना और पद्य-रचना का ज्ञाता हो, ऐसे संगीत-विद्वान् को प्राचीनकाल में वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी। पाश्चात्य विद्वान् उसे कम्पोज़र (रचयिता) कहते हैं। वाग्गेयकार को साहित्य और संगीत दोनों का उत्तम ज्ञान होना अति आवश्यक है, तभी वह पद्यरचना और स्वर-रचना कर सकता है। 'संगीत रत्नाकर' में वाग्गेयकार के गुणों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

वामातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिदीयते ।
वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥ १ ॥
शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता ।
छन्दः प्रभेदवेदित्वमलंकारेषु कौशलम् ॥ २ ॥
रसभावपरिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी ।
अशेषभाषाविज्ञानं कलाशास्त्रेषु कौशलम् ॥ ३ ॥
तूर्यत्रितयचातुर्यं हृद्यशारीरशालिता ।
लयतालकलाज्ञानं विवेकोऽनेककाकुषु ॥ ४ ॥
प्रभूतप्रतिभोद्भेदभाक्त्वं सुभगगेयता ।
देशीरागेष्वभिज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजये ॥ ५ ॥
रागद्वेषपरित्यागः सार्द्रत्वमुचितज्ञता ।
अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्धो नूत्नधातुविनिर्मितिः ॥ ६ ॥
परचित्तपरिज्ञानं प्रबन्धेषुप्रगल्भता ।
द्रुतगीतविनिर्माणं पदांतरविदग्धता ॥ ७ ॥
त्रिस्थानगमकप्रौढिर्विविधालप्तिनैपुणम् ।
अवधानं गुणैरेभिर्वरो वाग्गेयकारकः ॥ ८ ॥

State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पीछे के ८ श्लोकों का भावार्थ उनके नम्बरों के क्रम से नीचे दिया जाता है:—

१—वाग् यानी मातु और गेय यानी धातु का जो कर्त्ता है अर्थात् पद्यरचना और स्वर-रचना का जो ज्ञाता है, वह वाग्गेयकार है।

२—जिसे व्याकरण-शास्त्र ज्ञान, अमरकोष आदि ग्रंथों का ज्ञान और सब प्रकार के छन्दों का ज्ञान है तथा जो साहित्य शास्त्र में बताये हुए उपमादिक अलंकारों का ज्ञाता है।

३—उसी शास्त्र में वर्णित शृंगार आदि रसों और विभावादिक भावों का जिसे उत्तम ज्ञान है, जो भिन्न-भिन्न देशों के रीति-रिवाज और उनकी भाषाओं की जानकारी रखते हुए सङ्गीतादि शास्त्रों में प्रवीण है।

४—गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों में जो चतुर है और जिसे हृद्य अर्थात् सुन्दर शारीर प्राप्त हुआ है (शारीर एक पारिभाषिक शब्द है, अतः हृद्य शारीर का अर्थ यह है कि जो व्यक्ति बिना कठोर परिश्रम के या अभ्यास न करते हुए भी रागों की अभिव्यक्ति यानी रागप्रदर्शन में समर्थ होता है उसके लिए कहा जाता है कि उसे हृद्य (मनोहर) शारीर प्राप्त है) जो लय, ताल और कलाओं का ज्ञानी है और जिसे भिन्न-भिन्न स्वर-काकुओं यानी स्वर भेदों का ज्ञान है। (काकु भी एक पारिभाषिक शब्द है, इसका विशेष विवरण इस पुस्तक में आगे पृष्ठ २१६ पर देखिये)।

५—जो प्रतिभावान बुद्धि रखता है (जिसे नई-नई कल्पना सूझती हैं) जिसे सुखदायक गायन करने की शक्ति प्राप्त है। देशी रागों का जिसे ज्ञान है और जो सभा में अपनी वाक्पटुता (व्याख्यान चातुरी) के बल से विजय प्राप्त कर सकता है।

६—जिसने राग-द्वेष का परित्याग करके सरसता धारण की है, उचित अनुचित का जिसे ज्ञान है यानी किस स्थान पर कौनसी चीज उचित है, इसे जानता है। जिसमें स्वतन्त्र रचना करने की शक्ति निहित है और जो नई-नई स्वर-रचना करने का ज्ञान रखता है।

७—दूसरों के मन का भाव जानने की शक्ति रखता है। जिसे प्रबन्धों का उच्च ज्ञान प्राप्त है। जो शीघ्रता से कविता रचने की सामर्थ्य रखता है तथा जिसमें भिन्न-भिन्न गीतों की छायाओं का अनुकरण करने की शक्ति है।

८—तीनों स्थानों (मन्द्र, मध्य, तार) में गमक लेने की जो शक्ति रखता है, राग आलप्ति तथा रूपकालप्ति में जो निपुण है और जिसमें चित्त की एकाग्रता का गुण है। ऐसे सब गुण जिसमें विद्यमान हैं, वही उत्तम वाग्गेयकार बताया गया है।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मध्यम और अधम वाग्गेयकार

मध्यम और अधम वाग्गेयकार के लिये इस प्रकार शास्त्रों में लिखा है:—

विद्धानोऽधिकं धातुं मातुमंदस्तु मध्यमः ।
धातुमातुविद्प्रौढः प्रबंधेष्वपि मध्यमः ॥
रम्यमातुविनिर्माताऽप्यधमो मंदधातुकृत ।

भावार्थ—जो स्वर-रचना अर्थात् धातु में प्रवीण है और मातु (पद्यरचना) में मन्दबुद्धि है, वह मध्यम श्रेणी का वाग्गेयकार है एवं जो स्वर-रचना यानी स्वरलिपि करने का ज्ञान रखता हो और पद्य-रचना (मातु) का भी अच्छा ज्ञाता हो, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रबन्ध-गायन में कुशल न हो, वह भी मध्यम श्रेणी में ही आता है। **अधम वाग्गेयकार** वह है, जिसे केवल शब्द-ज्ञान तो हो, किन्तु पद्य-रचना (कविता) तथा स्वर-रचना (स्वरलिपि) की जानकारी नहीं रखता हो।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गीत, गांधर्व, गान तथा मार्ग-देशी संगीत

रंजकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते ।
गान्धर्वं गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ॥

—सङ्गीत रत्नाकर

गीत—स्वरों का वह समुदाय जिससे मन का रञ्जन हो, उसे गीत कहते हैं। गीत के २ भेद हैं—(१) गांधर्व (२) गान।

(१) गांधर्व—जो सङ्गीत स्वर्ग लोक में गन्धर्वों द्वारा गाया जाता था और जिसका उद्देश्य मोक्षप्राप्ति है, उस वेदों के समान अपौरुषेय और अनादि सङ्गीत को ही "गांधर्व" कहा है।

(२) गान—जो सङ्गीत वाग्गेयकारों ने अर्थात् सङ्गीत के पण्डितों ने अपने बुद्धि कौशल से उत्पन्न किया तथा उसे लक्षणबद्ध करके देशी रागों में उसका उपयोग कर लोकरंजन के निमित्त उसे प्रचलित किया, वह "गान" है।

'सङ्गीत रत्नाकर' के टीकाकार कल्लिनाथ के मतानुसार गांधर्व और गान को ही क्रमशः मार्ग और देशी माना जाय तो कोई हानि नहीं।

मार्ग सङ्गीत—मार्ग संगीत वर्तमान काल में बिलकुल प्रचलित नहीं है।

मार्गो देशीतितद्द्वेधा तत्रमार्गः स उच्यते ।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥

इस श्लोक के अनुसार मार्ग संगीत वह है, जिसका प्रयोग महादेव के बाद भरत ने किया। यह अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक धार्मिक नियमों से जकड़ा हुआ था, अतः आगे इसका प्रचार ही बन्द होगया।

देशी सङ्गीत—देश के विभिन्न भागों में छोटे-बड़े सभी लोग जिसे प्रेमपूर्वक गा-बजाकर अपना मन प्रसन्न करते हैं वह देशी संगीत है। शार्ङ्गदेव के समय में भी सब जगह देशी संगीत ही प्रचलित था, किन्तु वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत से वह बिलकुल भिन्न था। इसका कारण यही है कि देशी संगीत सर्वदा परिवर्तनशील रहा है, लोकरुचि के अनुसार उसका स्वरूप भी बदलता रहता है। देशी संगीत में नियमों का विशेष बन्धन नहीं, इसलिये यह सुलभ और सरल है तथा लोक-रुचि पर अवलम्बित रहता है।

देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

—संगीत रत्नाकर

अर्थात्—भिन्न भिन्न देशों के जन (मनुष्य) अपनी-अपनी रुचि के अनुसार गा-बजाकर और नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं, या हृदय का रंजन करते हैं, वह देशी संगीत है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तत्तद्देशस्थया रीत्या यत्स्यात् लोकानुरंजनम् ।
देशेदेशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

—संगीत दर्पण

भावार्थ—जो संगीत देश के भिन्न-भिन्न भागों में वहाँ के रीति-रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करता है, वह देशी संगीत कहलाता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में जैसा संगीत प्रचलित है, वह सब देशी संगीत ही है । अतः ग्वालियर का ध्रुपद गायन, मथुरा का होरी गायन, मिर्जापुर का कजरी गायन, बनारस और लखनऊ का ठुमरी गायन, मणीपुर का मणीपुरी नृत्य, लखनऊ का कत्थक नृत्य, ब्रज का गोपी नृत्य, गुजरात का गर्वानृत्य इत्यादि सब देशी संगीत के अन्तर्गत ही आजाते हैं ।

ग्रह, अन्श और न्यास

गीतादौ स्थापितो यस्तु स ग्रहस्वर उच्यते ।
न्यासस्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः ॥
बहुलत्वं प्रयोगेप सचांशस्वर उच्यते ॥१६३॥

अर्थात्—गीत के आरम्भ में ही जो स्वर स्थापित किया जाता है उसे ग्रह स्वर कहते हैं । गीत की समाप्ति जिस स्वर पर होती है उसे न्यास स्वर कहते हैं और प्रयोग में जो स्वर बहुलत्व दिखाता है, अर्थात् बारम्बार आता है उसे अन्श कहते हैं । इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में तीन स्वर-भेद मिलते हैं । प्राचीनकाल में ग्रह-अन्श-न्यास स्वरों का ध्यान रखते हुए प्रत्येक राग एक नियमित स्वर से आरम्भ किया जाता था और एक नियमित स्वर पर उसकी समाप्ति होती थी, इसी प्रकार बारम्बार या अधिक प्रयोग होने वाले स्वर को महत्व देकर उसे अन्श स्वर मानते थे, जिस प्रकार कि हम आजकल वादी स्वर मानते हैं ।

सम्भव है, प्राचीन समय में उपरोक्त स्वर-नियमों का पालन उत्तम रीति से किया जाता हो, किन्तु संगीत परिवर्तनशील है अतः आगे चलकर गायक-वादकों ने ग्रह-न्यास स्वरों का नियम नहीं माना, अर्थात् अमुक राग अमुक स्वर से ही आरम्भ होना चाहिए या अमुक स्वर पर ही उसे समाप्त करना चाहिए, इस बन्धन को तोड़कर वे चाहे जिस राग या गीत को भिन्न-भिन्न स्वरों से आरम्भ करके गाने लगे और भिन्न-भिन्न स्वरों पर समाप्त करने लगे । उन्होंने केवल अन्श स्वर का सिद्धान्त "वादी स्वर" के रूप में माना जो आजतक प्रचलित है । क्योंकि वादी स्वर से राग की पहिचान होजाती है कि यह पूर्वांग वादी है या उत्तरांग वादी ! एवं वादी स्वर के द्वारा राग गाने का समय पहिचानने में भी सहायता मिलती है । अतः प्राचीन समय के स्वर-नियमों में से ग्रह और न्यास छोड़कर "अन्श" स्वर के नियम का पालन करना आवश्यक है ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गायन-शैलियाँ

ध्रुवपद (ध्रुपद)

कहा जाता है कि ध्रुपद-गायन का आविष्कार सबसे पहिले पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा हुआ था। उन्होंने स्वयं भी कुछ ध्रुपदों की रचना की थी। प्राचीनकाल में ध्रुपद में संस्कृत-श्लोकों को गाकर हमारे ऋषि-मुनि भगवान की आराधना करते थे।

वर्तमान समय में भी ध्रुपद एक गम्भीर और जोरदार गाना माना जाता है, ध्रुपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं बृजभाषा में मिलते हैं। यह मर्दानी आवाज़ का गायन है। इसमें वीर, श्रृंगार और शांतरस प्रधान हैं। 'अनूप सङ्गीतरत्नाकर' में ध्रुपद की व्याख्या इस प्रकार की है:—

गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचतुर्वाक्यसम्पन्नं नरनारीकथाश्रयम् ।।
श्रृंगाररसभावाद्यं रागालापदात्मकम् ।
पादांतानुप्रासयुक्तं पादान्तयुगकं च वा ।।
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगांतरं ध्रुवपदं स्मृतम् ।।

—अनूप संगीतरत्नाकर

ध्रुपद में स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग ऐसे चार भाग होते हैं। ध्रुपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा, तीव्रा, ब्रह्मताल, रुद्रताल इत्यादि तालों में गाये जाते हैं।

ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं होता, किन्तु उसमें दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग करने की छूट है।

ध्रुपद की चार वाणी

प्राचीनकाल में ध्रुपद-गायकों को कलावन्त कहते थे। धीरे-धीरे ध्रुपद-गायकों के भेद उनकी चार वाणियों के अनुसार किये जाने लगे, उन चार वाणियों के नाम इस प्रकार हैं:—(१) गोबरहरी वाणी अथवा शुद्ध वाणी, (२) खण्डार वाणी, (३) डागुर-वाणी, (४) नोहार वाणी।

'मादनुल मौसीक़ी' नामक ग्रंथ के प्रणेता हकीम मुहम्मद करम इमाम ने उक्त चारों वाणियों के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"अकबर बादशाह के दरबार में उस समय चार महागुणी रहते थे—१-तानसेन, २-ब्रजचन्द ब्राह्मण (डागुर गांव के निवासी), ३-राजा समोखनसिंह वीणाकार (खंडार नामक स्थान के निवासी), ४-श्रीचन्द राजपूत (नोहार के निवासी) अकबर के समय में इन चारों के द्वारा चार वाणी प्रसिद्ध थीं। तानसेन गौड़ ब्राह्मण होने से उनकी वाणी का नाम गौड़ीय अथवा गोबरहरी पड़ गया। प्रसिद्ध वीणाकार समोखनसिंह की शादी तानसेन की कन्या के साथ होने के कारण उनका नाम नौबादखां निश्चित हुआ। नौबादखां का निवास स्थान खण्डार था, इसलिये इनकी वाणी का नाम खण्डार वाणी हुआ। ब्रजचन्द के निवास स्थान के नामानुसार उनकी वाणी का नाम हुआ डागुर वाणी। राजपूत श्रीचन्द नोहार के निवासी थे, इसीलिये इनकी वाणी का नाम नोहार वाणी प्रसिद्ध हुआ।"

चार वाणियों के प्रधान लक्षण—

१—गोबरहरी वाणी:—इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है, यह शान्त रसोद्दीपक है और इसकी गति धीर है।

२—खण्डार वाणी:—वैचित्र्य और ऐश्वर्य प्रकाश खण्डार वाणी की विशेषता हैं। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहरी वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरङ्ग अधिक होते हैं, किन्तु इसकी गति अति विलम्बित नहीं होती।

३—डागुर वाणी:—इसका प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है, इसमें स्वरों का टेढ़ा और विचित्र काम दिखाया जाता है।

४—नोहार वाणी:—'नोहार' रीति से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो-तीन स्वरों का लंघन करके परवर्त्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है। नोहार वाणी विशेष रूप से रस की सृष्टि नहीं करती, अपितु यह आश्चर्य रसोद्दीपक है।

हम जिसे केवल वाणी या शुद्ध वाणी कहते हैं, वह गोबरहरी और डागुर वाणी का ही नामरूपान्तर है। शुद्ध वाणी ही सङ्गीत की आत्मा है और इसी से सङ्गीत की प्रतिष्ठा भी है। सङ्गीत के प्राणस्वरूप जो रस वस्तु है, उसका अविकल झरना शुद्ध वाणी में ही मिलेगा। इसके आनन्द का अनुभव वही कर सकता है, जिसने शुद्ध वाणी की रसधारा का रसास्वादन किया है, इसलिये सेनी लोग (तानसेन वंश के गायक-वादक) सर्वदा शुद्ध वाणी के सङ्गीत पर विशेष जोर देते हैं।

सङ्गीत की उक्त चार वाणियों में गोबरहरी (गौड़ीय वाणी) को गुणीजनों ने राजा का पद दिया है। डागुर वाणी को मन्त्री का पद, खण्डार को सेनापति का स्थान और नोहार को सेवक का स्थान दिया है। अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक वाणी की एक विशिष्ट महत्ता है। गोबरहरी वाणी का प्रत्येक स्वर अपने सुनिर्दिष्ट रूप में प्रगट होता है। स्पष्टता इस वाणी का प्रधान लक्षण है। डागुरवाणी में एक स्वर दूसरे स्वर के साथ जिस विचित्रता से मिलता है, उस कारण उसमें एक विचित्र और रहस्यमय भाव उत्पन्न हो जाता है। स्वर को स्पष्ट रूप में व्यक्त न करके श्रोता की कल्पना के अनुसार उसे प्रगट करना पड़ता है। लालित्य और गम्भीरता इन दोनों वाणियों में पर्याप्त रूप से

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मिलते हैं। खंडार वाणी को संस्कृत में "भिन्नागीति कहा गया है*। इस वाणी में स्वर के भिन्न-भिन्न टुकड़े करके गाते हैं। सम्भवतः इसीलिये संस्कृत में इसको 'भिन्ना' कहा जाता है। स्वर के खंड-खंड होने के कारण हिन्दी में इसको खंडार वाणी कहा गया है। दोनों शब्दों का मूल तात्पर्य एक ही है। स्वर को सरल भाव से प्रगट न करके कुटिल भाव में खंड-खंड करके प्रगट करना ही खंडार वाणी की विशेषता है। इस कृत्य में स्वर की मधुरता का नाश नहीं होता, अपितु सूक्ष्म गमक की सहायता से स्वर को आन्दोलित करने पर उसमें मधुरता की और भी वृद्धि होती है, इसलिये उत्तम गुणी गमक की सहायता से खंडार वाणी गाते थे। यन्त्र-संगीत में वीणा द्वारा खण्डार वाणी का सैनी लोग विविध प्रकार से मध्यलय, गमक व जोड़ में उपयोग करते हैं। शुद्ध वाणी की प्रधानता रबाब द्वारा दिखाई जाती थी, क्योंकि रबाब का स्वर सरल होता है। इसमें विलम्बित, मध्य और द्रुत ये त्रिविध आलाप बखूबी दिखाये जा सकते हैं।

वाणी का रहस्य जानने वाले गायक आजकल शायद ही कोई हों। ध्रुपद-गायन को प्रचलित हुए ५०० वर्ष से अधिक हो गये, किन्तु इधर लगभग १५० वर्ष से ध्रुपद-गायकी का प्रचार कम हो गया है और ख्याल गायन का प्रचार अधिक होगया है, इतना होते हुए भी संगीतकला-मर्मज्ञों में ध्रुपद गायकी को अब भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है।

ख्याल

फ़ारसी भाषा में ख्याल का अर्थ है, विचार या कल्पना। राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विविध आलाप-तानों का विस्तार करते हुए,एकताल त्रिताल, झूमरा आड़ा चौताल इत्यादि तालों में गाते हैं। ख्यालों के गीतों में शृंगार रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। ख्याल की गायकी में जलदतान, गिटकरी इत्यादि का प्रयोग शोभा देता है और स्वरवैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिये ख्यालों में तरह-तरह की तानें ली जाती हैं। ख्याल गायन में ध्रुपद जैसी गम्भीरता और भक्तिरस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

ख्याल दो प्रकार के होते हैं। (१) जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं उन्हें बहुधा बड़े ख्याल कहते हैं और (२) जो द्रुत लय में गाये जाते हैं उन्हें छोटे ख्याल कहते हैं।

---

* गीतयः पंच शुद्धाद्या भिन्ना गौड़ी च वेसरा।
साधारणीति शुद्धा स्यादवक्रललितैः स्वरैः॥
भिन्ना सूक्ष्मैः स्वरैर्वक्रैर्मधुरैर्गमकैर्युता।
गाढैस्त्रिस्थानगमकैरुहाटीललितैः स्वरैः॥
अखंडितस्थितिः स्थानत्रये गौड़ी मता सताम्।
उहाटी कंपितैर्मन्द्रैर्द्रुततरैः स्वरैः॥
हकारोकारयोगेन ह्रुन्यस्ते चिबुके भवेत्।
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तितः॥
वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः॥

—'संगीतरत्नाकर'

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गायक जब ख्याल गाना आरम्भ करता है, तो पहले विलम्बित लय में बड़ा ख्याल गाता है, जिसे प्रायः विलम्बित एकताल, तीनताल, झूमरा, आड़ा चौताला इत्यादि में गाता है, फिर इसके बाद ही छोटा ख्याल मध्य या द्रुतलय में आरम्भ कर देता है, उसे त्रिताल या द्रुत एकताल में गाता है। छोटे-बड़े ख्याल जब गायक एक स्थान पर एक समय में गाता है तो ये दोनों ही प्रायः किसी एक ही राग में होते हैं, किन्तु बोल या कविता बड़े-छोटे ख्यालों की अलग-अलग होती है। बड़े ख्यालों का प्रचार १५ वीं शताब्दी में जौनपुर के सुलतानहुसेन शर्की द्वारा हुआ। मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह रँगीले (सन् १७१६ ई०) के दरबार के प्रसिद्ध गायक सदारङ्ग (न्यामतखां) और अदारंग ने हजारों ख्याल रचकर अपने शिष्यों को सिखाये, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने अपने वन्शजों को एक भी ख्याल नहीं सिखाया और न गाने ही दिया। रामपुर के वज़ीरखाँ सदारङ्ग के ही वन्शज थे और मुहम्मदअली खां तानसेन के वन्शज थे, ये दोनों ही ध्रुवपद-गायक थे, ख्याल-गायक नहीं।

टप्पा

ख्याल-गायकी के बाद टप्पा-गायकी का प्रचार हुआ। यह हिन्दी का शब्द है। शब्दकोष में तो 'टप्पा' के बहुत से अर्थ मिलेंगे, जैसे—उछाल, कूद, फलांग, अन्तर, फर्क, एक प्रकार का चलता गाना, जो पंजाब में चला है, इनमें से सङ्गीत-विद्यार्थियों के लिये अन्तिम अर्थ ही लेना उचित होगा। कहा जाता है कि लखनऊ के नवाब आसफ़-उद्दौला के दरबार में एक पंजाबी रहते थे, जिनका नाम शोरी मियां था, इन्होंने ही टप्पे की गायकी का आविष्कार किया।

टप्पा अधिकतर काफी, झिंझोटी, बरवा, भैरवी, खमाज इत्यादि रागों में गाया जाता है। इसमें स्थायी और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। टप्पा क्षुद्र प्रकृति की गायकी है, इस में श्रृंगाररस की प्रधानता होती है और पंजाबी भाषा के शब्द ही इसमें अधिकतर पाये जाते हैं। इसकी तानें दानेदार बहुत तैयार लय में गाई जाती हैं। टप्पा की गति बहुत चपल होती है। कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत है कि प्राचीन "वेसरा" गीत से इस गायकी की उत्पत्ति हुई है।

ठुमरी

जिन रागों में टप्पा गाया जाता है, प्रायः उनमें ही ठुमरी गाई जाती है। इसमें शब्द तो कम होते हैं, किन्तु शब्दों को हाव-भाव द्वारा बताकर गीत का अर्थ प्रकट करना ठुमरी-गायन की विशेषता मानी जाती है। ठुमरी का जन्म लखनऊ के नवाबों के दरबार में हुआ। कहा जाता है कि इसके आविष्कारक गुलामनबी, शोरी के घराने के लोग ही थे। ठुमरी अधिकतर पंजाबी त्रिताल में ही गाई जाती है, उसकी गति अतिद्रुत नहीं होती।

लखनऊ और बनारस ठुमरी के लिये प्रसिद्ध हैं। बनारसी ठुमरी में सुन्दरता और मधुरता अधिक पाई जाती है। ठुमरी में प्रायः राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक गायक ठुमरी गाते समय भिन्न-भिन्न रागों के स्वरों का मिश्रण करके उसे

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। महाराष्ट्र में ठुमरी को विशेष आदर या प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा जाता, क्योंकि महाराष्ट्र में राग-नियमों का पालन कुछ सख्ती से किया जाता है, सम्भवतः इसीलिए वहां ठुमरी का महत्व नहीं है. फिर भी ठुमरी का गायन किसी प्रकार उपेक्षित नहीं है और इसे उत्तर-प्रदेश में विशेष सम्मान प्राप्त है।

तराना

यह भी ख्याल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिनका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे—ता ना दा रे, तदारे, ओदानी दीम, तनोम इत्यादि। तराना में भी स्थाई और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है।

कहा जाता है कि अमीर खुसरो जब हिन्दुस्तान आये, तो यहां की संस्कृत भाषा को देखकर वे घबराये, क्योंकि वे तो अरबी भाषा के विद्वान् थे। अतः उन्होंने निरर्थक शब्द गढ़कर तरह-तरह के हिन्दुस्थानी राग गाये, वे निरर्थक शब्द ही 'तराना' नाम से प्रसिद्ध हुए। तराने में राग, ताल और लय का ही आनन्द है, शब्दों की ओर कोई ध्यान भी नहीं देता। तरानों का गायन हमारे देश में मनोरंजक माना जाता है। बहादुरहुसेनखां, तानरसखां, नत्थूखां इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हैं।

तिरवट

यह भी तराने की तरह गाया जाता है, किन्तु तराने से तिरवट की गायकी कुछ कठिन है। तिरवट में मृदङ्ग के बोल अधिक होते हैं, इसे सभी रागों में गाया जा सकता है। वर्तमान समय में तिरवट-गायकी का प्रचार कम हो गया है।

होरी-धमार

जब 'होरी' नाम के गीत को धमार ताल में गाते हैं, तो उसे 'धमार' कहा जाता है। धमार-गायन में प्रायः ब्रज की होली का वर्णन रहता है। धमार में दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग होता है, अतः यह कठिन गायकी है। धमार के गायकों को स्वर, ताल और राग का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। प्रायः देखा जाता है कि धमार में ख्याल के समान तानें नहीं ली जातीं।

ग़ज़ल

ग़ज़ल अधिकतर उर्दू या फ़ारसी भाषा में होती है। इसके गीतों में प्रायः आशिक़-माशूक़ का वर्णन अधिकतर पाया जाता है। इसीलिए यह श्रृंगाररस-प्रधान गायकी है। ग़ज़ल अधिकतर रूपक, पश्तो, दीपचन्दी, दादरा, कहरवा तालों में गाई जाती है। वे ही गायक ग़ज़ल गाने में सफल होते हैं, जिन्हें उर्दू-हिन्दी का अच्छा ज्ञान है और जिनका शब्दोचारण ठीक है। ग़ज़ल की अनेक तर्ज़ें हैं। वर्तमान समय में सवाक् चित्रपटों द्वारा ग़ज़ल और गीत का प्रसार व प्रचार बहुत हुआ है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कव्वाली

कव्वाली मुसलिम समाज की विशेष गायकी है। इसमें अधिकतर फ़ारसी व उर्दू भाषा का प्रयोग होता है। स्थायी, अन्तरा के अतिरिक्त इसके बीच-बीच में शैर' भी होते हैं। हिन्दुओं में भी कव्वाली का प्रचार पाया जाता है। इसके गाने वाले 'कव्वाल' कहलाते हैं। किसी विशेष अवसर पर रात-रात भर कव्वालियां होती हैं। कव्वाली के साथ ढोलक बजती हुई अधिक देखी जाती है, साथ-साथ हाथों से तालियां भी बजती हैं। रूपक, पश्तो, तथा कव्वाली तालों का इसमें विशेष प्रयोग होता है।

दादरा

दादरा एक प्रकार की ताल का भी नाम है, किन्तु एक विशेष गायकी को भी 'दादरा' कहते हैं। इसकी चाल ग़ज़ल से कुछ मिलती-जुलती होती है। मध्य तथा द्रुतलय में दादरा अच्छा मालूम पड़ता है। इसमें प्राय: शृंगाररस के गीत होते हैं।

सादरा

इस गाने की लय भी दादरा से बहुत मिलती-जुलती होती है। सादरा को अधिकतर कत्थक गायक एवं वेश्याएँ गाती हैं। इसमें कहरवा, रूपक, झपताल तथा दादरा इन तालों का प्रयोग होता है। ठुमरी गायक 'सादरा' भली प्रकार गा लेते हैं, इसके गीतों में प्राय: शृंगाररस ही अधिक मिलता है।

ख़मसा

ख़मसा गाने का प्रचार मुसलमानों में अधिक पाया जाता है। इसके गीत में उर्दू भाषा का प्रयोग ही मिलेगा। ख़मसा की गायकी कव्वाली से मिलती-जुलती होती है।

लावनी

'चङ्ग' (एक प्रकार का ताल-वाद्य) बजा-बजाकर कई आदमी मिलकर (या अकेला व्यक्ति) 'लावनी' गाते हैं। इसमें शृंगार तथा भक्ति रस के गीत होते हैं और कहरवा ताल का प्रयोग होता है।

चतुरङ्ग

१ ख्याल, २ तराना, ३ सरगम, ४ त्रिवट, ऐसे चार अङ्ग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे 'चतुरङ्ग' कहते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में किसी राग की सरगम और चौथे भाग में मृदङ्ग के बोलों की एक छोटी-सी परन रहती है। चतुरङ्ग को ख्याल की तरह गाते हैं, किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सरगम

किसी राग के स्वरों को लेकर उन्हें तालबद्ध करके जब गाया जाता है, उसे 'सरगम' गीत कहते हैं। सरगम-गीत भिन्न-भिन्न राग व तालों के होते हैं। सरगम गाने से विद्यार्थियों को स्वरज्ञान एवं रागज्ञान में बहुत सहायता मिलती है।

रागमाला

जब किसी एक गीत में कई रागों का वर्णन आता है और उस गीत की एक-एक लाइन में एक-एक राग के स्वर लग जाते हैं और उस राग का नाम भी आता-जाता है, ऐसी रचना को 'रागमाला' कहते हैं।

लक्षणगीत

कोई गीत जब किसी राग में गाया गया हो और उस गीत के शब्दों में उस राग के वादी-सम्वादी या वर्जित स्वरों का वर्णन किया गया हो, उसे 'लक्षणगीत' कहते हैं। लक्षणगीत से राग सम्बन्धी अनेक बातें सरलतापूर्वक याद हो जाती हैं।

भजन-गीत

जिस प्रकार उर्दू भाषा के शब्दों से ग़ज़लें तैयार होती हैं, उसी प्रकार हिन्दी शब्दावली से भजन और गीतों की रचना होती है। ईश्वर-स्तुति या भगवान की लीला का वर्णन भजनों में किया जाता है। भजन को किसी एक राग में बाँधकर भी गाते हैं, और ऐसे भी भजन हैं जो किसी विशेष राग में न होकर मिश्रित राग-स्वरों द्वारा तैयार हुए हैं। भजन अधिकतर कहरवा, दादरा, धुमाली, रूपक एवं तीनताल में गाये जाते हैं।

कीर्तन

भगवान् राम, कृष्ण के गुणानुवाद झांझ, करताल व मृदङ्ग-तबला इत्यादि के साथ उच्च स्वरों में मिलकर जब गाते हैं, उन्हें 'कीर्तन' कहते हैं।

गीत

ईश्वर-प्रार्थना या भगवान् की लीला सम्बन्धी पदों को छोड़कर जो साहित्यिक रचनाएँ ऐसी होती हैं कि किसी ताल में बाँधकर गाई जा सकें, उन्हें "गीत" कहते हैं। इनमें भाव की प्रधानता रहती है। गीतों में शृङ्गार और करुणरस अधिक पाया जाता है। गीतों में किसी प्रकार का स्वरविस्तार या तानों का प्रयोग नहीं होता। रेडियो और फ़िल्मों द्वारा गीत एवं भजनों का यथेष्ट प्रचार हुआ है।

कजली (कजरी)

कजली गीतों में वर्षाऋतु का वर्णन, विरह वर्णन, राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिकतर मिलता है। कजरी की प्रकृति क्षुद्र है। शृङ्गार-रस इसमें प्रधान है। मिर्जापुर और बनारस में कजरी गाने का प्रचार अधिक पाया जाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

चैती

होली के बाद जब चैत का महीना आरम्भ होता है, तब 'चैती' गाई जाती है। इसके गीतों में भगवान रामचन्द्र की लीलाओं का वर्णन रहता है। पूर्व बिहार की तरफ इसका प्रचार अधिक है। इसमें अधिकतर पूर्वी भाषा का प्रयोग होता है। ठुमरी-गायक "चैती" भली प्रकार गा सकते हैं।

लोकगीत

लोकगीत उन्हें कहते हैं जो विशेषतः घर-गृहस्थी के मंगल अवसरों पर एवं विशेष त्यौहारों या उत्सवों पर महिलाओं द्वारा नगरों तथा गांवों में अपनी-अपनी प्रान्तीय या ग्रामीण भाषाओं में गाये जाते हैं। पुरुष गायकों द्वारा गाये हुए लोकगीत भी होते हैं। लोकगीतों में हमें भारतीय प्राचीन संस्कृति मिलती है, यही कारण है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार इधर कुछ समय से लोकगीतों के प्रति आकर्षित होकर रेडियो आदि के द्वारा इनके प्रचार का विकसित करने का प्रयत्न कर रही है। यहाँ पर हम लोकगीतों के कुछ प्रकार पाठकों की जानकारी के लिये दे रहे हैं:—

(१) घोड़ी, बन्ना, ज्यौनार, जनेऊ, भात, मांडवा, गारी आदि लोकगीत उत्तर प्रदेश में ब्रजभूमि की ओर विशेष रूप से प्रचलित हैं, जिन्हें महिलाएँ विवाहादि अवसरों पर मिलकर गाती हैं।

(२) विरहा—यह गीत यादव (ग्वालवंश) में प्रचलित है। विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष के व्यक्ति वर-पक्ष के यहाँ जाकर नगाड़े के साथ विभिन्न पैंतरेबाजी दिखाते हुए रात भर 'विरहा' गाते हैं।

(३) निर्वही—सावन में खेत निराते समय यह गीत गाये जाते हैं।

(४) चन्दैनी—यह ग्वालों (यादव) का गीत है। प्रायः देहातों में ग्वाला लोग इसे गाते हैं।

(५) सोहर—यह गीत प्राचीन समय से ही महिलाओं में प्रचलित है, जो बच्चा पैदा होने के अवसर पर गाया जाता है। पहिले तो सोहर केवल ढोलक के साथ ही गाये जाते थे, किन्तु आजकल शहरों में हारमोनियम और ढोलक के साथ भी महिलाएँ सोहर गाने लगी हैं।

(६) झूमर—यह गीत कई प्रकार का होता है, जैसे विरहा का झूमर, जिसे यादव, निषाद या खटीक गाते हैं। दूसरा कजरी का झूमर जिसे वर्षाऋतु में गाया जाता है और तीसरे प्रकार का झूमर शीतला देवी की पूजा के समय गाया जाता है।

(७) नऊआ झक्कड़—यह नाइयों का गीत है, विवाह-शादी के अवसरों पर कई व्यक्ति मिलकर इसे गाते हैं, साथ-साथ झांझ, खंजरी भी बजाते रहते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आल्हा—"आल्हा-ऊदल" की ऐतिहासिक लड़ाई का वर्णन एक विशेष प्रकार की तर्ज में बांधकर जब गाया जाता है, तो उसे "आल्हा" कहते हैं। इसे सुनकर ग्रामीणों में जोश भर जाता है।

बारहमासी—विरह-प्रेम तथा भगवान् राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए बारहों महीनों के नाम जिस गीत में आ जाते हैं, उसे "बारहमासी" कहते हैं। इसे स्त्रियाँ तथा पुरुष सभी गाते हैं। बारहमासी ढोलक के साथ भी गाई जाती है और बिना ताल के भी इसे गाते हैं।

सावनी—वर्षाऋतु में जब सावन का महीना आता है, उसमें झूले के गीत, हिंडोले के गीत, मल्हार, निहालदे इत्यादि गाये जाते हैं, वह "सावनी" गीत कहलाते हैं।

मांड—राजपूताना, मारवाड़ की तरफ के देशी गीत हैं। इन्हें अब इधर के लोग भी गाते देखे गये हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तों में, वहाँ की ग्रामीण भाषाओं के अनुसार अन्य प्रकार के बहुत से और भी लोकगीत गाये जाते हैं। भारत के सभी लोकगीतों का उल्लेख किया जाय तो एक विशाल ग्रंथ ही तैयार हो जायगा।

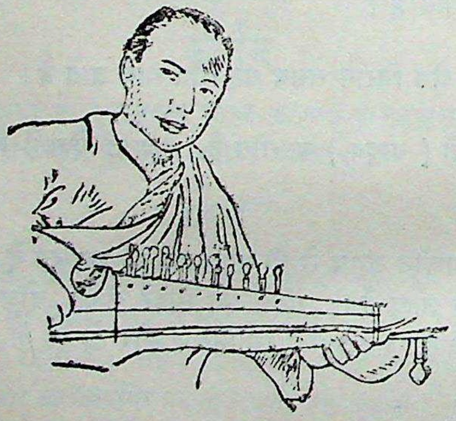

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीतात्मक रचनाओं के नियम

स्वस्थान

प्राचीन समय में आलाप करने के एक विशेष नियम को स्वस्थान नियम कहते थे। सङ्गीत रत्नाकर ग्रन्थ में स्वस्थानों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :—

यत्रोपवेश्यते रागः स्वरे स्थायी स कथ्यते ।
ततश्चतुर्थो द्व्यर्धः स्यात् स्वरे तस्मादधस्तने ॥
चालानं मुखचालः स्यात् स्वस्थानं प्रथमं च तत् ।
द्व्यर्धस्वरे चालयित्वा न्यसनं तद्द्वितीयकम् ॥
स्थायिस्वरादष्टतस्तु द्विगुणः परिकीर्तितः ।
द्व्यर्धद्विगुणयोर्मध्ये स्थिता अर्धस्थितस्वराः ॥
अर्धस्थिते चालयित्वा न्यसनं तु तृतीयकम् ।
द्विगुणे चालयित्वा तु स्थायिन्यासाच्चतुर्थकम् ।
एभिश्चतुर्भिः स्वस्थानै रागालप्तिर्मता सताम् ॥

उक्त श्लोकों का भावार्थ यह है कि अंशस्वर पर ही समस्त राग निर्भर रहता है, उसे ही स्थायी स्वर कहते हैं। स्थायी स्वर से चौथा स्वर द्व्यर्ध कहलाता है, आठवाँ द्विगुण कहा जाता है तथा द्विगुण और द्व्यर्ध स्वरों के बीच में जो स्वर हैं वे अर्धस्थित स्वर माने जायँगे। प्रथम स्वस्थान में गायक को अपना आलाप द्व्यर्ध स्वर के नीचे रखना आवश्यक होता था, इससे वह मन्द्र सप्तक में इच्छानुसार विस्तार कर सकता था। इस प्रकार प्रत्येक गायक को उपर्युक्त विधि से ही आलाप-गायन में स्वस्थान क्रमों के नियमों का पालन करना पड़ता था, मनमाने ढङ्ग से चाहे जिस स्थान से आलाप प्रारम्भ करके चाहे जहाँ न्यास करने की आज्ञा उस समय नहीं थी।

रूपकालाप

प्राचीन आलाप-पद्धति का यह एक दूसरा प्रकार माना जाता था, जिसे 'रूपकालाप' कहते थे। यह आलाप का ही एक विशेष भेद और है, जिसके लिये कहा गया है:—

रूपकं तु तद्वदेव पृथग्भूतविदारिकम् ।

रूपकालाप में प्रबन्ध के धातु के समान, आलाप के भिन्न-भिन्न भाग करके गायक को दिखाने पड़ते थे, इन भागों में जो अन्तिम स्वर आते थे, उन्हें अपन्यास स्वर कहा जाता था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रागालाप करते समय श्रोताओं के सम्मुख आलाप की व्याख्या करते हुए गायक यह भी बताते थे कि हम अमुक राग गारहे हैं, किन्तु रूपकालाप में कुछ बताने-कहने की आवश्यकता नहीं थी, वह तो श्रोताओं को स्वतः ही प्रत्यक्ष प्रबन्ध के समान दिखाई देता था। रूपकालाप शब्दहीन होता था अर्थात् उसमें बोल या ताल इत्यादि नहीं होते थे। इस प्रकार रागालाप की अपेक्षा रूपकालाप को विशेष महत्व प्राप्त था और इसे रागालाप की अगली सीढ़ी माना जाता था।

आलप्ति

रागालाप और रूपकालाप से आगे बढ़ने पर 'आलप्ति' की बारी आती थी। आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही आलप्ति कहलाता है।

आविर्भाव-तिरोभाव

किसी राग का विस्तार करते समय उसके बीच में अन्य समप्रकृतिक रागों के छोटे-छोटे टुकड़े दिखाकर, थोड़ी देर के लिये मुख्य राग को छिपाने का उपक्रम जब किया जाता है तो उसे 'तिरोभाव' कहते हैं। और फिर मुख्य राग के स्वरों को कुशलतापूर्वक दिखाकर रागरूप स्पष्ट करने को आविर्भाव कहते हैं। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझना चाहिये, जैसे गायक बसंत राग गारहा है और गाते-गाते उसमें निषाद पर न्यास करके परज राग की छाया दिखाने लगे, तो उसे तिरोभाव कहेंगे। फिर वसंत के स्वरों की मुख्य पकड़ लगाकर वसंत को स्पष्ट कर दिया जावे तो वह 'आविर्भाव' कहा जायगा। यह भाव अत्यन्त मनोरंजक होते हैं जो राग-गायन के बीच में या अन्तिम समय आने पर ही प्रायः कुशल गायक दिखाते हैं।

स्थाय

छोटे-छोटे स्वरसमुदायों को प्राचीन ग्रन्थकार "स्थाय" कहते थे।

मुखचालन

रागोचित विविध गमक-अलंकारों का प्रयोग करते हुए गायन-वादन करने को "मुखचालन" कहते हैं।

आक्षिप्तिका

स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है, उसके प्रयोग को प्राचीन पंडित "आक्षिप्तिका" कहते थे। जैसे ख्याल, ध्रुपद, धमार इत्यादि आक्षिप्तिका निबद्ध गान की ही श्रेणी में आते हैं।

निबद्ध-अनिबद्ध गान

जो रचनाएँ नियमानुसार ताल में बँधी हुई होती हैं, वे सब "निबद्ध गान" के अन्तर्गत आती हैं, इसमें तीन प्रकार हैं—१ प्रबन्ध २ वस्तु ३ रूपक। इनके विभिन्न भागों

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को 'धातु' कहा जाता है, धातु के भी पांच नाम हैं यथाः—(१) उद्ग्राह (२) ध्रुव (३) मेलापक (४) अन्तरा (५) आभोग। "अनिबद्ध गान" उसे कहते हैं जब कोई रचना स्वरों में बँधी हुई हो, किन्तु ताल में न हो। अनिबद्ध गान के अन्तर्गत राग-अलाप, रूपकालाप, आलप्तिगान तथा स्वर-स्थान नियमों का आलाप गायन, ये सब आते हैं क्योंकि इनमें ताल का प्रयोग नहीं होता।

विदारी

गीत तथा आलापों में विभिन्न छोटे-छोटे भागों को ही विदारी कहते हैं, निबद्ध-गान के अन्तर्गत जो उद्ग्राह, ध्रुव, मेलापक, अन्तरा और आभोग, ऊपर बताये जा चुके हैं, वे सब विदारी की श्रेणी में ही आ जाते हैं। विदारी में जब अन्तिम स्वर आते हैं वे ही न्यास, अपन्यास कहलाते हैं।

अल्पत्व

अल्पत्वं च द्विधा प्रोक्तमनभ्यासाच्च लंघनात्।
अनभ्यासस्त्वनंशेषु प्रायो लोप्येष्वपीष्यते ॥

रागों में अल्पत्व और बहुत्व का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अल्पत्व का अर्थ है कमी के साथ और बहुत्व माने ज्यादा तादाद में। जब किसी राग में किसी स्वर का महत्व कम दिखाकर राग-विस्तार में उसका उपयोग कमी के साथ किया जाता है तो उसे 'अल्पत्व' कहते हैं। इसका प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है-(१) लंघन से (२) अनभ्यास से। लंघन द्वारा जब अल्पत्व दिखाया जायगा तो आरोह या अवरोह में वह स्वर छोड़ दिया जायगा जैसे शुद्ध कल्याण में निषाद का अल्पत्व है तो उसे आरोह में छोड़ देते हैं या लांघ जाते हैं, यह प्रयोग लंघन से हुआ और इस प्रकार आरोह में उसका अल्पत्व माना जायगा। अनभ्यास द्वारा अल्पत्व इस प्रकार होता है कि किसी राग में कोई स्वर कम प्रमाण में प्रयोग किया जावे और उस पर बार-बार अभ्यास न किया जाय और न इस स्वर पर अधिक देर तक ठहरा ही जाय, जैसे भीमपलासी में ध और रे का अनभ्यास-अल्पत्व है। प्रायः इस श्रेणी में वर्जित या विवादी स्वर आते हैं, और इनका अल्प उपयोग कुशलतापूर्वक अनभ्यास अल्पत्व के द्वारा ही विवादी स्वर के नाते किया जाता है।

बहुत्व

यह भी दो प्रकार से दिखाया जाता है। अलंघन और अभ्यास। अलंघन द्वारा बहुत्व इस प्रकार माना जायगा कि किसी राग के आरोह या अवरोह में उस स्वर को छोड़ा न जाय अर्थात् उसे लांघा न जावे और उस पर अधिक रुका भी न जावे, जैसे कालिंगड़ा में मध्यम स्वर छोड़ा नहीं जाता, किन्तु उस पर अधिक देर तक रुकते भी नहीं, अर्थात् केवल अलंघन द्वारा ही उसका बहुत्व दिखाते हैं। अभ्यास द्वारा बहुत्व दिखाना उसे कहते हैं जब किसी स्वर को बारम्बार और देर तक दिखाया जाता है, जैसे हमीर में धैवत का प्रयोग

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अभ्यासमूलक बहुत्व माना जायगा। प्रायः राग के वादी या संवादी स्वर का ही अभ्यास-मूलक बहुत्व दिखाया जाता है, किन्तु किसी-किसी राग में अन्य स्वर का भी बहुत्व देखने में आता है। सङ्गीत रत्नाकर का भी यही आशय प्रतीत होता है:—

> अलंघनात्तथाऽभ्यासाद्बहुत्वं द्विविधं मतम्।
> पर्यायांशे स्थितं तच्च वादिसम्वादिनोरपि॥
>
> —सङ्गीतरत्नाकर

भावार्थ—स्वरों को अलंघन और अभ्यास दो प्रकार से बहुत्व दिया जाता है, यह बहुत्व प्रायः वादी-सम्वादी स्वरों को तो मिलता ही है, किन्तु कभी-कभी राग के किसी दूसरे "पर्याय अन्श" स्वर को भी यह बहुत्व दिया जाता है।

पकड़—स्वरों का एक ऐसा समूह जिससे राग का स्वरूप व्यक्त होता है अर्थात् जिन स्वरों के समूह से राग पहिचाना जा सकता है, उसे "पकड़" कहते हैं। प्रत्येक राग को पहिचानने के लिये अलग-अलग पकड़ होती है। उदाहरणार्थः—राग यमन की पकड़ यह है:-नि रे ग रे, सा, पमंग, रे, सा। केवल इतने स्वरसमुदाय से ही फौरन मालुम हो जायगा कि यह राग यमन का स्वरूप है। इसी प्रकार अच्छे-अच्छे गायक आरोहा-वरोह के पश्चात् राग की पकड़ दिखाकर रागरूप स्पष्टतया व्यक्त कर देते हैं।

मींड़— किसी एक स्वर से आगे या पीछे के २—३ या अधिक स्वरों पर, ध्वनि को बिना खंडित किये गाने या बजाने को मींड कहते हैं,जैसे प ध नि सां। यहाँ पर पंचम से सां तक की मींड दिखाई गई है तो इसे गाने में प से सां तक कोमलता से इस प्रकार जाना चाहिए कि बीच के दोनों स्वर ध,नि बोल भी जायँ और आवाज़ टूटने भी न पावे।

सूत—सूत और मींड में केवल इतना ही अन्तर है कि मींड़ का प्रयोग गाने में या सितार इत्यादि मिजराब वाले साजों में होता है और सूत का प्रयोग गज से बजने वाले साजों में जैसे-सारंगी, दिलरुबा, वॉयोलिन इत्यादि में होता है, तरीका वही है जो मींड का है।

आन्दोलन—स्वरों के हिलने या कम्पन को आन्दोलन कहते हैं, स्वरों के हिलने या उनके कम्पन से ही आन्दोलन-संख्या नापी जाती है।

गमक—आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन पैदा होता है तो उसे ही गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करने को गमक कहते हैं, जैसे—स अ अ अ रे ए ए ए ग अ अ अ इत्यादि।

कण—किसी स्वर को उच्चारण करते समय उसके आगे व पीछे के स्वर को तनिक छूने या स्पर्श करने को कण कहते हैं, जैसे $\overset{\text{नि}}{\text{सां}}$। यहां पर निषाद को ज़रा सा स्पर्श करके सां पर आना है तो इसे सां पर निषाद का कण कहेंगे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तान—स्वरों का वह समूह जिसके द्वारा रागविस्तार किया जाता है उसे "तान" कहते हैं, जैसे सा रे ग म, ग रे सा अथवा सां नि ध प म ग रे सा इत्यादि। स्वरों को तानने या फैलाने से ही 'तान' शब्द की उत्पत्ति हुई है। तानों के कई प्रकार हैं जो आगे बताये जाते हैं।

शुद्धतान—जिस तान में स्वरों का सिलसिला एकसा हो और आरोह-अवरोह सीधा-सीधा हो जैसे सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा। इसे ही सपाटतान भी कहते हैं।

कूटतान—जिस तान के स्वरों में क्रम या सिलसिला न हो उसे कूटतान कहेंगे, यह हमेशा टेढ़ी-मेढ़ी चलती है, जैसे—सारे गरे धप मप रेग म प धसां धप इत्यादि।

मिश्रतान—शुद्धतान और कूटतान इन दोनों का जिसमें मिलाप या मिश्रण हो उसे मिश्रतान कहेंगे, जैसे-प ध नि सां ग म प ध ध प म प ग म रे सा। इसमें कूटतान और शुद्धतान दोनों मिली हुई हैं।

खटके की तान—स्वरों पर धक्का लगाते हुए तान ली जावे तो उसे खटके की तान कहेंगे।

झटके की तान—जब तान दूनी चाल में जारही हो और यकायक बीच में चौगुन की चाल में जाने लगे उसे झटके की तान कहेंगे। जैसे—सा रे ग म प ध नि सां नि ध प म, सारे गम पधनिसां निधपम गरेसानि़।

वक्र तान—कूटतान के ही समान होती है, वक्र का अर्थ है टेढ़ा, यानी जिसकी चाल सीधी न हो, जिसमें स्वरों का कोई क्रम न हो।

अचरक तान—जिस तान में प्रत्येक दो स्वर एक से बोले जायँ, जैसे सासा रेरे गग मम पप धध। इसे अचरक की तान कहेंगे।

सरोक तान—जिस तान में चार-चार स्वर एक साथ सिलसिलेवार कहे जायँ, जैसे—सारेगम रेगमप गमपध मपधनि, इसे सरोक तान कहेंगे।

लड़न्त तान—जिस तान में सीधी आड़ी कई प्रकार की लय मिली हुई हों, उसे लड़न्त तान कहते हैं, जैसे-नि़सा नि़सा रे रे रे रे नि़ध़ नि़ध़ सा सा सा सा इत्यादि। इन तानों में गायक और वादक की लड़न्त बड़ी मजेदार होती है।

सपाट तान—जिस तान में क्रमानुसार स्वर तेजी के साथ जाते हों उसे सपाटतान कहते हैं, उदाहरणार्थ—म़प़ध़नि़ सारेगम पधनिसां रेंगंमंपं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गिटकरी तान—दो स्वरों को एक साथ, शीघ्रता के साथ एक के पीछे दूसरा लगाते हुए तान ली जाती है, जैसे—ऩिसा ऩिसा सारे सारे रेग रेग गम गम मप मप पध पध निसां निसां······इत्यादि।

जबड़े की तान—कंठ के अन्तस्तल से आवाज़ निकाल कर जबड़े की सहायता से जब तानें लीजाती हैं तो उन्हें जबड़े की तानें कहते हैं, ये मुश्किल होती हैं और सुलझे हुए गायक ही ऐसी तानें लेने में समर्थ होते हैं।

हलक तान—जीभ को क्रमानुसार भीतर-बाहर चलाते हुए हलक तानें ली जाती हैं।

पलट तान—किसी तान को लेते हुए अवरोह करके लौट आने को पलटतान या पल्टा तान कहते हैं, यथा:—सांनिधप मगरेसा।

बोलतान—जिन तानों में तान के साथ-साथ गीत के बोल भी मिलाकर विलम्बित, मध्य और द्रुत, आवश्यकतानुसार ऐसी तीनों लयों में गाये जाते हैं, वे बोलतान कहलाती हैं। जैसे—गम रेसा मध मप

गुनि जन गाऽ वत

आलाप—गायक जब अपना गाना आरम्भ करता है तो राग के अनुसार उसके स्वरों को विलम्बित लय में फैलाकर यह दिखाता है कि मैं कौनसा राग गारहा हूँ। आलाप को ही स्वर-विस्तार भी कहते हैं। जैसे बिलावल का स्वर-विस्तार इस प्रकार शुरू करेंगे:— ग ऽ, रे ऽ, सा ऽ सा रे सा ऽ ग ऽ म ग प ऽ म ग, म रे, सा ऽ ऽ ऽ इत्यादि।

बढ़त—जब कोई गायक, गाना गाते समय एक-एक या दो-दो स्वरों को लेते हुए एवं छोटे-छोटे स्वर-समुदायों से बढ़ते हुए बड़े-बड़े स्वर-समुदायों पर आकर लय को धीरे-धीरे बढ़ाता है और फिर बोलतान गमक इत्यादि का प्रयोग करता है, तब उसे 'बढ़त' कहते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आधुनिक आलाप-गान

आधुनिक सङ्गीत में, प्राचीन निबद्ध-अनिबद्ध गान के अन्तर्गत अनिबद्ध गान का केवल एक प्रकार प्रचार में है और वह है "आलाप"। आलापगान करने वाले बहुधा ध्रुपदिये होते थे। जिनका स्वर-ज्ञान तथा राग-ज्ञान उच्चकोटि का होता था। इसी कारण उनका आलापगान सुन्दर और आकर्षक होता था। किन्तु अब तो ख्याल-गायक भी सुन्दर आलाप करते देखे जाते हैं।

आलाप करने के वर्तमान समय में दो ढंग हैं

१—नोमतोम द्वारा, २—आकार द्वारा। नोमतोम का आलाप त, ना, न, री, नों, नारे, नेनेरी, तनाना, नेतोम, नना इत्यादि शब्दों के साथ किया जाता है। और आकार का आलाप आऽऽऽऽ के उच्चारण द्वारा। आकार से आलाप करने की अपेक्षा नोमतोम द्वारा आलाप प्रभावशाली और उत्तम होता है, क्योंकि इसमें बीच में किसी स्थान पर सम दिखाने की अच्छी सुविधा रहती है। आकार द्वारा आलाप में यह सुविधा उतनी अच्छी दिखाई नहीं देती, तथा नोमतोम के आलाप में अनेक स्वरवैचित्र्य दिखाने का कार्य सरलतापूर्वक होता है और द्रुतलय का आलाप भी इसमें भली प्रकार किया जा सकता है, क्योंकि द्रुतलय के आलाप में त, ना, न, री, नो इत्यादि अक्षर या शब्द गायक को बहुत सहायता पहुंचाते रहते हैं। किन्तु आकार के आलाप में द्रुतलय में काम दिखाते समय कठिनाई रहती है, और आकार के आलाप से श्रोता भी ऊब जाते हैं, जबकि नोमतोम का आलाप उन्हें बराबर स्फूर्ति और चेतना प्रदान करता रहता है।

वास्तव में "नोमतोम" का आलाप प्राचीनकाल की ईश्वरोपासना का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। कहा जाता है कि प्राचीन गायक आलाप द्वारा ईश्वर-वन्दना "ओं अनन्त नारायण" या "तू ही अनन्त हरी" इत्यादि प्रार्थना-गान किया करते थे। बाद में केवल स्वरों का ही चमत्कार रह गया और शब्द निरर्थक प्रयोग किये जाने लगे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि सङ्गीत के पूर्व पंडित संस्कृत भाषा के विद्वान् होते थे, अतः उनका शब्दोच्चारण का ज्ञान भी उच्चकोटि का था। बाद में मुसलमान गायक उन शब्दों का उच्चारण करने में तो असमर्थ रहते थे, किन्तु वे उन स्वरों और रागों पर मोहित थे, इस प्रकार उन्होंने 'नोमतोम' की युक्ति द्वारा राग और स्वर तो पकड़ लिये, किन्तु शब्द छोड़ दिये। यही हाल 'तराने' की गायकी का भी हुआ।

गायक प्रायः पूरे आलाप को चार भागों में बाँटते हैं:— (१) स्थाई (२) अन्तरा (३) संचारी तथा (४) आभोग। पहिले स्थाई का भाग लेकर आलाप आरम्भ करते हैं:—

(१) स्थायी—

स्थायी में पहले षड्ज लगाकर वादी स्वर का महत्व दिखाते हुए पूर्वाङ्ग में आलाप चलता है। शुरू में कुछ मुख्य स्वरसमुदायों को लेकर फिर एक-एक नया स्वर अपने स्वर-समुदायों में जोड़-जोड़कर वे मध्यस्थान के पञ्चम, धैवत और

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

निषाद तक जाते हैं, फिर तार षड्ज को छूकर नीचे मध्य षड्ज पर आकर स्थाई समाप्त करते हैं। स्थाई भाग का आलाप अधिकतर मन्द्र और मध्य सप्तकों में ही चलता है।

(२) अन्तरा—

इसके बाद मध्य सप्तक के गांधार या पंचम स्वर से अन्तरा का भाग शुरू करते हैं, और तार सप्तक के षड्ज पर पहुँचकर अनेक प्रकार के काम दिखाते हैं, अर्थात् इस स्थान पर विभिन्न तानें विभिन्न प्रकार से वहीं समाप्त करते हैं। फिर धीरे-धीरे उतरते हुए मध्य षड्ज पर आकर मिल जाते हैं। इसमें मींड़ और कम्पन का काम भी खूब दिखाते हैं।

(३) संचारी—

तीसरा भाग संचारी का आता है। इसे प्राय: सा, म, प इनमें से किसी भी स्वर से आरम्भ करके मध्य पंचम या मध्य षड्ज पर ही आकर समाप्त किया जाता है। क्योंकि संचारी में प्राय: तार सप्तक के काम नहीं दिखाये जाते। संचारी में गमकों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है; क्योंकि संचारी में स्थाई भाग की पुनरावृत्ति भी संशोधित रूप में हो जाती है। संचारी के बाद फिर स्थाई का आलाप नहीं करते, बल्कि एकदम आभोग आरम्भ कर देते हैं।

(४) आभोग—

आभोग का विस्तार प्राय: अन्तरा के विस्तार के समान ही करते हैं, अत: इसे अन्तरा की पुनरावृत्ति का ही संशोधित रूप समझा जाये तो अनुचित नहीं। इसमें तीनों सप्तकों का प्रयोग किया जा सकता है, और तार सप्तक में गायक अपने गले के धर्मानुसार जितना ऊँचा चाहे जा सकता है। इसमें अति द्रुतलय हो जाती है।

आलाप में लय की गति

लय की दृष्टि से उपरोक्त चारों भागों के आलाप में इस प्रकार चला जाता है—(१) स्थायी में विलम्बित लय के साथ आलाप चलता है। (२) अन्तरा में आलाप करने का समय आता है, तो मध्यलय करदी जाती है और तानों का प्रयोग आरम्भ कर दिया जाता है। बीच-बीच में छोटी-छोटी तानों की सहायता से आलाप के काम में सुन्दरता पैदा की जाती है और तीनों सप्तकों में आलाप का काम दिखाकर स्थायी और अन्तरा दोनों के काम इस भाग में दुबारा दिखाये जा सकते हैं। (३) संचारी भाग में लय द्रुत हो जाती है और तीनों सप्तकों में गमक तथा लयकारी का प्रदर्शन करते हुए आलाप चलता है। (४) आभोग में लय को और भी द्रुत करके, अन्तरा के भाग को विविध प्रकार से दुहराते हुए गमक का प्रयोग जारी रखा जाता है और गायक जितनी तेजी से गा सकता है, अपना सम्पूर्ण कौशल दिखाते हुए तबले या पखावज वाले के साथ एक प्रकार की प्रतियोगिता उपस्थित कर देता है। इस भाग के नोमतोम के शब्द अति द्रुतलय के कारण तराने का रूप धारण कर लेते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गमक प्रकार

स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः ।
तस्य भेदास्तुतिरिपः स्फुरितः कम्पितस्तथा ॥
लीन आन्दोलितवलितत्रिभिन्नकुरुलाहताः ।
उल्लासितः प्लावितश्च हुंफितो मुद्रिस्तथा ॥
नामितो मिश्रितः पंचदशेति परिकीर्तिता ॥

—संगीतरत्नाकर

अर्थात्—स्वरों का ऐसा कम्पन, जो सुनने वालों के चित्त को सुखदायी हो, उसे 'गमक' कहते हैं।

गमक के १५ भेद हैं:—(१) तिरप, (२) स्फुरित, (३) कम्पित, (४) लीन, (५) आन्दोलित, (६) वलित, (७) त्रिभिन्न, (८) कुरुला, (९) आहत, (१०) उल्लासित, (११) प्लावित, (१२) हुंफित, (१३) मुद्रित, (१४) नामित, (१५) मिश्रित।

दक्षिणी सङ्गीत के ग्रन्थों में गमकों के १० प्रकार निम्नलिखित मिलते हैं:—

(१) आरोह, (२) अवरोह, (३) ढालु, (४) स्फुरित, (५) कम्पित, (६) आहत, (७) प्रत्याहत, (८) त्रिपुच्छ, (९) आन्दोलित, (१०) मूर्च्छना।

प्राचीन समय में स्वरों के एक विशेष प्रकार के कम्पन को 'गमक' कहते थे। उस कम्पन को प्रकट करने के लिये जो विभिन्न ढङ्ग उस समय प्रचार में थे, उन्हीं का उल्लेख ऊपर के श्लोकों में किया गया है।

वर्तमान समय में यद्यपि गमकों का प्रयोग प्राचीन ढङ्ग से नहीं होता, तथापि किसी न किसी रूप में गमक का प्रयोग हमारे वाद्य-सङ्गीत और मौखिक-सङ्गीत में होता अवश्य है। खटका, मुर्की, ज़मज़मा, मींड़, सूत, कम्पन, गिटकरी इत्यादि शब्द गमक की ही श्रेणी में आते हैं।

आधुनिक सङ्गीतज्ञ 'गमक' की व्याख्या इस प्रकार करते हैं:—जब हृदय से ज़ोर लगाकर गम्भीरता पूर्वक कुछ कम्पन के साथ स्वरों का प्रयोग किया जाता है, उसे गमक कहते हैं। गमक का प्रयोग अधिकतर ध्रुपद-गायन में होता है; किन्तु कोई-कोई गायक ख्याल-गायन में भी गमक की तानें लेते हैं। नोमतोम के आलाप में भी जब अन्तिम भाग द्रुतलय का आता है, तो गमकयुक्त तानें ली जाती हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रागों का दस विभागों में वर्गीकरण करने का प्राचीन सिद्धान्त

प्राचीन संगीत-पण्डितों ने अपने रागों का दस विभागों में वर्गीकरण इस प्रकार किया है:—

(१) ग्रामराग, (२) उपराग, (३) राग, (४) भाषा, (५) विभाषा, (६) अन्तर्भाषा, (७) रागांग, (८) भाषांग, (६) क्रियांग, (१०) उपांग।

ग्राम-राग

'सङ्गीतरत्नाकर' ग्रन्थ में शुद्धा, भिन्ना, गौड्या, वेसरा और साधारण इन पाँच गीतियों के अन्तर्गत ३० ग्रामराग माने हैं, जो इस प्रकार हैं:—

(१) शुद्धा—१ षड्जग्राम, २ मध्यमग्राम, ३ शुद्धकैशिक, ४ शुद्धपंचम, ५ शुद्धकैशिकमध्यम, ६ शुद्ध साधारित, ७ शुद्ध षाडव।

(२) भिन्ना—१ भिन्नषड्ज, २ भिन्नपंचम, ३ भिन्नकैशिक, ४ भिन्नतान, ५ भिन्न-कैशिकमध्यम।

(३) गौड्या—१ गौडकैशिक, २ गौडपंचम, ३ गौडकैशिकमध्यम।

(४) वेसरा—१ सौवीर, २ टक्क, ३ बोट्ट, ४ मालवकैशिक, ५ टक्ककैशिक, ६ हिन्दोल, ७ मालव पंचम, ८ वेसर षाडव।

(५) साधारण—१ रूपसाधार, २ शकः, ३ भंभाणपंचम, ४ नर्त, ५ गांधार पंचम, ६ षड्जकैशिक, ७ कुकुभ।

उपरोक्त ३० ग्रामरागों के अतिरिक्त ८ उपराग, २० राग, ८ पूर्व प्रसिद्ध रागाङ्ग, ११ भाषाङ्ग, १२ क्रियाङ्ग, ३ उपाङ्ग, ६६ भाषाराग, २० विभाषाराग, ४ अन्तर्भाषाराग, १३ शार्ङ्गदेव के समय में प्रचलित राग, ६ भाषाङ्ग, ३ क्रियाङ्ग और २७ उपाङ्ग बताये गये हैं, इस प्रकार रत्नाकर ग्रन्थ में २६४ राग बताये गये हैं।

'सङ्गीतसमयसार' ग्रंथ में पार्श्वदेव ने देशी सङ्गीत के अन्तर्गत १०१ राग मानकर उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है:—

रागाङ्गराग	भाषाङ्गराग	उपाङ्गराग	क्रियाङ्गराग
१२ सम्पूर्ण	२१ सम्पूर्ण	१८ सम्पूर्ण	—
४ षाडव	११ षाडव	७ षाडव	३
४ औडुव	१५ औडुव	६ औडुव	
२०	४७	३१	

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ग्रामराग—प्राचीन सङ्गीत के कुछ ग्रन्थों में ग्रामों से जातियां और जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति मानी गई है। प्राचीनकाल में राग-गायन के स्थान पर जाति-गायन ही प्रचलित था, अतः रागों के प्रकार या वर्ग को ही 'ग्रामराग' कहा जाता था।

उपराग—ग्राम रागों में ही विभिन्न स्वरों के हेर-फेर से उपरागों की उत्पत्ति हुई।

राग—यह भी ग्राम रागों के माध्यम से ही उत्पन्न हुए।

भाषा—गाने की एक विधि या शैली को कहा जाता था। उस शैली का गायन जितने रागों में व्यवहृत होता था, उन्हें भाषा राग कहते थे। मतङ्ग ने भाषा के अन्तर्गत १६ राग बताये हैं।

विभाषा—गाने की एक दूसरी विधि या प्रकार को कहा जाता था, इसके अन्तर्गत मतङ्ग ने १२ राग अपने ग्रन्थ में लिखे हैं।

अन्तर्भाषा—गाने की एक तीसरी विधि थी, जिसका प्रयोग विशिष्ट रागों में किया जाता था।

रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग के विवरण भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार दिये हैं, जो उन्हें दक्षिण के एक पण्डित ने बताये थे।

रागाङ्ग—ऐसे शास्त्रीय रागों को कहा जाता था, जिनमें राग के सभी शास्त्रीय नियमों का पालन किया जाता हो।

भाषाङ्ग—ऐसे रागों को कहा जाता था, जो शास्त्रीय राग नियम पर आश्रित न रह कर भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न शैलियों या भाषाओं द्वारा निर्मित होकर व्यवहार में लाये जाते थे, उन्हीं शास्त्रीय रागों के भाषाङ्ग कहलाते थे, जिनसे वे बहुत कुछ मिलते-जुलते थे।

क्रियाङ्ग—जिन रागों में शास्त्रीय राग-नियमों का पालन करते हुए कुछ गायक अपनी क्रिया से किसी विवादी स्वर का प्रयोग करके उसमें विशेषता पैदा करते थे, वे क्रियाङ्ग राग कहलाते थे।

उपांग—क्रियांग रागों की तरह, अन्य रागों में हेर-फेर करके उपांग राग उत्पन्न किये जाते थे। इनमें मूल राग के किसी स्वर को हटाकर नया स्वर ले लिया जाता था।

'संगीत दर्पण' के लेखक पण्डित दामोदर ने इनकी व्याख्या इस प्रकार संक्षेप में बताई है:—

रागाङ्ग राग—वे हैं जिनमें ग्राम राग की कुछ छाया मिले।

भाषाङ्ग राग—वे हैं जिनमें भाषा राग की छाया हो।

क्रियाङ्ग राग—वे हैं जिनसे शिथिल इन्द्रियों को बल व उत्साह प्राप्त होता हो।

उपाङ्ग राग—वे हैं जिनमें राग की छाया बहुत ही कम मिलती हो।

इसी से मिलता-जुलता वर्णन कल्लिनाथ ने सङ्गीतरत्नाकर की टीका में दिया है।

उपर्युक्त शास्त्रीय मतभेद के कारण, उक्त शब्दों का ठीक-ठीक विवरण क्या हो सकता है? इसका निर्णय करना कठिन ही है, अतः विभिन्न शास्त्रों का व्यापक अध्ययन करके विद्वानों द्वारा इस विषय पर कोई एक मत निर्धारित कर लिया जाये तभी यह समस्या हल हो सकती है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आदत–जिगर–हिसाब

ऐसे पुराने उस्तादों से जो विशेष पढ़े-लिखे नहीं हैं, बातचीत करते समय बहुधा कुछ ऐसे शब्द सुनाई देते हैं जिनका अर्थ जानने के लिये सङ्गीत के विद्यार्थी उत्सुक रहते हैं। उन शब्दों में ही आदत, जिगर और हिसाब आते हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

प्राचीन गुणी गायकों का कहना है कि गायक में 'आदत, जिगर और हिसाब' इनमें से कम-से-कम प्रथम दो बातें तो होनी ही चाहिये, अन्यथा वह अपनी सङ्गीत-साधना में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। तीसरी विशेषता 'हिसाब' प्राय: तालवाद्य-वादकों से सम्बन्धित है, जिसका उल्लेख नीचे किया जायगा।

आदत—उत्तम रियाज़ (अभ्यास) भली प्रकार तान लेने की सामर्थ्य प्राप्त करने की क्षमता रखना "आदत" कहलाता है। जो सङ्गीत-प्रेमी नियमित रूप से नित्यप्रति अभ्यास करता रहता है, उसके उच्चारण में गम्भीरता और स्वरमाधुर्य पैदा हो जाता है, उसके गाने की "आदत" जब तक कायम रहेगी तब तक उसे सफलता मिलती रहेगी, इसके विरुद्ध कोई बड़े से बड़ा गायक भी जब अपना रियाज़ छोड़ देता है तो उसके गायन में वह आकर्षण नहीं रहता जो कि रियाज़ जारी रहने पर सम्भव हो सकता था। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उस सङ्गीतज्ञ की गाने की "आदत" छूट गई।

जिगर—आयुर्वेद में 'जिगर' शरीर के उस भाग को कहा जाता है, जिसके द्वारा रक्त बनता है; लेकिन सङ्गीतज्ञों के कोष में इसका अर्थ है "अङ्ग स्वभाव" अर्थात् (Musical Temperament) राग की बढ़त करते समय किस स्थान पर कौनसा स्वरसमुदाय सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होगा। राग में कौनसे स्वर लगाने पर राग का माधुर्य बढ़ेगा इत्यादि बातों का ज्ञान रखना ही अङ्ग-स्वभाव के अन्तर्गत आता है और इसे ही सङ्गीतज्ञों की भाषा में "जिगर" कहते हैं।

हिसाब—राग व ताल के शास्त्रीय नियमों की जानकारी रखना ही "हिसाब" के अन्तर्गत आता है। बहुत से अशिक्षित गायक या तबलिये मात्राओं के हिसाब-किताब को न जानते हुए भी यद्यपि काम कर जाते हैं, किन्तु गुणी लोगों के साथ बैठकर बातचीत करते समय जब मात्राओं या शास्त्रीय नियमों का मसला पेश होता है तब वे बग़लें झाँकने लगते हैं। किसी-किसी गायक को बड़ी-बड़ी तानें लेकर 'सम' पर मिलना आता है, किन्तु वह बेचारा अशिक्षित होने के कारण "हिसाब" से शून्य है।

इस प्रकार आदत, जिगर और हिसाब यह तीनों विशेषताएँ जिस संगीतज्ञ में होंगी वही सफल कलाकार माना जायगा और इन तीनों में से जो भी गुण उसमें कम होगा वह उतना ही अधूरा समझा जायगा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

स्वरलिपि पद्धति

किसी गाने की कविता अथवा साजों पर बजाने की गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि (Notation) कहते हैं। प्राचीन काल में भारतवर्ष में लगभग ३५० ई० पू० अर्थात् पाणिनी के समय के पहले ही स्वरलिपि-पद्धति विद्यमान थी। किन्तु तब यह स्वरलिपि-पद्धति अपने शैशवकाल में ही थी। उस समय तीव्र तथा कोमल स्वरों के भेद तथा ताल-मात्रा सहित स्वरलिपि नहीं होती थी; अपितु केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षरों के साथ सरगम के रूप में दिये जाते थे। उनसे केवल इतना ही बोध होता था कि अमुक गायन में अमुक स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

तीव्र, कोमल स्वरों के चिन्ह न होने के कारण एवं ताल, मात्रा, मींड आदि के अभाव में उन स्वरलिपियों से सङ्गीत-विद्यार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे। प्राचीन समय में स्वरलिपि पद्धति का विकास न होने के और भी कुछ कारण थे, उदाहरणार्थ:—

१—उस समय सङ्गीत कला विशेषतया क्रियात्मक (Practical) रूप में थी अर्थात् गुरु-मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

२—लेखन-प्रणाली एवं मुद्रण सम्बन्धी सुविधाएँ उस समय आजकल जैसी न थीं।

३—रागों को जबानी (मौखिक) याद रक्खा जाता था।

४—सङ्गीत कला गुरु से शिष्य को और शिष्य से उसके शिष्य को सिखाने या कंठस्थ कराने की प्रथा थी।

५—प्राचीन समय के उस्ताद अपनी कला को केवल अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को लिखकर नहीं बताते थे, बल्कि सीना ब सीना (सामने बैठकर) ही सिखाना पसन्द करते थे।

विद्यार्थियों के लिए सुबोध और सरल स्वरलिपि का निर्माण आज से ५०-६० वर्ष पूर्व हुआ। जिसका श्रेय भारतीय सङ्गीत की दो महान् विभूतियों १-पं० विष्णुनारायण भातखण्डे और २—पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर को है।

इनके द्वारा निर्मित स्वरलिपियों का प्रचार शनैः-शनैः समस्त भारत में होता गया। बीच-बीच में अन्य कोई सङ्गीत-पंडितों ने भी अपनी-अपनी पृथक् स्वरलिपि पद्धतियाँ चालू कीं, किन्तु वे व्यापक रूप से प्रचार में न आसकीं और आज उक्त दोनों (भातखण्डे व पलुस्कर) पद्धतियां ही लोकप्रिय होकर प्रचार में आ रही हैं।

यद्यपि इन स्वरलिपि पद्धतियों से गायक के गले की सभी विशेषताएँ लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ भारतीय सङ्गीत की विशेषताएँ गमक, गिटकरी राग-सौंदर्य, अलंकार, श्रुति-प्रयोग, स्वरमाधुर्य आदि बारीकियाँ स्वरलिपि द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकतीं। फिर भी वर्तमान स्वरलिपि पद्धतियों से संगीत-विद्यार्थियों को जो सहायता मिली है और मिल रही है उसे भुलाया नहीं जा सकता।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

श्री भातखण्डे ने पुराने घरानेदार उस्तादों के गायनों की स्वरलिपियां तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया था। उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण करके उस्तादों की सेवा तथा खुशामद करके स्वरलिपियां तैयार कीं। उस समय कुछ ऐसे भी उस्ताद थे जो अपने गाने की स्वरलिपि किसी भी प्रकार दूसरे व्यक्ति को बनाने की आज्ञा नहीं देते थे। श्री भातखण्डे ने बड़ी युक्ति और कौशल से परदों के पीछे छिप-छिपकर उनका गायन सुना और स्वरलिपियां तैयार कीं एवं बहुत सी स्वरलिपियां ग्रामोफोन रेकर्डों द्वारा भी तैयार कीं; इस प्रकार कई हज़ार चीज़ों की स्वरलिपियां तैयार करके उन्होंने 'क्रमिक पुस्तक मालिका' ६ भागों में प्रकाशित कर संगीत-विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त बना दिया। इसी प्रकार पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने भी कई पुस्तकें तैयार कीं। पलुस्कर जी की स्वरलिपि पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा चालू हुई थी, अब उसमें कुछ परिवर्तन होगये हैं। यही कारण है कि विष्णुदिगम्बर जी की प्रारम्भिक मूल पुस्तकों में तथा आज उनके विद्यालयों में चलने वाली 'राग विज्ञान' आदि पुस्तकों के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है। तथापि वर्तमान स्वरलिपि प्रणाली उनकी प्राचीन प्रणाली से अधिक सुविधाजनक है। यही कारण है कि यह परिमार्जित स्वरलिपि पद्धति विशेष रूप से प्रचार में आ रही है। विष्णुदिगम्बर जी की स्वरलिपि पद्धति जो आजकल प्रचार में आरही है वह इस प्रकार है:-

विष्णु दिगम्बर पद्धति के स्वरलिपि चिन्ह:—

(१) जिन स्वरों के ऊपर नीचे कोई चिन्ह नहीं होता, वे मध्य सप्तक के शुद्ध स्वर समझे जाते हैं, जैसे—रे ग म प

(२) जिन स्वरों के नीचे हलन्त का निशान होता है, उन्हें कोमल या विकृत स्वर मानते हैं, जैसे—रि् ग् ध् नि्

(३) तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टे हलन्त द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं—म

(४) ऊपर बिन्दी वाले स्वर मन्द्र सप्तक के माने जाते हैं, जैसे—पं धं निं

(५) जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर होती है, वे तार सप्तक के स्वर होते हैं। जैसे—सा रिं गं मं

(६) स्वर पर मात्राओं के लिये इस प्रकार चिन्ह रक्खे हैं:—

+ चार मात्रा जैसे सा (नीचे +)

ᔕ दो मात्रा, जैसे सा (नीचे ᔕ)

– १ मात्रा, जैसे सा (नीचे –)

० आधी मात्रा, जैसे सा (नीचे ०)

‿ ¼ मात्रा, जैसे प (नीचे ‿)

‿‿ ⅛ मात्रा, जैसे म (नीचे ‿‿)

(७) उच्चारण के लिये लिये अवग्रह ऽ चिन्ह का प्रयोग करते हैं और गीत के अक्षरों के ठहराव को लम्बा करने के लिए बिन्दु • का प्रयोग करते हैं।

जैसे—ग ऽ ऽ प
रा • • म

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(८) स्वरों के नीचे ३/१ या ६/१ इत्यादि लिखा हो तो वहाँ १ मात्रा में ३ या ६ स्वर बोले जाते हैं।

(९) किसी स्वर के ऊपर कोई दूसरा स्वर लिखा हो तो कण स्वर (Grace note) के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

(१०) ताल में सम के लिये १ का चिन्ह लगाते हैं खाली के लिये + चिन्ह का प्रयोग होता है, अन्य तालियों के लिये क्रमशः २, ३, ४, आदि अंकों का प्रयोग करते हैं।

भातखण्डे पद्धति के स्वरलिपि चिन्ह :—

(१) जिन स्वरों के नीचे ऊपर कोई चिन्ह नहीं होता उन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं, जैसे—सा रे ग म

(२) जिन स्वरों के नीचे आड़ी रेखा खींचदी गई हो, उन्हें कोमल स्वर कहते हैं, जैसे—रे॒ ग॒ ध॒ नि॒

(३) तीव्र मध्यम की पहिचान के लिये म के ऊपर एक खड़ी लकीर खींचदी जाती है, जैसे—मॅ

(४) नीचे बिन्दु वाले स्वर मन्द्र सप्तक के माने जाते हैं, जैसे—म़ प़ ध़

(५) ऊपर बिन्दु वाले स्वर तार सप्तक के मानते हैं, जैसे—गं रें सां

(६) बिना बिन्दी वाले स्वर मध्य सप्तक के समझने चाहिये, जैसे—प म ग

(७) गाने के जिस शब्द के आगे ऽ ऐसे चिन्ह जितने हों तो उसको उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं, जैसे—श्या ऽ ऽ म

(८) स्वरों के आगे इस प्रकार जितने - निशान हों उसे उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं, जैसे—ग - -

(९) कई स्वरों को एक मात्रा में गाने-बजाने के लिये ‿ इस चिन्ह का प्रयोग होता है, जैसे—पमग अथवा रेगमप

(१०) स्वर के ऊपर ⌒ इस प्रकार के चिन्ह को मींड कहते हैं, जैसे—म प ध नि अर्थात यहां पर मध्यम से निषाद तक मींड ली जायेगी।

(११) किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर लिखा हो तो उसे कण स्वर समझना चाहिये, जैसे—ग/प यानी ग को ज़रा छूते हुए प स्वर को गाना या बजाना।

(१२) जो स्वर ब्रैकिट में बन्द हो उसे इस प्रकार गाना चाहिये। पहले उसके बाद का स्वर, फिर वह स्वर जो ब्रैकिट में बन्द है, फिर उसके पहले का स्वर तथा फिर वही ब्रैकिट वाला स्वर। यानी एक मात्रा में चार स्वर गाये जायेंगे, जैसे (प)=ध प म प

(१३) ताल में सम दिखाने का यह × चिन्ह होता है।

(१४) खाली के लिये यह ० चिन्ह प्रयोग होता है।

(१५) सम को पहिली ताली मानकर अन्य तालियों के लिये २-३-४ आदि लगाते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत और रस

मानव जाति के अन्तःकरण में वास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के परमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों ने 'रस' कहा है अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे रस कहते हैं।

साहित्य में नवरस माने गये हैं, यथाः—

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
वीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रस शान्तस्तथा मतः ॥

(१) शृङ्गार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक, (७) वीभत्स, (८) अद्भुत, (६) शान्त ।

सङ्गीत में केवल शृङ्गार, वीर, करुण और शान्त इन चार रसों में ही उपरोक्त नवरसों का समावेश माना गया है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने प्राचीन सप्तस्वरों के रस इस प्रकार बताये हैंः—

सरी वीरेऽद्भुते रौद्रे धा वीभत्से भयानके ।
कार्यौ ग नी तु करुणहास्यशृङ्गारयोर्मपौ ॥

अर्थात्ः—सा, रे—वीर, रौद्र तथा अद्भुत के पोषक हैं।
ध— वीभत्स तथा भयानक रस का पोषक है।
ग, नि—करुण रस के पोषक हैं।
म, प—हास्य व श्रङ्गार रस के पोषक हैं।

पण्डित भातखण्डे जी ने हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में स्वरों के अनुसार रागों के जो तीन वर्ग नियत किये हैं, उन तीनों वर्गों में पण्डित जी ने रसों का समावेश इस प्रकार करने का सुझाव दिया है, यथाः—

रे ध कोमल वाले संधिप्रकाश रागों में—शान्त व करुण रस।
रे ध तीव्र वाले रागों में—शृङ्गार रस।
ग नि कोमल वाले रागों में—वीर रस।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से ही एक रस की सृष्टि बताई है, किन्तु वास्तव में देखा जाय तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं।

उदाहरणार्थः—षड्ज स्वर को उन्होंने वीर रस प्रधान बताया है तथा पंचम को शृङ्गार रस का स्वर माना है और हमारे प्रायः सभी रागों में षड्ज या पञ्चम स्वर अवश्य मिलते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि सभी राग वीर रस या शृङ्गार रस प्रधान होने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

चाहिये थे; किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है, अनेक रागों से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है। निष्कर्ष यही निकलता है कि एक स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों के साथ मिलकर ही रसोत्पत्ति करने में सफल होता है। कोई वादी स्वर अपने सम्वादी, अनुवादी या विवादी स्वर के सम्पर्क से ही किसी रस की सृष्टि करता है। शास्त्रीय स्वर-योजना के अनुसार निश्चित ऋतु में, योग्य वातावरण को देखकर श्रोताओं की मनोभावना को समझते हुए कोई राग जब किसी योग्य गायक द्वारा गाया जावे तथा उसके गीत का काव्य भी उसी रस के अनुकूल हो, तो रस की उत्पत्ति अवश्य होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके विपरीत यदि कोई गायक वीभत्स रस की स्वरावली में शान्त रस का गीत गाने लगे, तो रसोत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। जहाँ पर केवल स्वरों द्वारा ही रस की सृष्टि करनी है, वहाँ गीत को छोड़कर केवल स्वर-लहरी द्वारा भी रसोत्पत्ति की जा सकती है। स्वर और शब्दों से ही गीत का निर्माण होता है और जब गीत में स्वर ही न रहेंगे तो वह शब्दों की एक निरस रचना मात्र रह जायेगी, जो बिना स्वरों की सहायता के रस की सृष्टि करने में सर्वथा असफल रहेगी। किसी एक ही शब्द द्वारा स्वरों की सहायता से विभिन्न रसों को उत्पन्न किया जा सकता है। जैसे 'आओ' यह शब्द लीजिये, इसे जब करुण स्वरों में कहा जायेगा तो ऐसा मालूम होगा, मानो कोई सहायता के लिए पुकार रहा है; इस प्रकार करुण रस की सृष्टि होगी। और जब इसी शब्द को शृङ्गारिक स्वरों में कहा जायेगा तो ऐसा प्रतीत होगा, मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है; यहाँ शृङ्गार रस की सृष्टि होगी। कठोरता के स्वरों में इसी शब्द को कहा जाय, मानो लड़ने के लिये दुश्मन को चुनौती दी जा रही है, तब इसी 'आओ' से वीर रस की सृष्टि होगी।

उपर्युक्त उद्धरण से यह भलीभांति प्रकट है कि एक ही शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर-भेद के कारण हुई। अतः रसोत्पत्ति का मूल कारण स्वर ही माना जायेगा। काव्य द्वारा भी रुदन, क्रोध, भय, आश्चर्य, हास्य आदि भावों की सृष्टि तभी होती है, जबकि भिन्न शैली से उस कविता का उच्चारण हो और भिन्न शैली के उच्चारण में स्वरों का कुछ न कुछ अस्तित्व अवश्य ही होगा। वास्तव में देखा जाय तो प्रत्येक उच्चारण का सम्बन्ध नाद, स्वर और लय से है यथाः—

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मतः प्रेरयते मनः।
देहस्थं मन्हिमाहंति सप्रेरयति मारुतम्॥
ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्व पथे चरन्।
नाभिहृत्कंठमूर्धास्येष्वाविभवियते ध्वनिम्॥

अर्थात्—"जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है, तब वह मन को प्रेरित करती है। मन देहस्त अग्नि को प्रेरणा देता है, अग्नि वायु का चलन करती है, तब ब्रह्म ग्रन्थिस्थ वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद (ध्वनि) उत्पन्न करती है। इन नादों का सम्बन्ध स्वर से है और स्वरों की सहायता से भावना तथा रस की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार स्वरों द्वारा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नृत्य तथा ताल के द्वारा भी हमें विभिन्न प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। एक सफल नर्तक अपने नाच में विभिन्न प्रकार के भावों द्वारा रसोत्पादन करने में सफल होता है। ताण्डव नृत्य से वीर तथा रौद्र रस, लास्य से शृङ्गार रस तथा कत्थक नृत्य की अनेक भाव-भंगिमाओं द्वारा शृङ्गार, हास्य, करुण और शान्त रसों की सफलतापूर्वक उत्पत्ति की जा सकती है। यहां पर न स्वर है न शब्द, फिर भी रस की सृष्टि होती है। यही नृत्यकला की विशेषता है।

ताल और लय का सम्बन्ध भी रस से होता है यथाः—

"तथा लया हास्यशृंगारयोर्मध्यमाः ।
वीभत्सभयानकयोर्विलम्बितः ।
वीररौद्राद्भुतेषु च द्रुत ॥"

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण)

अर्थात्—हास्य एवं शृङ्गार रसों में मध्य लय का प्रयोग होता है, वीभत्स एवं भयानक रसों में विलम्बित लय का तथा वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों में द्रुतलय का प्रयोग होता है।

इस प्रकार गायन, वादन, नर्तन, ताल और लय सङ्गीत के इन सभी अङ्गों द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि सम्भव है।

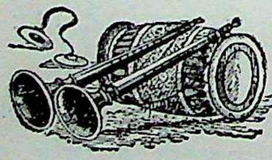

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक के

६० रागों का वर्णन

१ बिलावल	२१ मारवा	४१ अड़ाना
२ अल्हैयाबिलावल	२२ सोहनी	४२ धानी
३ खमाज	२३ जौनपुरी	४३ मांड
४ यमन	२४ मालकौंस	४४ गौड़मल्लार
५ काफी	२५ छायानट	४५ झिंझोटी
६ भैरवी	२६ कामोद	४६ श्रीराग
७ भूपाली	२७ बसन्त	४७ ललित
८ सारङ्ग	२८ शंकरा	४८ मियांमल्लार
९ बिहाग	२९ दुर्गा	४९ दरबारीकान्हड़ा
१० हमीर	३० दुर्गा (बि० थाट)	५० तोड़ी
११ देस	३१ शुद्धकल्याण	५१ मुलतानी
१२ भैरव	३२ गौड़सारङ्ग	५२ रामकली
१३ भीमपलासी	३३ जैजैवन्ती	५३ विभास
१४ बागेश्री	३४ पूर्वी	५४ पीलू
१५ तिलककामोद	३५ पूर्याधनाश्री	५५ आसा
१६ आसावरी	३६ परज	५६ पटदीप
१७ केदार	३७ पूरिया	५७ रागेश्री
१८ देशकार	३८ सिंदूरा	५८ पहाड़ी
१९ तिलङ्ग	३९ कालिंगड़ा	५९ जोगिया
२० हिन्डोल	४० बहार	६० मेघमल्लार

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१—बिलावल

शुद्ध सुरन सों गाइये, धग संवाद बखान।
राग बिलावल को समय, प्रातःकाल प्रमान॥

राग—बिलावल	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—बिलावल	आरोह—सा रे ग म प ध नि सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—गरे, गप, ध, नि सां
स्वर—सभी शुद्ध	गायन-समय—प्रातःकाल प्रथम प्रहर

यह उत्तराङ्ग वादी राग है। यह राग कल्याण राग के समान दिखाई देता है, अतः इसे प्रातःकाल का कल्याण भी कहते हैं।

२—अल्हैयाबिलावल

आरोहन मध्यम नहीं, धग संवाद बखान।
उतरत कोमल नी लखै, ताहि अल्हैया जान॥

राग—अल्हैयाबिलावल	वर्जित स्वर—आरोह में मध्यम
थाट—बिलावल	आरोह—सा, रे, गप, ध नि सां
जाति—षाडव सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध, प, मग रेसा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—गरे, गप, धनिसां
स्वर—अवरोह में दोनों नि	गायन समय— प्रातःकाल

बिलावल राग से ही अल्हैयाबिलावल की उत्पत्ति हुई है। अवरोह में कोमल निषाद का थोड़ा सा प्रयोग इसके सौन्दर्य को बढ़ाता है। निषाद और गान्धार इसमें वक्र हैं।

३—खमाज

दोउ निषाद नीके लगें, आरोही रे हानि।
गनि वादी सम्वादि तें, खम्माजहि पहिचानि॥

राग—खमाज	वर्जित स्वर—आरोह में ऋषभ
थाट—खमाज	आरोह—सा, गम, प, धनिसां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प, मग, रेसा
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—निध, मप, ध, मग
स्वर—दोनों नि	गायन समय—रात्रि दूसरा प्रहर

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस राग के आरोह में धैवत कुछ दुर्बल रहता है। आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल निषाद लिया जाता है। इस राग का वैचित्र्य ग म प नि इन चार स्वरों पर निर्भर है। आरोह में पंचम स्वर पर अधिक नहीं ठहरना चाहिये। इसीलिये कोई-कोई गायक ग म ध नि सां, इस प्रकार पञ्चम छोड़कर भी तानें लेते देखे जाते हैं तथा कोई-कोई ग म प नि सां, इस प्रकार स्वर लेते हैं।

४—यमन

शुद्ध सुरन के सङ्ग जब, मध्यम तीवर होय।
गनि वादी संवादि तें, यमन कहत सब कोय॥

राग—यमन	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सारेग, म॑प, ध, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध, प, म॑ग, रे सा।
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—निरेगरे, सा, पम॑ग, रे, सा।
स्वर—म॑ तीव्र, शेष स्वर शुद्ध	गायन-समय—रात्रि का प्रथम प्रहर।

यह पूर्वाङ्ग वादी राग है। कभी-कभी इसमें कोमल मध्यम का प्रयोग भी विवादी स्वर के नाते कर दिया जाता है, तब कुछ लोग उसे यमनकल्याण कहते हैं।

५—काफी

कोमल गनी लगाय कर, गावत आधी रात।
पस वादी सम्वादि तें, काफी राग सुहात॥

राग—काफी	वर्जित—कोई नहीं
थाट—काफी	आरोह—सारेग॒ म, प, धनि॒सां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि॒ ध, प, मग॒, रे, सा।
वादी—प, सम्वादी सा	पकड़—सासा रेरे, ग॒ग॒, मम, प।
स्वर—ग॒, नि॒ कोमल, बाकी शुद्ध	गायन-समय—मध्य रात्रि

कभी-कभी इसके आरोह में तीव्र गांधार और तीव्र निषाद लेकर इसमें विचित्रता पैदा की जाती है। इस राग का वैचित्र्य सा ग॒ प नि॒ इन स्वरों पर बहुत कुछ अवलम्बित है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

६—भैरवी

कोमल सब ही सुर भले मध्यम वादि बखान ।
षड्ज जहाँ संवादि है, ताहि भैरवी जान ।।

राग—भैरवी	वर्जित—कोई नहीं
थाट—भैरवी	आरोह—सा, रे॒ग॒म, पध॒, नि॒सां ।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां, नि॒ध॒प, मग॒, रे॒सा ।
वादी—म, सम्वादी-सा ।	पकड़—म, ग॒, सारे॒सा, ध॒नि॒सा ।
स्वर—म शुद्ध, शेष स्वर कोमल	गायन-समय—प्रातःकाल

कोई-कोई इस राग में ध वादी और ग सम्वादी मानते हैं। यद्यपि इस राग का गायन-समय प्रातःकाल है, किन्तु कुछ सङ्गीतज्ञ इसे सर्वकालिक राग मानकर चाहे जिस समय गाते-बजाते हैं। कोई-कोई गायक इसमें रे-मं-नि इन तीव्र स्वरों का प्रयोग विवादी स्वर के नाते करते हैं, किन्तु इस कार्य में सावधानी की आवश्यकता है।

७—भूपाली

मनि वर्जित कर गाइये, मान थाट कल्यान ।
ग ध वादी-संवादि सों भूपाली पहचान ।।

राग—भूपाली	वर्जित स्वर—म, नि
थाट—कल्याण	आरोह—सा रे ग प, धसां ।
जाति—औड़व	अवरोह—सां, धप, ग रे, सा ।
वादी—ग, सम्वादी-ध	पकड़—ग, रे, साध, सारेग, पग, धपग,रे,सा
स्वर—सब शुद्ध	गायन-समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

यह बहुत सरल और मधुर राग है। गाते समय इसे शुद्धकल्याण, जेतकल्याण और देशकार से बचाने में कुशलता की आवश्यकता है। यह केवल पाँच स्वरों का अपने ढङ्ग का स्वतन्त्र राग है।

८—सारङ्ग (शुद्ध)

वर्जित कर गन्धार सुर गावत काफी अङ्ग ।
दोऊ मनि, संवाद रिप कहत शुद्धसारंग ।।

राग—शुद्ध सारंग	वर्जित स्वर—ग
थाट—काफी	आरोह—सा रे म प मंपनिसां ।
जाति—षाडव	अवरोह—सां नि॒ प मं पध पमरे नि॒सा ।
वादि—रे, सम्वादी-प	पकड़—सा, रेमरे, प, मंप, नि॒प, मंप,मरे,सा
स्वर—दोनों म, दोनों नि	गायन-समय—दिन का दूसरा प्रहर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस राग का उल्लेख 'हृदयप्रकाश' व 'हृदय कौतुक' ग्रन्थों में पाया जाता है। मध्यमादसारङ्ग में धैवत वर्जित है, किन्तु शुद्धसारङ्ग में धैवत लगता है, इसलिये यह राग उससे अलग अपना अस्तित्व रखता है। गौड़सारङ्ग से भी यह बिलकुल अलग है क्योंकि गौड़सारङ्ग कल्याण थाट का राग है और यह काफी थाट का है; इसी प्रकार नूरसारंग से भी यह बचा लिया जाता है, क्योंकि नूरसारंग में शुद्ध मध्यम नहीं है।

९—बिहाग

गनि सम्वाद बनायकर, चढ़ते रिध को त्याग।
रात्रि दूसरे प्रहर में, गावत राग बिहाग॥

राग—बिहाग	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ध
थाट—बिलावल	आरोह—सा ग म प नि सां
जाति—औडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—ऩिसा, गमप, गमग, रेसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसके आरोह में तो रे - ध वर्जित हैं ही, किन्तु अवरोह में भी रे - ध अधिक प्रबल नहीं रखने चाहिये, वरना बिलावल की छाया दीखने का भय रहता है। विवादी स्वर के नाते कभी-कभी इसमें तीव्र मध्यम का भी प्रयोग देखने में आता है। अवरोह में निषाद से पंचम पर आते समय तथा गांधार से षड्ज पर आते समय कुशलता से चलना चाहिये।

१०—हमीर

कल्यानहिं के मेल में, दोनों मध्यम जान।
धग वादी संवादि सों, राग हमीर बखान॥

राग—हमीर	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सारेसा, गमध, निध सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंपधप, गमरेसा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—सारेसा गमध
स्वर—दोनों मध्यम, बाकी शुद्ध	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में थोड़ा-सा करना चाहिये। शुद्ध मध्यम आरोह-अवरोह दोनों में है। इस राग के अवरोह में कभी-कभी धैवत से पंचम पर आते समय ध नि़ प इस प्रकार कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते देखने को मिलता है। कोई-कोई गुणी इसमें पंचम वादी मानते हैं, किन्तु भातखण्डे जी के मतानुसार इसका वादी स्वर धैवत ही ठीक है।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

११–देस

वादी रे, संवादि पा, दोउ निषाद लग जायँ।
देस राग संपूर्ण करि, मध्य रात्रि में गायँ ॥

राग—देस	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—खमाज	आरोह—सा, रे, म, प, नि, सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प, म ग, रे ग सा
वादी—रे, सम्वादी प	पकड़—रे, मप, निधप, पधपम, गरेगसा
स्वर—दोनों निषाद, शेष स्वर शुद्ध	समय—मध्य रात्रि

देस राग का स्वरूप सोरठ से बहुत मिलता-जुलता है, अतः देस के बाद सोरठ या सोरठ के बाद देस का गाना कठिन पड़ता है। इस राग में गांधार स्वर स्पष्ट रूप से लिया जाता है, किन्तु सोरठ में उसे कुछ दबा हुआ रखते हैं। इसके आरोह में ग और ध यह दोनों स्वर दुर्बल हैं, अतः कम प्रयोग किये जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि देस के आरोह में ग-ध वर्जित हैं।

१२–भैरव

धरि वादी संवादि करि, रिध कोमल सुर मान।
प्रात समय नीको लगे, भैरव राग महान ॥

राग—भैरव	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—भैरव	आरोह—सा रे ग म, प ध, नि सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध, पमग, रेसा
वादी—ध, सम्वादी रे	पकड़—सा, गम, प, ध, प
स्वर—रे ध कोमल, बाकी शुद्ध	समय—प्रातःकाल

यह बहुत प्राचीन और गम्भीर राग है। कभी-कभी इसके अवरोह में कुशल गायक कोमल निषाद का प्रयोग भी करते हैं। इस राग में रे ध स्वर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं इन स्वरों का प्रयोग करते समय इसे कालिंगड़ा और रामकली से बचाना चाहिये। भैरव के आरोह में ऋषभ का अल्पत्व रहता है एवं मध्यम से ऋषभ पर मींड लेकर आने में इसका माधुर्य बढ़ता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१३–भीमपलासी

जब काफी के मेल में, चढ़ते रिध को त्याग ।
गनि कोमल, संवाद मस, भीमपलासी राग ॥

राग—भीमपलासी	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ध
थाट—काफी	आरोह – निसागम, प, नि सां
जाति—औडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधपम, गरेसा
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—निसाम, मग, पम, ग मगरेसा
स्वर—ग नि कोमल, बाकी शुद्ध	समय—दिन का तीसरा प्रहर

इस राग के आरोह में ऋषभ और धैवत दुर्बल रहते हैं, अर्थात् आरोह में इनका प्रयोग कम रहता है और सा, म, प इन स्वरों का प्राबल्य रहता है। इस राग को गाते समय धनाश्री राग से बचाना चाहिये जो कि काफी थाट का है। किन्तु पगमग इन स्वरसंगतियों से धनाश्री और भीमपलासी अलग-अलग हो जाते हैं। साथ ही इस राग में म वादी और धनाश्री में प वादी दिखाकर भी इनका मिश्रण बचाया जा सकता है।

१४–बागेश्री

गनि कोमल सम्वाद मस, आरोही रिप काट।
मधुर राग बागेसरी, लखि काफी के थाट ॥

राग—बागेश्री	वर्जित स्वर—आरोह में रे प
थाट—काफी	आरोह—सा म ग म ध नि सां
जाति—औडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध मग मग रे सा
वादी—म, संवादी सा	पकड़—सा, निधसा, मधनिध, म, गरे, सा
स्वर—ग नि कोमल, बाकी शुद्ध	समय—मध्यरात्रि

मध्यम, धैवत और निषाद स्वरों की संगत इस राग की शोभा बढ़ाती है। बागेश्री के आरोह में ऋषभ स्वर का प्रयोग बहुत कम होता है या बिलकुल छोड़ दिया जाता है। इस राग में पंचम स्वर के प्रयोग पर मतभेद पाया जाता है। कोई-कोई गुणीजन पंचम को बिलकुल वर्जित रखते हैं और कोई-कोई पंचम को अवरोह में लेना स्वीकार करते हैं एवं कोई-कोई पंचम स्वर को आरोह-अवरोह दोनों में लेते हैं; इसीलिये इस राग की जाति में भी मतभेद होकर षाडव, औडव-संपूर्ण या संपूर्ण ऐसे विविध प्रकार मानते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१५–तिलककामोद

षाडव सम्पूरन कह्यो, आरोही धा नाहिं।
रिप वादी सम्वादि तें, तिलककमोद बताहिं ॥

राग—तिलककामोद	वर्जित स्वर—आरोह में धैवत
थाट—खमाज	आरोह—सा रे गसा, रेमपधमप, सां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांपधमग, सारेग, सानि़
वादी—रे, सम्वादी प	पकड़—प़नि़सारेग, सा, रेपमग, सानि़
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग का स्वरूप कई जगह देस और सोरठ से मिलता है, किन्तु इधर इस राग में कोमल निषाद बिल्कुल वर्जित रखने के कारण यह राग देस और सोरठ से बच जाता है। इस राग की चाल वक्र होने से ही इसकी विचित्रता बढ़ जाती है। महाराष्ट्र में तिलककामोद गाते समय दोनों निषाद लेने का रिवाज है।

१६–आसावरी

गधनी कोमल सुर लगें, चढ़त गनी न सुहात।
धग वादी सम्वादि तें, आसावरी कहात ॥

राग—आसावरी	वर्जित स्वर—आरोह में ग, नि
थाट—आसावरी	आरोह—सा, रेमप, ध॒ सां
जाति—औडुव-सपूर्ण	अवरोह—सां नि॒ध॒, प मग॒, रेसा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—रे, म, प, नि॒ध॒, प
स्वर—ग॒ ध॒ नि॒ कोमल	समय—प्रातःकाल

उत्तर भारत में आसावरी राग में कोमल ऋषभ लगाकर गाने का प्रचार है, किंतु दक्षिणी ख्याल-गायक इसे तीव्र ऋषभ से ही गाते हैं। इस राग का वैचित्र्य ग, प, ध इन तीन स्वरों पर निर्भर है। अवरोह में यह राग विशेष रूप से खिलता है।

१७–केदार

दो मध्यम केदार में, सम सम्वादि सम्हार।
आरोहन रिग वरजि कर, उतरत अल्प गँधार ॥

राग—केदार	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ग
थाट—कल्याण	आरोह—साम, मप, धप, निध, सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, प, मं प गमरेसा
वादी—सा, सम्वादी म	पकड़—सा, म, मप धपम, पम, रेसा
स्वर—दोनों मध्यम	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हमीर के समान इस राग में भी दोनों मध्यम लगाये जाते हैं, किन्तु यह इस राग की विशेषता है कि कभी-कभी इसके अवरोह में दोनों मध्यम एक के बाद दूसरा इस क्रम से आजाते हैं। केदार का आरोह करते समय षड्ज से एकदम मध्यम पर जाना बड़ा सुन्दर मालुम होता है। इसके अवरोह में कभी-कभी धैवत के साथ कोमल निषाद का अल्प प्रयोग करते हैं। इस प्रकार निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते होता है। इसके अवरोह में गांधार स्वर वक्र और दुर्बल रहता है। अतः इस स्वर का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये अन्यथा कामोदादि राग दिखाई देने लगते हैं।

१८—देशकार

जबहिं बिलावल मेल सों, मनि सुर दिये निकार।
धग वादी संवादि तें, औडुव देशीकार ॥

राग—देशकार	वर्जित स्वर—म, नि
थाट—बिलावल	आरोह—सा रे ग प ध सां।
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प गपधप ग रे सा।
वादी—ध, सम्वादी-ग।	पकड़—सा ध, प, गप, धप, गरेसा
स्वर—शुद्ध	समय—दिन का प्रथम प्रहर

इस राग को गाते समय विभिन्न स्थानों पर धैवत दिखाने में सावधानी रखनी चाहिये अन्यथा भूपाली की छाया आ सकती है। ध्यान रहे कि भूपाली राग पूर्वाङ्ग प्रबल और देशकार उत्तरांग प्रबल है।

१९—तिलंग

रिध वर्जित, दोउ नी लगें, लखि खंमाजहि अङ्ग।
गनि वादी संवादि कर, गावत राग तिलङ्ग ॥

राग—तिलंग	वर्जित स्वर—रे, ध
थाट—खमाज	आरोह—सा ग म प नि सां।
जाति—औडुव	अवरोह—सां, नि़, प, मग, सा।
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—ऩिसागमप, निसां, सांनि़प,गमग सा
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग में निषाद और पञ्चम की सङ्गत भली मालुम होती है। धैवत वर्जित होने से खमाज से यह राग अलग होजाता है। इसके अवरोह में कोई-कोई गायक थोड़ा-सा ऋषभ स्वर विवादी के नाते प्रयोग करते हैं।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२०—हिण्डोल

रिप सुर वर्जित मानकर, मध्यम तीवर बोल ।
ध ग वादी संवादि तें, औडुव राग हिंडोल ॥

राग—हिण्डोल	वर्जित स्वर—रे, प ।
थाट—कल्याण	आरोह—साग, म॑धनिध, सां ।
जाति—औडुव-औडुव	अवरोह—सां, निध, म॑ग, सा ।
वादी—ध, सम्वादी–ग	पकड़—सा, ग, म॑धनिधम॑ग, सा ।
स्वर—म॑ तीव्र, शेष स्वर शुद्ध	गायन–समय—रात्रि का प्रथम प्रहर ।

इस राग के आरोह में नि का प्रयोग कम किया जाता है और वह भी वक्र स्वर के रूप में। यदि हिण्डोल में निषाद का प्रयोग अधिक हो जाय तो सोहनी की छाया पड़ सकती है। इस राग में कोई-कोई गायक ऋषभ और शुद्ध मध्यम का किंचित प्रयोग करते हैं। उत्तम गायक इसमें गमकों का बहुत सुन्दर प्रयोग करते हैं।

२१—मारवा

रिध वादी संवादि कर, पंचम वर्जित कीन्ह ।
रे कोमल मध्यम कड़ी, राग मारवा चीन्ह ॥

राग—मारवा	वर्जित स्वर—प
थाट—मारवा	आरोह—सारे॒, ग, म॑ध, निध, सां ।
जाति—षाडव-षाडव	अवरोह—सांनिध, म॑गरे॒सा ।
वादी—रे, सम्वादी ध	पकड़—धम॑गरे॒, गम॑ग, रे॒, सा ।
स्वर—रे॒ कोमल, म॑ तीव्र ।	समय—दिन का अन्तिम प्रहर ।

इस राग के आरोह में निषाद कई स्थानों पर वक्र गति से प्रयोग होता है। रे॒ ग ध इन स्वरों पर इस राग की विचित्रता निर्भर है। अवरोह में जब ऋषभ वक्र होता है तब यह राग अधिक चमकता है। इसमें मींड़ का काम अधिक अच्छा नहीं लगता।

२२—सोहनी

तीवर मा, कोमल ऋषभ, पंचम वर्जित मान ।
ध ग वादी सम्वादि तें, कियो सोहनी गान ॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग—सोहनी	वर्जित स्वर—प
थाट—मारवा	आरोह—साग, मंधनिसां।
जाति—षाडव-षाडव	अवरोह—रें़सां, निध, मंध, मंग, रे़सा।
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—सां, निध, निध, ग, मंधनिसां।
स्वर—रे़ कोमल, मं तीव्र	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर।

इस राग में कुशल गायक विविध स्थानों पर कोमल मध्यम का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते हैं। इसमें तार षड्ज चमकता रहता है और इससे राग की रंजकता बढ़ती है। इसके आरोह में रे स्वर वर्जित तो नहीं है, किन्तु वह दुर्बल रहता है।

२३—जौनपुरी

कोमल गधनी सुर कहे, आरोही गा हानि।
वादी धा, सम्वादि गा, जौनपुरी पहचानि॥

राग—जौनपुरी	वर्जित स्वर—आरोह में ग।
थाट—आसावरी	आरोह—सा, रेम, प, ध़, ऩिसां।
जाति—षाडव सम्पूर्ण	अवरोह—सां, ऩिध़, प, मग़, रेसा।
वादी—ध, सम्वादी—ग	पकड़—मप, ऩिध़प, ध, मपग़, रेमप।
स्वर—ग़ ध़ ऩि कोमल	समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग का स्वरूप आसावरी से मिलता-जुलता है, किन्तु आसावरी के आरोह में निषाद वर्जित है और इस राग के आरोह में निषाद लेते हैं, इस प्रयोग से यह आसावरी से बच जाता है। प्रचार में आजकल जौनपुरी में दोनों निषादों का प्रयोग मिलता है।

२४—मालकौंस

रिप वर्जित, औडुव मधुर, सब कोमल सुर मान।
मस वादी सम्वादि सों, मालकौंस पहचान॥

राग—मालकौंस	वर्जित स्वर—रे, प।
थाट—भैरवी	आरोह—ऩिसा, ग़म, ध़, ऩिसां।
जाति—औडुव	अवरोह—सांऩिध़, म, ग़मग़सा।
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—मग़, मध़ऩिध़, म, ग़, सा।
स्वर—ग़ ध़ ऩि कोमल	समय—रात्रि का तीसरा प्रहर।

इस राग में ध्रुपद व ख्याल की गायकी अधिक दिखाई देती है, क्योंकि यह गम्भीर प्रकृति का राग है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२५—छायानट

जबहिं थाट कल्याण में, दोनों मध्यम पेखि।
परि वादी संवादि मों, छायानट को देखि॥

राग—छायानट	वर्जित स्वर—कोई नहीं।
थाट—कल्याण	आरोह—सा रे ग म प नि ध सां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह - सां नि ध प मंप धप गम रेसा।
वादि—प, सम्वादी-रे	पकड़—प, रे, गमप, मग, मरेसा।
स्वर—दोनों मध्यम	गायन-समय—दिन का प्रथम प्रहर।

छायानट में दोनों मध्यम लिये जा सकते हैं, किन्तु तीव्र मध्यम जब लिया जावे, तो केवल मंपधप करके ही लेना चाहिये। शुद्ध मध्यम आरोह-अवरोह दोनों में लिया जाता है। पंचम और ऋषभ की संगत इसमें भली मालुम होती है। ग नि इन दोनों स्वरों को क्रम से अवरोह और आरोह में वक्र किया जाता है। अवरोह में कभी-कभी कोमल निषाद भी विवादी स्वर के नाते लिया जाता है।

२६—कामोद

कल्याणहिं के मेल में, दोनों मध्यम लाय।
परि वादी संवादि कर, तब कामोद सुहाय॥

राग—कामोद	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सारे पमं पध पनिध सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध प मंपधप, गमरेसा
वादी—प, संवादी-रे	पकड़-रे, प, मंप, धप, गमप, गमरेसा
स्वर—दोनों मध्यम	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

इस राग में गान्धार और निषाद स्वर वक्रगति से लगते हैं। तथा यह दोनों स्वर इसमें दुर्बल रहने चाहिये। निषाद तो बहुत ही कम लगता है। कभी-कभी अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में किया जाता है। आरोही में तीव्र मध्यम का बहुत कमी के साथ प्रयोग किया जाता है। ऋषभ से पंचम पर जाने में कामोद स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

२७—बसन्त

रिध कोमल, संवाद सम, मध्यम के दोउ रूप।
आरोही पंचम बरजि, राग बसन्त अनूप॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग—बसन्त	वर्जित स्वर—पंचम (आरोह में)
थाट—पूर्वी	आरोह—सा ग म॑ ध रें सां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांरें नि ध प म॑गम॑ध म॑गरेसा
वादी—सा, सम्वादी म	पकड़ —म॑ध, रें, सां, रें, निधप, म॑गम॑ग
स्वर—दोनों मध्यम, कोमल रे ध	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

इस राग के दो प्रकार हैं। एक में तो दोनों मध्यम लेते हैं तथा पंचम वर्जित करते हैं। दूसरे प्रकार में पंचम वर्जित न करके इसे संपूर्ण जाति का मानते हैं। इस दूसरे प्रकार में वादी स्वर तार षड्ज और संवादी पंचम मानते हैं। किन्तु पहले प्रकार में पंचम वर्जित होने के कारण वादी-सम्वादी सा-म मानते हैं।

इस राग में दोनों मध्यम लिये जाते हैं। उत्तराङ्ग प्रधान होने के कारण इसमें तार-षड्ज पर विशेष ज़ोर रहता है।

२८—शंकरा

आरोही रे मा वरजि, अवरोही मा त्याग।
गनि वादी सम्वादि सों, कहत शंकरा राग॥

राग—शंकरा	वर्जित स्वर—आरोह में रेम, अवरोह में म
थाट—बिलावल	आरोह—साग, प, निध, सां
जाति—औडुव-षाडव	अवरोह—सांनिप, निध, गप, गरेसा
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—सां, निप, निध, सां, निप गप, गसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

कोई-कोई सङ्गीतज्ञ इसका वादी स्वर षड्ज और सम्वादी पंचम मानकर समय मध्यरात्रि मानते हैं। शंकरा के दो प्रकार देखने में आते हैं। एक प्रकार में रे-म वर्जित करके इसकी जाति औडुव मानते हैं और दूसरे प्रकार में केवल मध्यम वर्जित करके इसे षाडव जाति का राग मानते हैं। दोनों प्रकार सुन्दर हैं। इसके आरोह में ऋषभ अल्प रहता है। कुशल सङ्गीतज्ञ इस राग में तिरोभाव करते समय रे-ध का अधिक प्रयोग दिखाकर कल्याण राग का आभास दिखाते हैं, किन्तु पनिध, सांनि, यह स्वरसंगति और मध्यम का लोप इस राग को पहिचानने में सहायता देता है। शंकरा का स्वरूप बिहाग से कुछ मिलता है, किन्तु बिहाग में मध्यम स्वर स्पष्ट होने के कारण यह उससे अलग हो जाता है।

२९—दुर्गा (खमाज थाट)

जबहिं मेल खंमाज में, रिप सुर वर्जित कीन्ह।
दोउ निषाद सम्वाद गनि, औडुव दुर्गा चीन्ह॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग—दुर्गा	वर्जित स्वर—रे, प
थाट—खमाज	आरोह—सा ग म ध नि सां ।
जाति—औडुव	अवरोह—सां नि॒ ध म ग सा ।
वादी—ग, संवादी नि	पकड़—गसा नि॒ध़ नि़सा मग मध नि॒ध मग सा ।
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर ।

दुर्गा राग के दो प्रकार हैं, उपरोक्त प्रकार खमाज थाट का है, इसमें रे प वर्जित करके औडुव जाति का मानते हैं। दूसरा प्रकार बिलावल थाट का दुर्गा है, उसे भी हम नीचे दे रहे हैं। खमाज थाट के दुर्गा में धम की स्वरसंगति रक्तिवर्धक होती है, कभी-कभी इसके आरोह में तीव्र निषाद का प्रयोग भी करते हैं।

३०–दुर्गा (बिलावल थाट)

मस वादी संवादि लखि, गनि सुर वर्जित मान ।
तबहिं बिलावल मेल की, दुर्गा ले पहचान ॥

राग—दुर्गा	वर्जित स्वर—ग, नि
थाट—बिलावल	आरोह—सा रे म प ध सां ।
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प म रे सा ।
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—प, मप, धमरे, प, सांध,सांरेंपध,मरेसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस दुर्गा में गान्धार के न होने से सोरठ का रूप झलकने लगता है, किन्तु सोरठ की आरोही में रे, ध नहीं होते और इस राग में रे, ध मौजूद हैं, इसलिये यह उससे बच जाता है। इस राग में मध्यम स्पष्ट लगने से राग खिलता है।

३१–शुद्धकल्याण

कल्यानहि के मेल में, चढ़ते मनी हटाइ ।
वही शुद्धकल्यान है, गध सम्वाद सुहाय ॥

राग—शुद्धकल्याण	वर्जित स्वर—आरोह में म, नि
थाट—कल्याण	आरोह—सा रे ग पध सां ।
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प मं ग रे सा ।
वादी—ग, सम्वादी—ध	पकड़—ग, रेसा, नि़ ध़ प़ सा, गरेपरे सा
स्वर—मं (अवरोह में)	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस राग की साधारण प्रकृति भूपाली के समान है। म नि यह दोनों स्वर यद्यपि आरोह में ही वर्जित हैं, किन्तु अवरोह में भी इन स्वरों को वर्जित करके बहुत से लोग इस राग को गाते हैं। अवरोह में यद्यपि तीव्र मध्यम भी लिया जा सकता है, किन्तु इस स्वर को पञ्चम से गांधार तक की मींड लेकर दिखाते हैं। जलद तानों में तीव्र मध्यम छोड़ दिया जाता है केवल निषाद अवरोह में कोई-कोई ले लेते हैं, इस कृत्य से भूपाली की भिन्नता दिखाई दे जाती है। प, रे का मिलाप रक्तिवर्धक होता है। इस राग में धैवत स्वर को भूपाली की अपेक्षा कम प्रयोग में लाना उचित है।

३२–गौड़सारङ्ग

दोऊ मध्यम लगि रहे, कल्यानहिं के अङ्ग।
गध वादी सम्वादि तें, बनत गौड़सारङ्ग ॥

राग—गौड़सारङ्ग	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सा, गरेमग, पमंधप, निधसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांधनिप, धमंपग मरे, प, रेसा।
वादी—ग, सम्वादी ध	पकड़—सा, गरेमग, परेसा।
स्वर—दोनों मध्यम	समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। यद्यपि इसमें गांधार, निषाद वक्र हैं किन्तु राग का मुख्य अङ्ग "गरे मग" इस स्वरसमुदाय पर आधारित है, इसलिये कई स्थानों पर ग-नि का वक्रत्व छिप जाता है। तीव्र मध्यम केवल आरोह में ही लिया जा सकता है। अवरोह में किंचित कोमल निषाद कुशलतापूर्वक ले सकते हैं।

३३–जैजैवन्ती

तीवर कोमल रूप दोउ, मनि के दिये लगाय।
रिप वादी सम्वादि सों, जैजैवन्ति कहाय ॥

राग—जैजैवन्ती	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—खमाज	आरोह—सारे गमप, निसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, धम रेगरेसा।
वादी—रे, सम्वादी प	पकड़—रेगरेसा, निधप, रे
स्वर—दोनों ग, दोनों नि	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसके आरोह में तीव्र ग नि और अवरोह में कोमल ग नि लेते हैं, लेकिन कभी-कभी अवरोह में भी तीव्र गान्धार लिया जा सकता है। कोमल ग केवल अवरोह में ही

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ले सकते हैं और यह स्वर दोनों ओर से रे ग रे इस प्रकार ऋषभ द्वारा घिरा रहता है। यह राग सोरठ के अङ्ग का है। मन्द्र पंचम और मध्य ऋषभ का मिलाप इसमें बहुत अच्छा मालुम होता है।

३४–पूर्वी

रिध कोमल कर गाइये, दोनों मध्यम मान।
गनि वादी सम्वादि सों, राग पूर्वी जान॥

राग—पूर्वी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—पूर्वी	आरोह—सा, रेग, मंप, ध, निसां
जाति—संपूर्ण	अवरोह—सां नि धप, मं, ग, रे सा
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—नि़ सारेग, मग, मं, ग, रेगरेसा
स्वर—रे ध कोमल, दोनों मध्यम	समय—दिन का अन्तिम प्रहर

सा, ग, प, इन तीन स्वरों पर इस राग की विचित्रता निर्भर है। उत्तर भारत में कोई-कोई सङ्गीतज्ञ इसमें तीव्र धैवत भी लेते हैं, तो कोई-कोई दोनों धैवतों का उपयोग करते हैं। इस राग के अवरोह में कोमल म का प्रयोग गांधार के साथ बहुत सुन्दर प्रतीत होता है।

३५–पूर्याधनाश्री

मध्यम तीव्र लगाय कर, रिध कोमल सुर मान।
राग पूरियाधनाश्री, परि सम्वाद बखान॥

राग—पूरियाधनाश्री	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—पूर्वी	आरोह—नि़रेगमंप, धप, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—रेंनिधप, मंग मंरेग, रेसा
वादी—प, सम्वादी रे	पकड़—नि़रेग, मंप, मंग, मंरेग, धमंग, रेसा
स्वर—रे ध कोमल, मं तीव्र	समय—सायंकाल

यह राग पूर्वी से मिलता-जुलता है, किन्तु पूर्वी में दोनों मध्यम हैं और इसमें तीव्र मध्यम ही है, इस भेद से यह पूर्वी से बचा लिया जाता है। इस राग में मं रेग तथा रेंनिधप यह स्वर-समुदाय रागदर्शक है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

३६–परज

दोनों मध्यम लीजिये, रिध कोमल सुखदाइ ।
सप वादी सम्वादि लखि, गुनिजन परज सुहाइ ॥

राग—परज	वर्जित—कोई नहीं
थाट—पूर्वी	आरोह—निसाग, मंपधनिसां ।
जाति—संपूर्ण	अवरोह—सां, निधप, मंप, मगरेसा ।
वादी—सा, सम्वादी प	पकड़—सां, निधप, मंपधप, गमग ।
स्वर—रे धु कोमल, दोनों म	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

यह राग उत्तरांग प्रधान है, अतः इसमें तार षड्ज की चमक बहुत सुन्दर मालुम देती है। इस राग की गति कुछ चञ्चल है, इसीलिये बसन्त राग से यह अलग पहचान लिया जाता है। जब इस राग की कुछ तानें निषाद पर समाप्त की जाती हैं, तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है। सांरेंसांरें, निधनि यह स्वर इसमें बारम्बार दिखाई देते हैं। धपगमग, मंधनिसां यह स्वरसमुदाय रागदर्शक है।

३७–पूरिया

थाट मारवा में जबहिं, दीनो पंचम त्याग ।
गनि वादी सम्वादि सों, कह्यो पूरिया राग ॥

राग—पूरिया	वर्जित स्वर—प
थाट—मारवा	आरोह—निरेसा ग मंध निरेंसां
जाति—षाडव	अवरोह—सां नि ध मं ग रे सा
वादी—ग, संवादी-नि	पकड़—ग, निरेसा, निधनि मंध, रेसा
स्वर—रे कोमल, मं तीव्र	समय—संधिप्रकाश काल (सायंकाल)

इस राग का मुख्य चलन मन्द्र और मध्य स्थानों में रहता है। यह संधिप्रकाश राग है। निषाद और मध्यम की संगति इसकी शोभा बढ़ाती है। मन्द्र सप्तक में सा, निधनिमंग यह स्वर राग का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

३८–सिंदूरा

गनि आरोहन त्याग कर, कोमल गनी बखान ।
सप सम्वाद बनाय कर, सुघर सिंदूरा जान ॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग—सिंदूरा	वर्जित स्वर—आरोह में ग, नि
थाट—काफी	आरोह—सा, रेमप, ध सां।
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां निधपमग रेमग रेसा।
वादी—सा, सम्वादी—प	पकड़—सा, रेमप, ध, सां निधपमग रेसा
स्वर—नि ग कोमल	समय—सायंकाल

इस राग को सैंधवी भी कहते हैं। कोई-कोई गुणीजन निषाद के वर्जित्व पर मतभेद रखते हैं, अतः आरोह में कभी-कभी कोमल नि ले लिया जाता है। राग-विबोध में इसे "सिधोड़ा" ऐसा नाम दिया है।

३९—कालिंगड़ा

रिध कोमल कर गाइये, भैरव थाट प्रमान।
सप सम्वादी वादि सों, कालिंगड़ा पहचान॥

राग—कालिंगड़ा	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—भैरव	आरोह—सारेगम, पधनिसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मगरेसा।
वादी—प, सम्वादी सा	पकड़—धप, गमग, नि, सारेग, म
स्वर—रे ध कोमल,	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर।

कालिंगड़ा गाते समय रे ध स्वरों पर आन्दोलन अधिक देने से भैरव की झलक आने लगती है। इसीलिये इसमें पंचम वादी और षड्ज सम्वादी मानते हैं, क्योंकि धैवत वादी होगा तो उस पर आन्दोलन भी अधिक होंगे। परज राग से भी इसकी प्रकृति बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

४०—बहार

चढ़त रि उतरत धा वरजि, कोमल कर गंधार।
दोउ निषाद, संवाद मस, षाडव राग बहार॥

राग—बहार	वर्जित स्वर—आरोह में रे, अवरोह में ध
थाट—काफी	आरोह—सा, गम, पगम, नि धनि सां।
जाति—षाडव-षाडव	अवरोह—सां, निपमप, गम, रेसा।
वादी—म, सम्वादी—सा	पकड़—मपगम, ध, निसां
स्वर—ग कोमल, निषाद दोनों	समय—मध्यरात्रि

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसका गायन-समय शास्त्रों में यद्यपि मध्य रात्रि का दिया गया है, किन्तु बसन्त ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया-बजाया जा सकता है, ऐसा संगीतज्ञों का मत है। ख्याल गायकी में कहीं-कहीं दोनों धैवत और दोनों गान्धारों का प्रयोग भी इस राग में पाया जाता है। इस राग में म ध की सङ्गति भली मालुम देती है। निनिपम, पग, म, ध, निसां, यह स्वरसमुदाय बहार में बार-बार दिखाई देता है।

४१—अड़ाना

कोमल गध, दोउ नी लगें, सप सम्वाद बताहिं।
चढ़त ग, उतरत धा बरजि, राग अडाणा माहिं॥

राग—अड़ाना	वर्जित स्वर—आरोह में ग, अवरोह में ध
थाट—आसावरी	आरोह—सारेमप, धनिसां।
जाति—षाडव	अवरोह—सांधनिपमप, गम, रेसा।
वादी—सा, सम्वादी प	पकड़—सां, ध निसां, ध, निपमप, गमरेसा
स्वर—ग ध कोमल तथा दोनों निषाद	समय—रात्रि का तीसरा प्रहर

कोई-कोई ग्रन्थकार इस राग में तीव्र धैवत लगाते हैं और इसे काफी थाट का मानते हैं। इस राग का आरोह करते समय गान्धार छोड़ देते हैं। किन्तु आरोह में गान्धार "निसागम" इस प्रकार प्रायः लिया जाता है। अवरोह में "ग म रे सा" इस प्रकार वक्र गान्धार है। मध्य और तार सप्तक में इसका विस्तार अधिक है।

४२—धानी

वादी गा, संवादि नी, गनि सुर कोमल जान।
रिध वर्जित कर गाइये, औडुव धानी मान॥

राग—धानी	वर्जित स्वर—रे, ध
थाट—काफी	आरोह—सा, गमप, निसां।
जाति—औडुव	अवरोह—सां, निप, मग, सा।
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—निसाग, मप, निसां, सांनिप मग, सा।
स्वर—ग नि कोमल	समय—सर्वकालिक

कोई-कोई गायक धानी के अवरोह में थोड़ा सा ऋषभ लेते हैं। प्राचीन ग्रंथों में भी धानी का उल्लेख मिलता है। 'सङ्गीत पारिजात' में रे वर्जित तथा रे ध वर्जित इस प्रकार धानी के दो रूप दिये हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४३–मांड

सप वादी सम्वादि कर, नी स्वर कंपित होइ।
शुद्ध और सम्पूर्ण है, मांड राग कह मोइ॥

राग—मांड	वर्जित—कोई नहीं
थाट—बिलावल	आरोह—सागरेमग पमधप निधसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांधनिप धमपग मसा।
वादी—सा, संवादी-प	पकड़—सा, रेग, सा, रे, ममप,ध, पधसां।
स्वर—शुद्ध	समय—सर्वकालिक

यह राग मालवा (राजस्थान) प्रांत से उत्पन्न हुआ है, इसका स्वरूप वक्र है। इस राग में सा, म, प यह स्वर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। निषाद पर कम्पन इस राग की विशेषता है। आरोह में रे – ध स्वर दुर्बल हैं, अवरोह में वक्र हैं। जैसे साग, रेम, गप इत्यादि।

४४–गौड़मल्लार

गनि के दोनों रूप लखि, चढ़ते अल्प सम्हार।
मस वादी सम्वादि तें, कहत गौड़मल्हार॥

राग—गौड़मल्हार	वर्जित—कोई नहीं
थाट—काफी	आरोह—सा, रेमप, धसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि॒रमपग॒मरेसा।
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—रेगरेमगरेसा, पमप धसां धपम।
स्वर—दोनों ग, नि	समय-दोपहर दिन, वर्षाऋतु में प्रत्येक समय

इस राग के बारे में दो मत हैं। एक मत इस राग को काफी थाट का मानता है तो दूसरा मत इसे खमाज थाट का बताता है। यह मतभेद लेकर गांधार स्वर के बारे में दोनों मत अपने विचार भिन्न रखते हैं। ख्याल-गायक तीव्र गांधार लेते हैं और ध्रुपद के गायक कोमल ग॒ लगाते हैं, एवं कभी-कभी दोनों गांधारों का प्रयोग भी इस राग में दिखाई देता है। यह मौसमी राग है, अतः इसके गीतों में प्रायः वर्षाऋतु का वर्णन मिलता है।

४५–झिंझोटी

गा वादी, सम्वादि नी कोमल लियो निषाद।
राग झिंझोटी गाइये प्रथम रात्रि के बाद॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग—झिंझोटी	वर्जित—कोई नही
थाट—खमाज	आरोह—सारेगम पधनिसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा।
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—धसा, रेम, ग, पमगरे, सानिधप
स्वर—नि कोमल	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

यह खमाज थाट का आश्रय राग है। इस राग का विस्तार मन्द्र व मध्य सप्तक में विशेष रूप से रहता है। "धसा, रे मग" यह स्वरसमुदाय रागवाचक है।

४६-श्रीराग

आरोहन गध बरज कर, रिध कोमल, मा तीख।
रिप वादी सम्वादि तें, श्रीराग को सीख॥

राग—श्री	वर्जित—आरोह में ग, ध
थाट—पूर्वी	आरोह—सा, रे मं प, निसां।
जाति—औडुव सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, पमंगरे, सा।
वादी—रे, सम्वादी प	पकड़—सा, रेरे, सा, प, मंगरे, गरे, रे, सा।
स्वर—रे, ध कोमल, मं तीव्र	समय—सायंकाल (सूर्यास्त)

यह बहुत गम्भीर और लोकप्रिय राग है। रे - प की सङ्गति जब इस राग में करते हैं, तब यह बहुत मधुर मालुम देता है। "सा ग रे रे सा" यह स्वर-समुदाय इसमें प्रिय मालुम होता है।

४७-ललित

दो मध्यम, कोमल ऋषभ, पंचम वर्जित जान।
मस वादी सम्वादि सों, ललितराग पहिचान॥

राग—ललित	वर्जित—प
थाट—मारवा	आरोह—निरेगम मंमग मंधसां।
जाति—षाडव	अवरोह—रें निध मंध मंमग रे सा।
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—निरेगम धमंधमंम ग
स्वर—कोमल रे, दोनों म	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस राग में धर्म धर्म यह स्वर-प्रयोग तथा नि़रेगमममग, यह स्वरसमुदाय राग की विशेषता को व्यक्त करते हैं। कुछ ग्रन्थों में इस राग में कोमल धैवत लिखा है, किन्तु इधर तीव्र धैवत ही लिया जाता है।

४८—मियांमल्लार

गा कोमल, सम्वाद मस, उतरत धैवत टार।
दोउ निषाद के रूप ले, कहि मीयांमल्लार ॥

राग—मियांमल्लार	वर्जित स्वर—अवरोह में ध
थाट—काफी	आरोह—रेमरेसा, मरे, प, निध, निसां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिप, मप, गम, रेसा
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़-रेमरेसा,नि़प़म़प़,नि़ध़नि़साप,गमरेसा
स्वर—दोनों निषाद, ग कोमल	समय—मध्यरात्रि

कानड़ा और मल्लार के संयोग से यह राग बना है। इस राग में दोनों निषाद लगते हैं और कभी-कभी कुशल गायक एक के बाद दूसरा निषाद बराबर लेकर भी राग-हानि से इसे बचा लेते हैं। इस राग का आलाप विलम्बित लय में करके जब उसका विस्तार मन्द्र स्थान में होता है, तब बड़ा सुन्दर और कर्णप्रिय लगता है। कहते हैं कि यह राग मियां तानसेन के द्वारा आविष्कृत हुआ है। वादी-सम्वादी के बारे में कुछ लोगों का मत वादी सा, सम्वादी प के पक्ष में है, किंतु भातखण्डे के अनुयायी अधिकतर म वादी तथा सा सम्वादी ही मानते हैं।

४९—दरबारीकान्हड़ा

गधनी कोमल जानिए, उतरत धैवत नाहिं।
सुन दरबारीकान्हरा, रिप संवाद बताहिं ॥

राग—दरबारीकान्हड़ा	वर्जित स्वर—अवरोह में ध
थाट—आसावरी	आरोह—नि़सारेगरेसा मप धनिसां
जाति—सम्पूर्ण-षाडव	अवरोह—सां धनिप, मप ग म रेसा
वादी—रे, सम्वादी प	पकड़—ग, रेरे, सा, ध़, नि़सा, रे, सा
स्वर—ग ध नि कोमल	समय—मध्यरात्रि

इस राग में गांधार दुर्बल है, अतः गुणी लोग जलद और सीधी तानों में इस स्वर को बिलकुल ही छोड़ देते हैं। गांधार पर आन्दोलन इस राग की विचित्रता बढ़ाता है। निप की संगत इसमें बड़ी प्यारी लगती है। कहते हैं कि मियां तानसेन ने यह राग तैयार करके दरबार में अकबर बादशाह को सुनाकर प्रसन्न किया था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

५०—तोड़ी

रिगधा कोमल, तीव्र मा, धग संवाद बखान ।
सम्पूरन तोड़ी कही, द्वितीय प्रहर दिन मान ॥

राग—तोड़ी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—तोड़ी	आरोह—सा, रेग, मंपध, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंग, रे, सा
वादी—ध, सम्वादी—ग	पकड़—धनिसा, रे, गरे, सा, मंग रेग, रेसा
स्वर—रे ग ध कोमल, मं तीव्र	समय—दिन का दूसरा प्रहर।

इस राग में पंचम स्वर का प्रयोग कुछ कमी के साथ करना चाहिये। नये विद्यार्थियों को यह राग गाते समय, विकृत स्वरों का उचित स्थानों पर उपयोग करने में कठिनाई पड़ती है। इस राग की विचित्रता रे, ग तथा ध इन तीन स्वरों पर निर्भर है। तोड़ी कई प्रकार की प्रचलित है, किन्तु राग तोड़ी के लिये तोड़ी, शुद्धतोड़ी, दरबारीतोड़ी अथवा मियां की तोड़ी यह नाम लिखे जाते हैं। इनके अतिरिक्त बिलासखानीतोड़ी, देसीतोड़ी, आसावरीतोड़ी, गान्धारीतोड़ी, जौनपुरीतोड़ी, बहादुरीतोड़ी, लाचारीतोड़ी इत्यादि जितने नाम हैं, वे इस राग से भिन्नता रखते हैं अर्थात् वे राग बिलकुल अलग-अलग हैं।

५१—मुलतानी

कोमल रिगधा, तीव्र मा, पस सम्वाद सजाइ ।
चढ़ते रिध को त्यागकर, मुलतानी समझाइ ॥

राग—मुलतानी	वर्जित स्वर—आरोह में रे ध
थाट—तोड़ी	आरोह—निसा गमंप निसां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंग, रेसा
वादी—प, सम्वादी—सा	पकड़—निसा मंग, पग, रेसा
स्वर—रे ग ध कोमल, मं तीव्र।	समय—दिन का चौथा प्रहर।

तोड़ी की तरह इस राग में भी रे ग ध का प्रयोग बड़ी कुशलता से करना होता है। इन स्वरों के ग़लत उपयोग से राग का स्वरूप बदल सकता है और तोड़ी की छाया आ सकती है, मुलतानी में म ग की संगत और पुनरावृत्ति होती है। काफी थाट से आगे संधिप्रकाश रागों में प्रवेश करने के लिये यह राग अत्यन्त उपयोगी है। इस राग में सा प नि विश्रांति-स्थान माने जाते हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी तीव्र मध्यम की मुलतानी पाई जाती है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

५२–रामकली

भैरव के ही मेल में, मनि दोउ रूप लखाय।
रिध कोमल सम्वाद पस, रामकली बन जाय ॥

राग—रामकली	वर्जित—कोई नहीं
थाट—भैरव	आरोह—साग मप धनिसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध पमं पधनिध पगमरेसा।
वादी—पंचम, संवादी-षड्ज	पकड़—धप मंप धनिधपग म रेसा।
स्वर— रे ध कोमल व मनि दोनों	समय—प्रातःकाल

रामकली का साधारण स्वरूप भैरव राग के समान है। रामकली के कई प्रकार सुने जाते हैं। एक प्रकार में म नि आरोह में वर्जित हैं, इस प्रकार को शास्त्राधार तो है, किन्तु प्रचार में बहुत कम दिखाई देता है।

रामकली का एक और प्रकार है, जिसके आरोह-अवरोह में सातों स्वर लगते हैं, किन्तु यह प्रकार भैरव से मिल जाता है, उससे बचने के लिये इस प्रकार में गुणी लोग एक परिवर्तन यह बताते हैं कि भैरव का विस्तार मन्द्र और मध्य स्थान में रहना चाहिये और रामकली का मध्य और तार स्थान में विस्तार होना चाहिये।

रामकली का एक तीसरा प्रकार भी है, जिसमें दोनों म और दोनों नि प्रयोग किये जाते हैं, यह प्रकार ख्याल गायकों से प्रायः सुनने को मिलता है। इस प्रकार में तीव्र मं और कोमल नि इन दोनों स्वरों का प्रयोग एक अनूठे ढंग से होता है। मंपधनिधप, गमरेसा इस प्रकार की तान रामकली के इस प्रकार में प्रायः मिलती हैं।

उपर-वर्णित प्रकारों के कारण इसके वादी-सम्वादी में भी मतभेद होना स्वाभाविक है, किन्तु दोनों मध्यम और दोनों निषाद वाले प्रकार में वादी पंचम और सम्वादी षडज मानना ठीक होगा, ऐसा ही भातखण्डे पद्धति के अनुयायी भी मानते हैं।

५३–विभास (भैरव थाट)

जब भैरव के मेल सों, मनि सुर दिये निकास।
रिध कोमल, सम्वाद धग, औडुव रूप विभास ॥

राग—विभास	वर्जित—म नि
थाट—भैरव	आरोह—सा रे ग प धप सां।
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प गपधप गरेसा।
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—ध, प, गप, गरेसा।
स्वर—रे ध कोमल	समय—प्रातःकाल।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जिन रागों में म नि वर्जित होते हैं उनमें ग प की संगत बहुत प्रिय मालुम होती है। यह उत्तराङ्ग प्रधान राग है। विभास में जब धैवत लेकर पंचम पर राग समाप्त होता है तो श्रोताओं को बड़ा आनन्द आता है। विभास की तरह ही सायंकाल का एक राग "रेवा" है, किन्तु रेवा में ग वादी है और विभास में ध वादी है। इस भेद से गुणीजन विभास और रेवा को अलग-अलग दिखा देते हैं।

इसके अतिरिक्त "विभास" नाम के दो राग और हैं। एक विभास पूर्वी थाट का है और एक मारवा थाट का, किन्तु उपरोक्त विभास भैरव थाट का है अतः उनसे इस विभास का कोई मेल नहीं।

५४—पीलू

ग ध नी तीनों सुगन के कोमल तीवर रूप।
गनि वादी संवादि लखि, पीलू राग अनूप॥

राग—पीलू	वर्जित—कोई नहीं
थाट—काफी	आरोह—सारेग मपधप निधपसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—निधपमग, निसा।
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—निसागनिसा, पधनिसा।
स्वर—सभी लग सकते हैं	समय—दिन का तीसरा प्रहर

पीलू राग को सभी पसन्द करते हैं। भैरवी, भीमपलासी, गौरी इत्यादि रागों के मिश्रण से इसकी रचना हुई है। अतः बारहों स्वर प्रयोग करने की इस राग में छूट है। तीव्र स्वरों का प्रयोग प्रायः अवरोह में अधिक किया जाता है।

५५—आसा

औडुव सम्पूरन कहत, आरोहन गनि त्याग।
मस वादी सम्वादि तें, सोभित आसा राग॥

राग—आसा	वर्जित—आरोह में गनि
थाट—बिलावल	आरोह—सा रे म प ध सां।
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा।
वादी—म, संवादी-सा	पकड़-रेमपध सांनिधपमगरे सारेगसा निधसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसमें सभी शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। इस राग को अरबी नामक राग से बचाने में सावधानी बरतनी पड़ती है। 'आसा' के आरोह में गनि का प्रयोग अल्प अथवा वर्जित होता है।

५६—पटदीप

गा कोमल सम्वाद पस, चढ़ते रिध न लगाय।
औडुव सम्पूरन कह्यो, तब पटदीप सुहाय॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राग—पटदीप	वर्जित—आरोह में रे ध
थाट—काफी	आरोह—निसा गम पनिसां।
जाति—औडुव संपूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा।
वादी—पंचम, संवादी षड्ज	पकड़—साग मगरे सानि, सागरेसा
स्वर—कोमल गान्धार	समय—सायंकाल

यह राग भीमपलासी से बहुत कुछ मिलता-जुलता है; किन्तु भीमपलासी में कोमल निषाद है और इसमें शुद्ध है। इस कारण कोमल निषाद का बचाव करके इसे गाना चाहिये। इसी प्रकार का एक राग पटदीपकी (प्रदीपकी) नामक श्री भातखण्डे की 'क्रमिक छठी' पुस्तक में मिलता है, किन्तु उसमें कोमल निषाद तथा दोनों गान्धार लिये गये हैं, इससे वह प्रकार अलग ही है।

पटदीप राग में निषाद पर विश्रांति लेकर उस निषाद से ही जोड़कर सागरेसा यह स्वर-समुदाय लेना चाहिये, ऐसा मत श्री पटवर्धन जी का है।

५७–रागेश्री (रागेश्वरी)

आरोहन परि वर्ज्य कर, उतरत पंचम हानि।
दोऊ नी, सम्वाद गनि, रागेश्वरी बखानि॥

राग—रागेश्री	वर्जित—आरोह में प रे, अवरोह में -प
थाट—खमाज	आरोह—साग मधनिसां।
जाति—औडुव-षाडव	अवरोह—सांनि धम गरेसा।
वादी—ग, संवादी-नि	पकड़—गमधनि सांनिधऽ मगरेसा।
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर।

इसमें पंचम स्वर तो बिलकुल नहीं लगता और आरोह में ऋषभ भी नहीं लगाया जाता। धम की स्वरसंगति इसमें बहुत सुन्दर मालुम होती है। उत्तराङ्ग में बागेश्री का आभास होता है किन्तु पूर्वाङ्ग में आया हुआ तीव्र गान्धार बागेश्री का भ्रम हटा देता है, क्योंकि बागेश्री में कोमल गान्धार लगता है।

५८–पहाड़ी

औडुव करके गाइये, मनि को दीजै त्याग।
सप वादी सम्वादि ते, कहत पहाड़ी राग॥

राग—पहाड़ी	वर्जित—मनि
थाट—बिलावल	आरोह—सारेगप धसां।
जाति—औडुव	अवरोह—सांधप गप गरेसा।
वादी—षड्ज, संवादी-पंचम	पकड़—ग, रेसा, ध, पधसा।
स्वर—शुद्ध	समय—सर्वकालिक

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस राग में मध्यम और निषाद स्वर इतने दुर्बल हैं कि उन्हें वर्जित ही कहना उपयुक्त होगा। जब इस राग में भूपाली की छाया दिखाई देने लगती है, तो चतुर गायक इसके अवरोह में थोड़ा मध्यम ग मग रे सा इस प्रकार लगाकर भूपाली से इसे बचा लेते हैं। मन्द्र सप्तक के धैवत पर विश्रान्ति लेने से इस राग का सौन्दर्य बढ़ता है।

५९—जोगिया

आरोही वर्जित गनी, अवरोहन गा त्याग।
रि ध कोमल, मम्वाद मस, कहत जोगिया राग॥

राग—जोगिया	वर्जित स्वर—आरोह में गनि, अवरोह में ग
थाट—भैरव	आरोह—सा रे म प ध सां
जाति—औडव-षाडव	अवरोह—सां नि ध प ध म रे सा
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—म, रेसा, सारेरेमरेसा (सा)
स्वर—रे ध कोमल	समय—प्रातःकाल

रे म और धम की स्वरसंगति इस राग की रंजकता बढ़ाती है। मध्यम स्वर मुक्त रखने से यह राग विशेष अच्छा लगता है। संगीत-मर्मज्ञों का कहना है कि इस राग की रचना भैरव और सावेरी के संमिश्रण से हुई है। सावेरी राग कर्नाटकी ग्रंथों में पाया जाता है। भातखण्डे मतानुसार इस राग के अवरोह में किसी-किसी स्थान पर कोमल-निषाद लेते हुए कोमल धैवत पर आते हैं।

६०—मेघमल्लार

जब काफी के मेल सों, धग सुर दीने टार।
दोउ निषाद, सम्वाद सप, औडुव मेघमल्हार॥

राग—मेघमल्लार	वर्जित—धैवत, गांधार
थाट—काफी	आरोह—सा मरे मप निनिसां
जाति—औडुव	अवरोह—सां नि प मरे मनि रेसा।
वादी—सा, संवादी—प	पकड़—मरेपमरेसा, निपनिसा
स्वर—दोनों नि, बाकी शुद्ध	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

म रे प यह स्वरविन्यास मेघमल्लार की विशेषता है। ऋषभ स्वर पर होने वाला आन्दोलन इस राग की सुन्दरता बढ़ाकर राग का स्वरूप व्यक्त करता है। यह आन्दोलन
म म म
रे, रे, रे, इस प्रकार ऋषभ पर मध्यम का कण लगाकर कई बार किया जाता है। मध्यम पर अनेक बार विश्रांति होती है, जिससे सारङ्ग की छाया दूर होती है। इस राग में धैवत लगाकर भी कोई-कोई गायक गाते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ताल–मात्रा–लय विवरण

ताल—जिस आधार पर गायन-वादन और नृत्य होता है, उसकी क्रिया नापने को ताल कहते हैं। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सङ्गीत में ताल की आवश्यकता होती है। गाने-बजाने और नाचने की शोभा ताल से ही है। यथा:—

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धायोर्धजि स्मृतिः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्॥

ताल शब्द 'तल' धातु (प्रतिष्ठा, स्थिरता) से बना है। तबला, पखावज इत्यादि ताल वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। वास्तव में ताल सङ्गीत की जान है, ताल पर ही सङ्गीत की इमारत खड़ी हुई है।

मात्रा—मात्रा ताल का ही एक हिस्सा है, क्योंकि मात्राओं के योग से ही समस्त तालों की रचना हुई है। एकसी लय या चाल में गिनती गिनने को मात्रा कह सकते हैं। यदि घड़ी की एक सैकिंड को हम एक मात्रा मानलें तो १६ सैकिंड में तीनताल का ठेका बन जायगा, १२ सैकिंड में एकताल का ठेका बन जायगा। १० सैकिंड में झपताल हो जायगी। इसी प्रकार बहुत सी तालें बनी हैं।

मुख्य लय तीन प्रकार ही होती हैं—(१) विलम्बित (२) मध्यलय (३) द्रुतलय।

(१) विलम्बितलय—जिस लय की चाल बहुत धीमी हो उसे विलम्बितलय कहते हैं। विलम्बितलय का अन्दाज, मध्यलय से यों लगाया जाता है—मान लीजिये एक मिनिट में आपने एकसी चाल से ६० तक गिनती गिनी, उसे अपनी मध्यलय मान लीजिये। इसके बाद इसी एक मिनट में समान चाल से ३० तक गिनती गिनी तो विलम्बितलय कहेंगे, अर्थात् ३० तक गिनती जो गिनी गई उसकी लय, बनिस्बत ६० वाली गिनती के धीमी हो गई अर्थात् प्रत्येक गिनती में कुछ देरी लगी। "विलम्ब" का अर्थ है देरी!

(२) मध्यलय—जिस लय की चाल विलम्बित से तेज और द्रुत से कम हो उसे मध्य-लय कहते हैं। यह लय बीच की होती है, बीच का ही अर्थ है "मध्य"।

(३) द्रुतलय—जिस लय की चाल विलम्बितलय से चौगुनी या मध्यलय से दुगुनी हो उसे द्रुतलय कहेंगे। ऊपर मध्यलय में बताया गया था कि १ मिनिट में समान चाल से ६० तक गिनती गिनकर मध्यलय कायम की गई है, अब यदि १ मिनट में

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१२० तक गिनती गिनी जायगी तो निश्चय है कि गिनती की चाल तेज हो जायगी और तेजी का अर्थ है "द्रुत"।

ठेका—तबले या मृदङ्ग के लिये प्राचीन शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न-बोल वैसी ही भाषा में बना दिये जो कि उन ताल-वाद्यों से प्रकट होते हैं। उन्हीं बोलों को जब हम तबला या मृदङ्ग पर बजाते हैं, तब उसे ठेका कहते हैं। ठेका १ ही आवृत्ति का होता है, जिसमें मात्राएँ निश्चित होती हैं, उन्हीं निश्चित मात्राओं के अनुसार गाने-बजाने का नाप होता है। जैसे कहरवा ताल में ८ मात्रा हैं और इसके दो भाग हैं। प्रत्येक भाग में ४-४ मात्रा हैं, पहिली मात्रा पर सम और पांचवीं पर खाली है। इसे इस प्रकार लिखेंगे:-

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका—	धा	गि	ना	तु	ना	के	धि	न
तालचिन्ह	+				०			

यह कहरवा का ठेका हुआ, इसी प्रकार अन्य बहुत सी तालों के ठेके हैं।

दुगुन—किसी ठेके को जब दूनीलय में बजाया जाय, यानी जितने समय में कोई ठेका एक बार बजाया गया था उतने ही समय में उसे दो बार कहा जाय या बजाया जाय तो उसे दुगुन कहेंगे। इसी प्रकार किसी गीत की स्थाई या अन्तरे को जितने समय में गाया जाय और फिर उतने ही समय में उसे दो बार गा दिया जाय तो वही 'दुगुन' कहलाती है।

तिगुन, चौगुन—इसी प्रकार जब कोई ठेका या गीत १ मिनट में १ बार बजाया जाय और वही ठेका या गीत उतने ही समय में अर्थात् १ मिनट में ही ४ बार बजाया जाय या गाया जाय, तो उसे चौगुन कहेंगे। एवं १ मिनट में ३ बार गाया-बजाया जाय तो तिगुन कहेंगे।

आड़ी—कोई ठेका या गीत जिस मध्यलय में गाया-बजाया जाय उससे ड्योढ़ीलय में गाने-बजाने को आड़ी कहेंगे। मान लीजिये १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जा रही है और जब एक मिनट में ९० तक गिनती गिनने लगें तो वही 'आड़ी' कहलायेगी।

क्वाड़ी—जिस ठेके की गति मध्यलय से सवाई होती है उसे क्वाड़ीलय कहते हैं। जैसे १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जारही थी और जब १ मिनट में ही ७५ तक गिनती गिनी जायेगी तो उसे 'क्वाड़ी' कहेंगे।

बियाड़ी—इसी प्रकार एक मिनट में १०५ तक गिनती गिनी जायगी तो 'बियाड़ी' अर्थात् पौने दोगुनी लय हो जायगी। लय का विशेष विवरण आगामी पृष्ठों में ताल के साथ दिया गया है।

सम—किसी ताल का वह स्थान जहाँ से गाना-बजाना या ताल का ठेका शुरू होता है। गायक-वादक ऐसे स्थान पर सङ्गत करते हुए जब मिलते हैं तो एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है और श्रोताओं के मुँह से अनायास ही "आ" निकल जाती है

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

या उनके शरीर का कोई अङ्ग हिल जाता है। 'सम' पर गायक-वादक विशेष जोर देकर उसे प्रदर्शित करते हैं। प्रायः सम पर ही गाने-बजाने की समाप्ति भी होती है। सम को 'न्यास' भी कहते हैं।

खाली—प्रत्येक ताल के कुछ हिस्से होते हैं, जिन्हें भाग भी कहते हैं, इन भागों पर जहाँ हाथ से ताली बजाई जाती हैं, वे तो 'भरी' कहलाती हैं और जिस भाग पर ताली बन्द रहती है, वह 'खाली' कहलाती है। ताल में खाली भाग इसलिये रखने पड़े हैं कि इससे सम आने का अन्दाज़ ठीक लग जाता है। खाली के स्थान का संकेत हाथ फेंककर किया जाता है और भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में इस स्थान को ० शून्य द्वारा दिखाते हैं।

भरी—ताल के जिन हिस्सों पर ताली बजाई जाती हैं, उन्हें 'भरी' या ताली के स्थान कहते हैं। वैसे जब हाथ से ताल दिखानी होती है, तब भरी ताल को थाप द्वारा दिखाया जाता है।

यति—लय के चालक्रम (गति) को कहते हैं। प्राचीन शास्त्रों में यति के पाँच प्रकार माने गये हैं:—

(१) समा—आदि, मध्य और अन्त इन भेदों से 'समा' नामक यति तीन प्रकार की होती है। आरम्भ, बीच और अन्त, इन तीनों स्थानों पर बराबर एकसी लय का होना ही 'समा' यति कहलाता है।

(२) श्रोतोवहा—जिसके आरम्भ में विलंबितलय, बीच में मध्यलय और अन्त में द्रुतलय हो, उसे 'श्रोतोवहा' यति कहते हैं।

(३) मृदङ्गा—जिसके आरंभ और अन्त में द्रुतलय, बीच में मध्यलय या विलंबितलय होती है, उसे मृदङ्गा' यति कहते हैं।

(४) पिपीलिका—जिसके आदि अन्त में विलंबित या मध्यलय और बीच में द्रुतलय होती है, उसे 'पिपीलिका' यति कहते हैं।

(५) गोपुच्छा—जो गति द्रुतलय से आरंभ होकर क्रमशः मध्यलय और फिर विलंबित होती जावे, उसे 'गोपुच्छा' यति कहते हैं।

आवृत्ति—आवृत्ति का अर्थ है फेरना, दुहराना या चक्कर लगाना। जिस ताल को सम से सम तक जितनी बार दुहराया जायगा, उसे उतनी ही आवृत्ति कहेंगे। कोई-कोई इसे आवर्तन या आवर्तक भी कहते हैं।

ज़र्ब—ज़र्ब का अर्थ है आघात या चोट। तबले पर जब थाप दी जाती है उसे ज़र्ब कहते हैं, इसी प्रकार सितार पर जब मिजराब द्वारा आघात किया जाता है, उसे भी ज़र्ब कहते हैं।

कायदा—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले वर्णसमूह तालबद्ध होकर अभ्यास में आने लगें और उन्हें शास्त्रीय रीति से तबले या मृदङ्ग पर बजाया जा सके एवं उंगलियां सधी हुई और तैयार पड़ें, बोल स्पष्ट निकलें, उसे 'कायदा' कहते हैं।

टुकड़ा—तबला या मृदंग पर बजने वाले बोलों का एक छोटा-सा समूह जब दुगुन, तिगुन, चौगुन या अठगुन की लय में बजाकर सम पर उसकी समाप्ति होती है, उसे 'टुकड़ा' कहते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पल्लू—जिन शब्दों की गति की चाल बिना खण्ड किये तीन बार कहकर सम पर आवे उसे पल्लू कहते हैं।

चौपल्ली—जिसके बलों के खण्ड चार-चार मालुम हों।

पल्टा—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले बोलों के किसी समूह को जब उलट-पलटकर बजाया जाता है, उसे पल्टा कहते हैं।

तीया—किसी भी टुकड़े को ३ बार इस प्रकार बजाया जावे कि उसका अन्तिम धा सम पर आकर पड़े, उसे तीया या तिहाई कहते हैं।

मुखड़ा—किसी टुकड़े को सम से खाली तक अथवा खाली से सम तक बजाने को मुखड़ा कहते हैं।

मोहरा—यह तीया की भांति ही होता है, अर्थात् जब किसी टुकड़े को तीन बार बजाकर सम पर उसकी समाप्ति हो तो उसे मोहरा या तीया कहते हैं।

लग्गी—तबले में आड़ी चाल से जब "धिंधाधिन धीनाड़ा" इत्यादि बोल बजाये जाते हैं, उसे लग्गी कहते हैं।

लड़ी—जिस प्रकार माला की लड़ी में दाने पिरोये जाते हैं, उसी प्रकार बराबर की लय में ताल के बोलों को चुनकर दुगुन-चौगुन में बार-बार बजाया जाता है, उसे लड़ी कहते हैं।

पेशकारा—तबले या मृदङ्ग पर बजने वाले सुन्दर-सुन्दर बोलों को विशेष प्रकार से बजाकर श्रोताओं के सामने "पेश" करने को पेशकारा कहते हैं। पेशकारा के बोलों में यह विशेषता होती है कि वे ताल और लय के लहरे पर हिलते हुए एवं आड़दार धक्का देते हुए चलते हैं। इन्हें कुशल तबला-वादक ही सफलतापूर्वक दिखा सकते हैं।

आमद—गायन-वादन या नृत्य के साथ तबला या मृदङ्ग पर जब सङ्गत चलती है तो कुछ सुन्दर बोलों को आरम्भ में बजाया जाता है, उसे ही आमद या सलामी कहते हैं।

बोल—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले अक्षरों से निर्मित जो शब्द बनते हैं, उन्हें बोल कहते हैं, जैसे किट, धिन, कड़ान, धिड़ान, धा इत्यादि।

उठान—आमद या सलामी के बोलों को जोरदार तिहाई मारकर जब सम पर आते हैं तब उसे 'उठान' कहते हैं।

नवहक्का—तिहाई को तीन बार बजाकर उसका अन्तिम अक्षर सम पर आवे, उसे नवहक्का कहते हैं।

रेला—एक-एक मात्रा में चार, आठ या अधिक अक्षरों के बोलों को मध्यलय में सीधी चाल से बजाने को रेला कहते हैं। रेला कई आवृत्तियों के होते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परन—ताल की किसी भी मात्रा से आरम्भ करके जो बोल सम पर समाप्त होता है, उसको अथवा गृह से सम तक के बाज को परन कहते हैं।

ताल के दस प्राण—प्रत्येक जाति के तालों में १० बातें अवश्य ही मिलेंगी, इन्हें ताल के प्राण कहते हैं। (१) काल (२) क्रिया (३) कला (४) मार्ग (५) अङ्ग (६) प्रस्तार (७) जाति (८) ग्रह (९) लय (१०) गति।

काल—समय का ही दूसरा नाम "काल" है। काल से ही मात्रा और तालों की रचना हुई है और इसी से लय बनती है।

क्रिया—किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को क्रिया कहते हैं। क्रिया से ही हमें मालुम होता है कि अमुक ताल में कौन-कौन से अङ्ग हैं और वह कौनसी ताल है। क्रिया के दो भेद माने गये हैं (१) सशब्द क्रिया (२) निःशब्द क्रिया।

सशब्द क्रिया—ताल की मात्राओं या समय को गिनने की वह क्रिया है जिसमें आवाज उत्पन्न हो, अर्थात् ताली देकर मात्राएँ गिनना।

निःशब्द क्रिया—ताल की मात्राएँ जब उङ्गलियों पर या मन ही मन में बिना शब्द किये हुए गिनी जायें उसे निःशब्द क्रिया कहेंगे।

कला—मात्राओं के हिस्से (भाग) को कहते हैं। जैसे आधी मात्रा, चौथाई मात्रा या ⅛ मात्रा आदि।

मार्ग—प्राचीन ग्रन्थों में ४ प्रकार के बताये हैं। ध्रुव, चतुरा, दक्षिणा और वृत्तिका। कला के हिसाब से इन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से बांटा जाता था। किन्तु इनका वास्तविक रूप क्या था, इसका कोई पता नहीं चलता।

अङ्ग—ताल के समय में जो भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, उन्हें अङ्ग कहते हैं। यह छः प्रकार के हैं, जिन्हें अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत और काकपद कहते हैं।

अनुद्रुत में १ मात्रा, द्रुत में २ मात्रा, लघु में चार मात्रा, गुरु में ८ मात्रा, प्लुत में १२ मात्रा और काकपद में १६ मात्रा का समय माना गया है।

प्रस्तार—जिस प्रकार ७ स्वरों के फैलाव से ५०४० तानें पैदा हुई हैं; उसी प्रकार १ मात्रा से लेकर १६ मात्रा के प्रस्तार से भिन्न-भिन्न तालें पैदा होकर उनकी संख्या ६५५३५ होजाती है। प्रस्तार का अर्थ है बढ़ाना या फैलाना।

जाति—ताल के बोलों की रचना जितने-जितने अक्षरों से हुई है उनके अनुसार पांच जाति कायम की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं:—

(१) चतुस्र जाति	४ मात्रा के लिए	"तक धिन"
(२) तिस्र जाति	३ " "	"तकिट"
(३) खण्ड जाति	५ " "	"तकिट किट"
(४) मिश्र जाति	७ " "	"तक धिन तकिट"
(५) संकीर्ण जाति	९ " "	"तकधिन तक तकिट"

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ग्रह—ताल के ४ ग्रह होते हैं, जिन्हें सम, विषम, अतीत और अनाघात कहते हैं। १–जब गीत और ताल एक ही स्थान से आरम्भ हों, उसे समग्रह कहेंगे। २–जब सम निकलने के बाद गाना शुरू किया जाय उसे विषम ग्रह कहेंगे, विषम का अर्थ है असमान या बराबर होना। ३–अतीत का अर्थ है 'पिछला' या अन्त। ताल की सम का अन्त होने पर जब गायन आरम्भ किया जाता है, उस स्थान को 'अतीत' कहते हैं। ४–जब पहले गायन आरम्भ हो जाय और पीछे ताल शुरू हो, उसे अनाघात या अनागत ग्रह कहते हैं।

लय-विवरण

समय के किसी भी हिस्से की समान (एक सी) चाल को 'लय' कहते हैं। जैसे घड़ी का पैन्डुलम एकसी चाल में खट-खट कर रहा है, मान लीजिये उसका प्रत्येक 'खट' एक सैकिंड के समय में चल रहा है, यदि वही पैण्डुलम कोई खट एक सैकिंड में और कोई खट डेढ़ सैकिंड में करने लगे तो हम संगीत की भाषा में कहेंगे कि इसकी लय बिगड़ गई, अर्थात् घड़ी की चाल बिगड़ गई। लय बराबर तभी रहेगी, जब वह घड़ी अपनी 'खट-खट' एकसी लय में करती रहेगी।

इसी प्रकार सङ्गीत या गाने बजाने, नाचने का सम्बन्ध लय से है। एकसी चाल में किसी ताल को बजाया जायगा, तो उससे एक प्रकार की लय स्थिर करली जायगी, फिर उस ताल की गति घटाई या बढ़ाई जायगी, तब लय बदल जायगी। इस प्रकार मुख्य लय ३ मानी हैं:—

(१) मध्यलय, (२) विलंबित लय, (३) द्रुतलय। किन्तु जब सङ्गीत के बड़े-बड़े कलाकार विशेष रूप से अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, तो उन्हें उपरोक्त ३ लयों के अतिरिक्त और लयों की भी आवश्यकता होती है। उनके लिये इन लयों का निर्माण और हुआ —अति विलम्बित लय, तिगुनलय, चौगुनलय, अठगुनलय, कुआड़ीलय, आड़ीलय और बिआड़ी लय। इस प्रकार लय के कुल १० भेद हुए। अब यह बताते हैं कि इनमें भेद क्या है और इन्हें लिपिबद्ध कैसे किया जायगा अर्थात् लिखा कैसे जायगा।

लय की व्याख्या और उसे लिपिबद्ध करने का ढंग

(१) मध्यलय

जब कोई गायक गाना आरम्भ करे तो पहले उसकी बराबर की लय मालुम कर लेनी चाहिये। बराबर की लय को ही मध्यलय कहते हैं, मध्य का अर्थ है बीच। अर्थात् वह इसी लय को आधार मानकर अन्य लयों का प्रदर्शन करेगा।

अगले पृष्ठ पर हम १ गीत की पहली लाइन दे रहे हैं। इसे मध्यलय में मानकर आगे की लय बताने से सुविधा होगी। साथ ही इस गीत की लाइन के १६ अक्षरों को गाने का समय मध्यलय में १६ सैकिंड मान लेते हैं। यह हमारा मानदण्ड है, इसी के गणित से अन्य लय समझाने की चेष्टा की जायगी।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

[१] मध्यलय (तीनताल) मानदंड १६ सैकिंड

गीत—	ज	य	ज	य	गि	रि	ध	र	न	ट	व	र	म	न	ह	र
सैकिंड-	१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ताल—	ना	धी	धी	ना	ना	धी	धी	ना	ना	ती	ती	ना	ना	धी	धी	ना
चिन्ह-	×				२				०				३			

उपरोक्त गीत के १६ अक्षर १६ सैकिण्ड में गाये गये और इसे हमने मध्यलय मान ली, अब इस लय को विलम्बित लय करके दिखाते हैं, अर्थात् उपरोक्त लय से १६ अक्षर गाने में जितना समय लगा था, अब उससे दुगुना समय अर्थात् ३२ सैकिन्ड इन्हीं १६ अक्षरों को गाने में लगेगा। जैसे:—

[२] विलम्बित लय (तीनताल)

ज	ऽ	य	ऽ	ज	ऽ	य	ऽ	गि	ऽ	रि	ऽ	ध	ऽ	र	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना	-	धी	-	धी	-	ना	-	ना	-	धी	-	धी	-	ना	-
×								२							
न	ऽ	ट	ऽ	व	ऽ	र	ऽ	म	ऽ	न	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ
१७	१८	१६	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२६	३०	३१	३२
ना	-	ती	-	ती	-	ना	-	ना	-	धी	-	धी	-	ना	-
०								३							

इस प्रकार ३२ सैकिंड में वही १६ अक्षर गाये गये, तो हम कहेंगे कि यह हमारी अर्ध लय होगई। इसे ही विलम्बित लय भी कहेंगे।

(३) अतिविलम्बित लय

ज	ऽ	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ	ज	ऽ	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना	–	–	–	धी	–	–	–	धी	-	–	–	ना	–	–	–
×															
गि	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ	ध	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
१७	१८	१६	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२६	३०	३१	३२
ना	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	-	–	–
२															

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

न	ऽ	ऽ	ऽ	ट	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
ना-	–	–	–	ती	–	–	–	ती	–	–	–	ना	–	–	–
०															

म	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽ	ह	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४
ना	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–
३															

इस प्रकार ६४ सैकिंड में वे ही १६ अक्षर गाए गए, अर्थात् मध्यलय नं० १ से इसकी गति चौथाई हुई, क्योंकि मध्यलय में हमने १६ सैकिंड में ही १६ अक्षर गा लिये थे और उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में यहाँ चौगुना समय लग गया, इसलिये हमारी लय की गति चौथाई हो गई। इसे ही अति विलम्बित लय कहेंगे।

यह तो लय को घटाने या विलम्बित करने का गणित हुआ, अब आगे लय को बढ़ाने का हिसाब बताया जाता है:—

(४) दुगुनलय (द्रुतलय)

इसकी चाल नं० १ वाली मध्यलय से ठीक दुगुनी होगी, इसलिये इसे दुगुन कहेंगे और चूँकि इसकी चाल में पहले की अपेक्षा तेज़ी है, इसलिये इसे द्रुतलय भी कहते हैं। द्रुत का अर्थ है जल्द या तेज़ी। द्रुतलय को इस प्रकार लिपिबद्ध करेंगे:—

जय	जय	गिर	धर	नट	वर	मन	हर
१	२	३	४	५	६	७	८
नाधी	धीना	नाधी	धीना	नाती	तीना	नाधी	धीना
×		२		०		३	

पाठकों को मालुम ही है कि मध्यलय के उपर्युक्त १६ अक्षरों को १६ सैकिंड में गाया गया था, अब वे ही १६ अक्षर ८ सैकिंड में गा लिये, अतः यह हुई दुगुन लय। क्योंकि १६ ÷ २ = ८

(५) तिगुनलय

इस लय में मध्यलय से तिगुनी चाल हो जायगी, अर्थात् अब उन्हीं १६ अक्षरों के गाने में मध्यलय की अपेक्षा एक तिहाई समय लगेगा:—

जयज	यगिरि	धरन	टवर	मनह	र,ज
१	२	३	४	५	५⅓
नाधीधी	नानाधी	धीनाना	तीतीना	नाधीधी	नाना
×	२	०		३	×

नोट—"जयजय गिरधर नटवर मनह" इन १५ अक्षरों को गाने में ५ सैकिंड लगे तथा अन्तिम 'र' अक्षर में ⅓ सैकिंड लगा और 'ज' अक्षर पर फिर दूसरी आवृत्ति शुरू हो गई।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार तिगुनलय में उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में १६÷३=५$\frac{1}{3}$ सैकिंड लगेंगी और यदि इसे तीन बार गाया जाय तो पूरी १६ सैकिंड में सम पर आ जायेंगे।

(६) चौगुनलय

इसकी चाल, नं० १ वाली मध्यलय से चौगुनी तेज़ होगी।

जयजय	गिरधर	नटवर	मनहर
१	२	३	४
नाधीधीना	नाधीधीना	नातीतीना	नाधीधीना
×	२	०	३

चूँकि १ नं० की मध्यलय के १६ अक्षरों को गाने में १६ सैकिंड लगे थे, इसलिये चौगुनीलय में १६÷४=४ सैकिंड लगेंगे और इसे ४ बार गाया जाय तब मध्यलय वाली सम पर आ जायेंगे।

(७) अठगुनलय

इसकी चाल, नम्बर १ वाली मध्यलय से अठगुनी तेज़ होगी:—

जयजय गिरधर	नटवर मनहर
१	२
नाधीधीनानाधीधीना	नातीतीनानाधीधीना
× २	० ३

चूकि नं० १ की मध्यलय के इन्हीं १६ अक्षरों को गाने में १६ सैकिंड लगे थे, इसलिये अठगुनी लय में १६÷८=२ सैकिंड लगेंगे और इसे ८ बार गाने पर १६ सैकिंड में मध्यलय वाली सम आ जायगी।

(८) कुवाड़ीलय

इसकी चाल नं० १ वाली मध्यलय से सवाई तेज होती है। इसे लिखने के लिये १ अक्षर के चार भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे ऽऽऽ ऐसे ३ अवग्रह लगाये जायेंगे।

जऽऽऽय	ऽऽऽजऽ	ऽऽयऽऽ	ऽगिऽऽऽ	रऽऽऽध
१	२	३	४	५
ना- - -धी	- - -धी-	- -ना- -	-ना- - -	धी- - -धी
×			२	

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ऽऽऽरऽ	ऽऽनऽऽ	ऽटऽऽऽ	वऽऽऽर	ऽऽऽमऽ	ऽऽनऽऽ	ऽहऽऽऽ	र,ऽऽऽज
६	७	८	९	१०	११	१२	१२$\frac{४}{५}$,
---ना	---ना	---ती	---ती	---ना	---ना	---धी	---धी---ना---ना
	०			३			

ध्यान दीजिये "जयजय गिरधर नटवर मनहर" यह सोलह अक्षर १२ सैकिंड से कुछ अधिक समय में अर्थात १२$\frac{४}{५}$ सैकिंड में ही समाप्त हो गये। क्योंकि मध्यलय १६ सैकिंड में थी, इसलिये १६÷१$\frac{१}{४}$=१२$\frac{४}{५}$ सैकिंड समय लगा।

(९) आड़ीलय

इसकी गति (चाल) मध्यलय नं० १ से ड्यौढ़ी होती है, इसे लिखने के लिये एक अक्षर के दो भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे ऽ एक ऐसा अवग्रह जोड़ा जायगा।

जऽय	ऽजऽ	यऽगि	ऽरऽ	धऽर	ऽनऽ	टऽव	ऽरऽ	मऽन	ऽहऽ	र,ऽज
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	१०$\frac{२}{३}$,
ना-धी	-धी-	ना-ना	-धी-	धी-ना	-ना-	ती-ती	-ना-	ना-धी	-धी-	ना-ना
×	२				०			३		×

इस लय में वे ही सोलह अक्षर १०$\frac{२}{३}$ सैकिंड में गा लिये जायँगे। क्योंकि मध्यलय १६ सैकिंड में थी, इसलिये १६÷१$\frac{१}{२}$=१०$\frac{२}{३}$ सैकिंड समय लगा।

(१०) बियाड़ीलय

इस लय की गति मध्यलय नं० १ से पौने दो गुनी तेज होगी। इसे लिखने के लिये प्रत्येक अक्षर के चार भाग मानकर तीन अवग्रह ऽऽऽ जोड़े जायँगे क्योंकि एक भाग स्वयं वह अक्षर हो गया। इस प्रकार चार भाग हो जाते हैं।

जऽऽऽयऽऽ	ऽजऽऽऽयऽ	ऽऽगिऽऽऽर	ऽऽऽधऽऽऽ	रऽऽऽनऽऽ
१	२	३	४	५
ना---धी--धी	---ना-	--ना---धी	---धी---	ना---ना--
×		२		०

ऽटऽऽऽवऽ	ऽऽरऽऽऽम	ऽऽऽनऽऽऽ	हऽऽऽरऽऽ	ऽ,जऽऽऽयऽ
६	७	८	९	९$\frac{१}{७}$,
-ती---ती-	--ना---ना	---धी---	धी---ना--	-,ना---धी-
	३			×

इस लय में वे ही १६ अक्षर ९$\frac{१}{७}$ सैकिन्ड में गाये गये क्योंकि मध्यलय १६ सैकिंड में थी और यह उसकी पौने दुगुनी तेज है तो १६÷१$\frac{३}{४}$=९$\frac{१}{७}$ सैकिन्ड। ध्यान दीजिये "मनहर" तक गाने में ९ सैकिन्ड पूरी होगईं, फिर अगली मात्रा के सात भागों में से १ भाग और लेना पड़ा, तभी गणित के हिसाब से ९$\frac{१}{७}$ आया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उत्तरी संगीत–पद्धति की कुछ मुख्य तालें:—

कहरवा, मात्रा ८ भाग २

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल	धा	गे	ना	ती	ना	के	धि	न
ताल चिन्ह	×				०			

दादरा, मात्रा ६ भाग २

१	२	३	४	५	६
धा	धी	ना	धा	ती	ना
×			०		

झपताल, मात्रा १० भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
×		२			०		३		

चौताल, मात्रा १२ भाग ६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		०		३		४	

त्रिताल, मात्रा १६ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	धिं	धिं	ना	धा	धिं	धिं	ना	ता	तिं	तिं	ना	धा	धिं	धिं	ना
×				२				०				३			

आड़ा चौताल, मात्रा १४ भाग ७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धीं	धीं	ना	धीं	धीं	ना
×		२		०		३		०		४		०	

तीव्रा, मात्रा ७ भाग ३

१	२	३	४	५	६	७
धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×			२		३	

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सूलताल, मात्रा १०, भाग ५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		३		०	

धमार, मात्रा १४, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	क	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
×					२		०			३			

रूपक, मात्रा ७, भाग ३

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
×			२		३	

इकताला, मात्रा १२, भाग ६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
×		०		२		०		३		४	

दीपचन्दी, मात्रा १४, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धीं	ऽ	धा	गे	तीं	ऽ	ता	तीं	ऽ	धा	गे	धीं	ऽ
×			२				०			३			

पंजाबी, मात्रा १६, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	ऽधी	ऽक	धा	धा	ऽधी	ऽक	धा	ता	ऽती	ऽक	ता	धा	ऽधी	ऽक	धा
×				२				०				३			

मत्तताल, मात्रा १८, भाग ९

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धा	ऽ	धि	ड़	न	क	धि	ड़	न	क	ति	ट	क	त	ग	दि	ग	नि
×		०		२		३		०		४		५		६		०	

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तिलवाड़ा, मात्रा १६, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	त्रिकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	त्रिकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं
×				२				०				३			

धीमा इकताला, मात्रा १२, भाग ६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धीं	नाना
×		०		२		०		३		४	

झूमरा, मात्रा १४, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धिं	धिं	नक	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तिं	तिं	नक	धिं	धिं	धागे	तिरकिट
×			२				०			३			

ब्रह्मताल, मात्रा २८, भाग १४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धिं	धिं	धा	तृक	धिं	धिं	धा	ती	ती	ना	ती	ती	ना
×		०		२		३		०		४		५	
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
ती	ना	तू	ना	क	त्ता	धी	ना	धागे	नधा	तृक	धि	गदि	गन
६		०		७		८		९		१०		०	

गणेश ताल, मात्रा २१, भाग १०

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
धा	ता	दिं	ता	कत	तिट	धा	दिं	ता	कत	तिट	ता	धागे	दिं	ता	धागे	ता	तिट	कत	गदि	गन
×				२	३				४	५	६				७	८	९	१०		

विक्रम ताल, मात्रा १२, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	ऽ	धि	त्ता	ऽ	क	ऽ	त्ता	तिट	कत	गदि	गन
×		२			०			३			

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ताल गजझंपा, मात्रा १५, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	धिन	नक	तक	धा	धि	नक	तक	धिं	नक	तक	किट	तक	गदि	गिन
×				२				०				३		

शिखर ताल, मात्रा १७, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
धा	तृक	धि	नक	थुं	गा	धिं	नक	धुम	किट	कत	धेत्	धा	तिट	कत	गदि	गिन
×						०						२		३		

यतिशेखर ताल, मात्रा १५, भाग १०

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	तत्	धि	न	त्रक	धि	धि	ना	तत्	धागि	नाधा	त्रक	धिना	गदि	गन
×	२		३		४	५	६		७	८	९		१०	

ताल चित्रा, मात्रा १५, भाग ५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धि	ना	धि	धि	ना	तू	ना	क	त्ता	त्रक	धी	ना	धी	धी	ना
×		२			३				४				०	

वसन्त ताल, मात्रा ९, भाग ९

१	२	३	४	५	६	७	८	९
धा	देत्	देत्	थुं	थुं	तेटे	कत	गदि	गन
×	२	३	४	०	५	०	६	०

विष्णु ताल, मात्रा १७, भाग ५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
धिं	ना	धिं	धिं	ना	धिं	तृक	धी	ना	धिं	धिं	ना	धिं	धी	ना	धी	ना
×		२			३				४				०			

UP State Museum, Lucknow

मणि ताल, मात्रा ११, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धा	धि	ट	कि	ट	धा	कि	ट	त	कि	ट
×			२		३			४		

झम्पा ताल, मात्रा १०, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	ऽ	धा	गे	ति	ट	ति	द्धा	कि	ट
×		२			०		३		

रुद्र ताल, मात्रा ११, भाग ११

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धी	ना	धी	ना	ता	ती	ना	क	त्ता	धी	ना
×	२	०	३	४	५	०	६	७	८	०

ठेका टप्पा, मात्रा १६, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धिं	ता	धिं	धिं	धिं	ता	धिं	ऽ	धा	धे	दिं	ऽ	धिं	ता	धिं	धिं
×				२				०				३			

अद्धा त्रिताल, मात्रा ८, भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८
धाधिं	ऽना	धाधिं	ऽना	तातिं	ऽना	धाधिं	ऽना
×		२		०		३	

ताल सवारी, मात्रा १५, भाग ७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धी	त्रिकिट	धीना	कत्	धीधी	नाधी	धीना	तीना	तीना	तृकतूना	किडनग	कत्ता	धीधी	नाधी	धीना
×			२		०		३		०		४		०	

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लक्ष्मी ताल, मात्रा १८, भाग १८

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धिं	तेत्	धेत्	धेत्	दिं	ता	तिट	कत	धा	दिं	ता	धुम	किट	धुम	किट	कत	गदि	गिन
×	२	३	०	४	५	६	०	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	०

ताल पश्तो, मात्रा ७, भाग ३

१	२	३	४	५	६	७
तृक	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ
×			२		३	

ठेका कव्वाली, मात्रा ८, भाग २

१	२	३	४	५	६	७	८
धा	कत	धा	धिं	ता	कत	ता	धिं
×				२			

ताल शूलफाक्ता, मात्रा १०, भाग ३

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धिं	धिं	धा	त्रिकिट	तू	ना	कत	धी	धी	ना
×				२		३			

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दक्षिणी (कर्नाटकी) ताल-पद्धति

उत्तरी ताल-पद्धति और दक्षिणी (कर्नाटकी) ताल-पद्धति में विशेष रूप से भिन्नता पाई जाती है। कर्नाटकी ताल-पद्धति में मुख्य सात तालें मानी गई हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—(१) ध्रुवताल, (२) मठताल, (३) रूपकताल, (४) झंपताल, (५) त्रिपुटताल, (६) अठताल और (७) एकताल

'पंचजाति' भेद के अनुसार इन ७ तालों की पांच-पांच जातियां हैं, इस प्रकार इनसे ७×५=३५ तालें उत्पन्न होती हैं।

दक्षिण पद्धति में तालों को लिखने के लिये ६ चिन्ह नियत किये गये हैं, जिनकी सहायता से इन तालों को लिखा जाता है, वे ६ चिन्ह इस प्रकार हैं:—

⌒	अणुद्रुत अथवा विराम,	मात्रा १
०	द्रुत	मात्रा २
।	लघु	मात्रा ४
ऽ	गुरु	मात्रा ८
३	प्लुत	मात्रा १२
×	काकपद	मात्रा १६

उपर्युक्त ६ चिन्हों में 'लघु' नाम का चिन्ह विशेष महत्वपूर्ण है और इसी एक चिन्ह के कारण तालों की विभिन्न जातियाँ पैदा हुई हैं। लघु चिन्ह की मात्राएँ यद्यपि ऊपर ४ बताई गई हैं, किन्तु 'पंच जाति भेद' के अनुसार लघु की मात्राएँ परिवर्तित होती रहती हैं और इसी परिवर्तन से ५ जातियां पैदा हुई हैं, यथा:—

(१) चतस्र जाति (२) तिस्रजति (३) खंडजाति (४) मिश्रजाति (५) संकीर्णजाति।

(१) चतस्रजाति में 'लघु' की ४ मात्रा मानी गई हैं।
(२) तिस्रजाति में 'लघु' की ३ मात्रा मानी गई हैं।
(३) खण्डजाति में 'लघु' की ५ मात्रा मानी गई हैं।
(४) मिश्रजाति में 'लघु' की ७ मात्रा मानी गई हैं।
(५) संकीर्णजाति में 'लघु' की ९ मात्रा मानी गई हैं।

कर्नाटकी ताल पद्धति की जिन ७ तालों के नाम ऊपर दिये गये हैं, उनमें केवल 'अणुद्रुत, द्रुत और लघु' इन्हीं ३ चिन्हों का प्रयोग होता है, शेष ३ चिन्ह गुरु, प्लुत और काकपद का प्रयोग इनमें नहीं होता। इन तीन चिन्हों का प्रयोग दक्षिण की उन १०८ तालों में होता है, जोकि उनके नृत्य में प्रयोग होती हैं।

ऊपर बताये हुए 'पंच जाति भेद' के अनुसार ७ तालों के ३५ प्रकार कौन-कौन से उत्पन्न होते हैं, यह आगे के नक्शे में देखिये:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर्नाटकी ७ तालों के पंच जाति भेदानुसार ३५ प्रकार

ताल	जाति भेद	ताल चिन्ह	जाति भेद से मात्रा विभाग	कुल मात्रा
ध्रुवताल	चतस्र	। ४ ० । ४ । ४	४+२+४+४	१४
	तिस्र	। ३ ० । ३ । ३	३+२+३+३	११
	मिश्र	। ७ ० । ७ । ७	७+२+७+७	२३
	खंड	। ५ ० । ५ । ५	५+५+२+५	१७
	संकीर्ण	। ९ ० । ९ । ९	९+२+९+९	२९
मठताल	चतस्र	। ४ ० । ४	४+२+४	१०
	तिस्र	। ३ ० । ३	३+२+३	८
	मिश्र	। ७ ० । ७	७+२+७	१६
	खंड	। ५ ० । ५	५+२+५	१२
	संकीर्ण	। ९ ० । ९	९+२+९	२०
रूपक ताल	चतस्र	। ४ ०	४+२	६
	तिस्र	। ३ ०	३+२	५
	मिश्र	। ७ ०	७+२	९
	खंड	। ५ ०	५+२	७
	संकीर्ण	। ९ ०	९+२	११
झंप ताल	चतस्र	। ४ ◡ ०	४+१+२	७
	तिस्र	। ३ ◡ ०	३+१+२	६
	मिश्र	। ७ ◡ ०	७+१+२	१०
	खंड	। ५ ◡ ०	५+१+२	८
	संकीर्ण	। ९ ◡ ०	९+१+२	१२

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

त्रिपुट ताल	चतस्र	।४००	४+२+२	८
	तिस्र	।३००	३+१+२	७
	मिश्र	।७००	७+२+२	११
	खण्ड	।५००	५+२+२	९
	संकीर्ण	।९००	९+२+२	१३
अठताल	चतस्र	।४।४००	४+४+२+२	१२
	तिस्र	।३।३००	३+३+२+२	१०
	मिश्र	।७।७००	७+७+२+२	१८
	खण्ड	।५।५००	५+५+२+२	१४
	संकीर्ण	।९।९००	९+९+२+२	२२
एकताल	चतस्र	।४	४	४
	तिस्र	।३	३	३
	मिश्र	।७	७	७
	खण्ड	।५	५	५
	संकीर्ण	।९	९	९

यह तो हुए जाति भेद के अनुसार ७ तालों के ३५ प्रकार। अब पंचगति भेद के अनुसार इनमें से प्रत्येक प्रकार के पांच-पांच भेद और होते हैं, इससे ३५×५=१७५ तालों के प्रकार इस पद्धति से उत्पन्न होते हैं। आगामी पृष्ठ में उदाहरण के लिये केवल 'अठताल' के २५ प्रकार पंचगति भेदानुसार कैसे हो सकते हैं, यह दिखाया जाता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

'अठताल' के २५ प्रकार

जाति	चिन्ह	मात्रा	गति भेद	गति भेद के प्रकार से कुल मात्राएँ
			चतस्र	१२×४=४८
			तिस्र	१२×३=३६
चतस्र	। ४ । ४ ० ०	१२	मिश्र	१२×७=८४
			खण्ड	१२×५=६०
			संकीर्ण	१२×६=१०८
			चतस्र	१०×४=४०
			तिस्र	१०×३=३०
तिस्र	। ३ । ३ ० ०	१०	मिश्र	१०×७=७०
			खण्ड	१०×५=५०
			संकीर्ण	१०×६=६०
			चतस्र	१८×४=७२
			तिस्र	१८×३=५४
मिश्र	। ७ । ७ ० ०	१८	मिश्र	१८×७=१२६
			खण्ड	१८×५=६०
			संकीर्ण	१८×६=१६२
			चतस्र	१४×४=५६
			तिस्र	१४×३=४२
खण्ड	। ५ । ५ ० ०	१४	मिश्र	१४×७=६८
			खण्ड	१४×५=७०
			संकीर्ण	१४×६=१२६

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

			चतस्त्र	२२×४=८८
			तिस्त्र	२२×३=६६
संकीर्ण	।९।९ ० ०	२२	मिश्र	२२×७=१५४
			खण्ड	२२×५=११०
			संकीर्ण	२२×९=१९८

नोट—इसी तरह शेष छः तालों से भी पच्चीस-पच्चीस प्रकार पैदा होकर कुल १७५ हो जायेंगे।

ऊपर के नक्शों में चिन्ह वाले खाने में ताल-चिन्ह लघु के आगे जो अङ्क लिखे गये हैं, इनका अर्थ यह है कि लघु यहाँ पर इतनी मात्रा का माना गया है। जैसे लघु का चिन्ह । यह है, तो जहां पर चतस्त्रजाति में लघु दिखाया जायगा, वहां ।४ इस प्रकार लिखेंगे। तिस्त्रजाति में ।३ इस प्रकार लिखेंगे। मिश्रजाति में लघु को ।७ इस प्रकार लिखेंगे। खण्डजाति में लघु को ।५ इस प्रकार लिखेंगे और संकीर्णजाति में लघु को ।९ इस प्रकार लिखेंगे। लघु के चिन्ह के आगे दिये हुए विभिन्न अंकों द्वारा आसानी से यह मालुम हो जाता है कि यहां पर लघु की इतनी मात्रा मानी गई हैं। अन्य चिन्हों के साथ मात्रा लिखने का नियम नहीं है, क्योंकि केवल 'लघु' की ही मात्राएँ बदलती हैं, बाकी चिन्हों की मात्राओं में कोई परिवर्तन नहीं होता।

कर्नाटकी ताल पद्धति की बाबत निम्नलिखित बातें विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिये:—

(१) कर्नाटक ताल पद्धति में लघु की मात्रा जाति भेद के अनुसार बदलती रहती हैं।

(२) जिस ताल में जितने चिन्ह होंगे, उसमें उतनी ही ताली (थाप) या भरी तालें होंगी।

(३) कर्नाटकी पद्धति में 'खाली' नहीं होती।

(४) सभी तालें सम से आरम्भ होती हैं।

(५) कर्नाटकी पद्धति में मुख्य ७ तालें होती हैं।

(६) प्रत्येक ताल की पांच-पांच जातियां होती हैं, जिनसे ३५ प्रकार उत्पन्न होते हैं।

(७) पांच-पांच जातियों के पांच-पांच भेद होते हैं, जिनसे १७५ प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर्णाटकी पद्धति की ७ तालों को हिन्दुस्थानी पद्धति में लिखने का कायदा

(यह सातों तालें चतस्रजाति में दी जा रही हैं)

(१) ध्रुवताल, मात्रा १४ (।०।।) चतस्रजाति

मात्रा—१	२	३	४	|	५	६	|	७	८	९	१०	|	११	१२	१३	१४
चिन्ह —×				|	२		|	३				|	४			

(२) मठताल, मात्रा १० (।०।) चतस्रजाति

१	२	३	४	|	५	६	|	७	८	९	१०
×				|	२		|	३			

(३) रूपकताल, मात्रा ६ (।०) चतस्रजाति

(इस ताल को हिन्दुस्थानी पद्धति में ७ मात्रा की मानते हैं)

१	२	३	४	|	५	६
×				|	२	

(४) झम्पाताल, मात्रा ७ (।◡०) चतस्रजाति

१	२	३	४	|	५	|	६	७
×				|	२	|	३	

(५) त्रिपुटताल, मात्रा ८ (।००) चतस्रजाति

१	२	३	४	|	५	६	|	७	८
×				|	२		|	३	

(६) अठताल, मात्रा १२ (।।००) चतस्रजाति

१	२	३	४	|	५	६	७	८	|	९	१०	|	११	१२
×				|	२				|	३		|	४	

(७) एकताल, मात्रा ४ (।) चतस्रजाति

(हिन्दुस्थानी पद्धति में 'एकताल' १२ मात्रा की मानी गई है)

१	२	३	४
×			

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उपरोक्त ७ तालें चतस्रजाति में दी गई हैं। यदि इन्हीं तालों को तिस्रजाति में मानकर लिखें, तो इनका रूप बदल जायगा। क्योंकि चतस्रजाति में लघु को ४ मात्रा काल का माना गया है और तिस्रजाति में 'लघु' की मात्रा ३ मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ ध्रुवताल को अब तिस्र जाति में इस प्रकार लिखेंगे:—

ध्रुवताल (तिस्रजाति) मात्रा ११

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
×			२		३			४		

और इसी ध्रुवताल को खण्डजाति में लिखना होगा तो, निम्नप्रकार से लिखेंगे, क्योंकि खण्डजाति में 'लघु' की पाँच मात्रा मानी गई हैं।

ध्रुवताल (खण्डजाति) मात्रा १७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
×					२		३					४				

मिश्रजाति में लघु की मात्रा ७ मानी गई हैं, अतः यही ध्रुवताल यदि मिश्रजाति में लिखी जायगी, तो उसका रूप यह होगा:—

ध्रुवताल (मिश्रजाति) मात्रा २३

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
×							२		३						
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३									
४															

अब इसी ताल को संकीर्णजाति में लिखें तो इस ताल की मात्रा २९ हो जायेंगी क्योंकि संकीर्णजाति में गुरु की मात्रा ९ मानी गई हैं।

ध्रुवताल (संकीर्णजाति) मात्रा २९

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
×									२		३								
२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९											
४																			

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वाद्ययन्त्र-परिचय

वाद्यों के प्रकार

भारतीय वाद्यों को ४ श्रेणियों में बांटा गया है। (१) ततवाद्य (२) सुषिरवाद्य (३) अवनद्ध वाद्य (४) घनवाद्य।

(१) **ततवाद्य**—या तंतुवाद्य उन्हें कहते हैं जिनमें तारों के द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। इनमें भी श्रेणी बताते हैं (१) ततवाद्य (२) विततवाद्य। ततवाद्य की श्रेणी में तार के वे साज आते हैं जिन्हें मिजराब या अन्य किसी वस्तु की टकोर देकर बजाते हैं, जैसे—वीणा, सितार, सरोद, तानपूरा, एकतारा, दुतारा इत्यादि। दूसरी विततवाद्य की श्रेणी में गज की सहायता से बजने वाले साज (वाद्य) आते हैं, जैसे—इसराज, सारंगी, वायलिन इत्यादि।

(२) **सुषिरवाद्य**—इस श्रेणी में फूँक या हवा से बजने वाले बाजे आते हैं, जैसे—बांसुरी, हारमोनियम, क्लारनेट, शहनाई, बीन एवं शंख इत्यादि।

(३) **अवनद्ध वाद्य**—इस श्रेणी में चमड़े से मढ़े हुए तालवाद्य आते हैं, जैसे—मृदङ्ग, तबला, ढोलक, खंजरी, नगाड़ा, डमरू और ढोल इत्यादि।

(४) **घनवाद्य**—वे हैं जिनमें चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे—जलतरङ्ग, मंजीरा, झांझ, करताल, घंटातरङ्ग और पियानो इत्यादि।

सितार

संक्षिप्त इतिहास

तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी (१२६६-१३१६ ई०) में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में हजरत अमीर खुसरो एक प्रसिद्ध कवि और सङ्गीतज्ञ हुए हैं, उन्होंने एक प्राचीन वीणा के आधार पर मध्यमादि वीणा बनाकर उसमें तीन तार चढ़ाये और उसका नाम "सेहतार" रक्खा। फ़ारसी में 'सह' का अर्थ तीन होता है, सम्भवतः इसी आधार पर उन्होंने इस वीणा का नामकरण 'सेहतार' किया। इसमें दो पीतल के तथा १ लोहे का तार था और १४ परदे थे। पीतल के दोनों तार क्रमशः षड्ज और पंचम में मिलाये एवं लोहे का तार मध्यम में मिलाया गया। इसका तूम्बा आधा ही होता था और दाएँ हाथ की अंगुली में मिजराब चढ़ाकर इसे चाहे जिस प्रकार की बैठक से बजा सकते थे अर्थात इसे बजाने में कोई बन्धन नहीं था।

धीरे-धीरे इसमें तारों की संख्या बढ़ती रही। कहा जाता है कि १७१६ ई० में मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के समय में इसमें ३ तार बढ़े, इस प्रकार छः तार का होकर कुछ समय चलता रहा, बाद में इसमें १ तार और बढ़ाकर ७ तार हो गये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अमीर खुसरो ने सितार का आविष्कार किया और तानसेन के पुत्र सुरतसेन के वंशज अमृतसेन और निहालसेन ने इसके रूप में संशोधन तथा परिवर्तन किया, ऐसी किंवदन्ती है। जयपुर के इस घराने का अन्तिम तन्तकार अमीरखां था, जिसके शिष्य-समुदाय में से उस्ताद इमदादखां ने अधिक प्रसिद्धि पाई। इन्हीं के पुत्र इनायत खां सितार के बाज में बेजोड़ कलाकार माने जाते थे। अब स्व० इनायत खां के पुत्र विलायत खां वर्तमान समय में इस घराने के प्रतिनिधि माने जाते हैं। इनका घराना "सेनी घराने" के नाम से प्रसिद्ध है।

सितार के सात तार

पहला तार—लोहे (स्टील) का होता है, उसे बाज का तार या 'बोलतार' कहते हैं। यह तार मन्द्र सप्तक के "म़" में मिलाया जाता है।

दूसरा और तीसरा तार—यह दोनों जोड़ी के तार कहलाते हैं, इन्हें मन्द्र सप्तक के षड्ज यानी स़ में मिलाते हैं। यह दोनों ही तार पीतल के होते हैं।

चौथा तार—लोहे (स्टील) का होता है, इसे पञ्चम का तार कहते हैं, यह मन्द्र सप्तक के पञ्चम यानी प़ में मिलाया जाता है।

पाँचवाँ तार—पीतल का होता है, यह तार जोड़ी के तारों से लगभग दुगुना मोटा होता है। इसे अति मन्द्र सप्तक के पञ्चम में मिलाते हैं। यह "लर्ज़ का तार" भी कहलाता है।

छठा तार—स्टील का होता है, जो मोटाई में चौथे तार से कुछ कम होता है, इसे मध्य सप्तक के षड्ज में मिलाते हैं। इसे 'चिकारी' का तार कहते हैं।

सातवाँ तार—सातवाँ तार भी स्टील का होता है, यह तार सितार के अन्य सब तारों से पतला होता है और इसे तार षड्ज अर्थात् सां अथवा मध्य सप्तक के 'प' में मिलाते हैं। इसे चिकारी का तार या पपैया का तार कहते हैं।

अङ्ग-वर्णन

तारों के अतिरिक्त सितार के जो भाग होते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:—

तूँबा—सितार का वह भाग है जो डांड के नीचे रहता है, यह अन्दर से बिलकुल पोला और बहुत हलका होता है। तारों के द्वारा जो झनकार पैदा होती है, वह इस तूँबे के कारण गूँजती रहती है।

डाँड—लकड़ी की लम्बी व पोली डंडी, जिसके ऊपर एक तख्ती ढंकी रहती है। इसी पर परदे बँधे रहते हैं।

गुलू—जहाँ पर डाँड और तूँबा जुड़ा होता है, उसे कहते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लंगोट—तूँबे के नीचे का वह भाग जहाँ से तार शुरू होकर खूँटियों तक जाते हैं।

घुड़च—घुर्च या घोड़ी (Bridge) भी इसे ही कहते हैं। यह हाथी दाँत की या हड्डी की एक छोटी चौकी के आकार की पट्टी होती है जो तबली के ऊपर रहती है, इसी पर होकर तार खूँटियों की ओर जाते हैं।

जवारी—घुर्च की एकसी सतह को ही जवारी कहते हैं। इसके ऊपर तार होते हैं।

तबली—तूँबे के ऊपर का ढक्कन, जिस पर ब्रिज या घुड़च जमी रहती है।

तारगहन—सितार के अग्र भाग की खूँटियों के नीचे हाथी दाँत या हड्डी की एक आड़ी पट्टी होती है, इसमें कई छेद होते हैं जिनमें होकर तार खूंटियों तक जाते हैं। इसे 'तारदान' भी कहते हैं।

परदे—डाँड में ताँत से बँधे हुए पीतल या लोहे की सलाइयों के टुकड़े, जो कुछ मुड़े हुए होते हैं। इन्हें 'सुन्दरी' या 'सारिका' भी कहते हैं।

तरबें—सितार के परदों की संख्या के अनुसार उसमें तरबों के तार भी लगाये जाते हैं। यह भिन्न-भिन्न स्वरों में मिले हुए होते हैं तथा सितार के ७ तारों से अतिरिक्त होते हैं। जब सितार बजता है तो उसकी झनकार से तरबों के तारों में स्वतः झंकार उत्पन्न होती है।

खूँटियाँ—लकड़ी की बनी हुई छोटी-छोटी कुञ्जियाँ जिनमें तार लिपटे रहते हैं, इनको घुमाने से तार चढ़ते उतरते हैं।

मनका—बाज के तार में एक छोटा सा दाना पिरोया हुआ रहता है, इससे बाज के तार की ध्वनि ठीक रखने में सहायता मिलती है।

मिजराब—यह पक्के लोहे के तार की अँगूठीनुमा होती है। दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली में इसको पहिनकर सितार के तारों पर आघात करते हैं, तभी सितार बजता है।

सितार मिलाना

सर्व प्रथम किसी स्वर को सा मानकर जोड़ी के दोनों तार मिलाइये। यह मन्द्र सप्तक के सा की आवाज़ होगी। यह दोनों तार बिलकुल एक स्वर में इतने मिलने चाहिए कि सुनने पर यह मालुम हो कि एक ही तार बोल रहा है।

इसके बाद बाज के तार को अर्थात् पहले तार को मन्द्र सप्तक के मध्यम (म़) में मिलाइए।

चौथे तार को मन्द्र सप्तक के पञ्चम (प़) में मिलाइये। यह जानने के लिये कि प़ का तार ठीक मिला या नहीं, जोड़ी के तार को स के परदे पर दबाकर, मिजराब से छेड़कर देखिए

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कि चौथे तार की आवाज़ इससे मिल जाती है या नहीं। यदि आवाज़ एकसी है तो पंचम का तार ठीक मिल गया।

पांचवाँ तार जो सबसे मोटा पीतल का तार है, उसे अति मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाइये। ठीक आवाज पहिचानने के लिये चौथे तार की आवाज से सहायता ली जा सकती है क्योंकि चौथे तार की आवाज़ से इसकी आवाज़ एक सप्तक नीची होगी।

छठा तार मध्य सप्तक के सा में मिलाइये, यह चिकारी का तार है। इस तार की आवाज़ ठीक मिलगई या नहीं, इसे जानने के लिये, बाज के तार को सा के परदे पर दबाकर मिजराब से छेड़िये। यदि दोनों की आवाज़ मिल जावे तो समझिये छठा तार मध्य सप्तक के षड्ज में ठीक तरह से मिल गया।

सातवें तार को तार सप्तक के सां में मिलाइये, इसे पहिचानने के लिये भी ऐसा करिये कि बाज के तार को तार सप्तक के सां के परदे पर दबाकर मिजराब छेड़िये। यदि दोनों की आवाज़ मिल जाये तो सातवाँ तार भी ठीक मिल गया।

चलथाट और अचलथाट

साधारणतः सितार दो प्रकार के होते हैं:—(१) चलथाट वाला (२) अचलथाट वाला।
(१) चलथाट वाले सितार में १७ परदे इस प्रकार होते हैं:—

म॑ प़ ध़ ऩि॒ ऩि सा रे ग म म॑ प ध नि॒ नि सां रें गं

चलथाट वाले सितार के परदे आवश्यकतानुसार खिसकाकर ऊँचे-नीचे कर लिये जाते हैं, इससे थाट बदल जाता है।

(२) अचल थाट वाले सितार में प्रायः १६ परदे इस प्रकार होते हैं।
म॑ प़ ध़॒ ध़ ऩि॒ ऩि सा रे ग॒ ग म॑ म प ध नि॒ नि सां रें गं

कोई-कोई इसमें २२ या २४ परदे भी मानते हैं, किन्तु १६ परदे वाला अचल-थाट का सितार ही ठीक रहता है क्योंकि इसके बजाने में सुविधा रहती है। फिर भी भिन्न-भिन्न कलाकार परदों की संख्या में अपनी रुचि के अनुसार हेर-फेर कर लेते हैं।

सितार के बोल

सितार के तारों पर मिजराब का प्रहार करने से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं:—

(१) दा—मध्यम के तार पर बाहर की ओर से प्रहार करके मिजराब वाली अँगुली जब अपनी तरफ लाई जाती है तो 'दा' बोल निकलता है। इसे आकर्ष-प्रहार कहते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) रा—दा को उल्टा बजाने से 'रा' निकलता है। इसे अपकर्ष-प्रहार कहते हैं। इन्हीं दोनों बोलों को जब शीघ्रतापूर्वक एक मात्रा में ही बजाया जाता है तो "दिर" बोल बन जाता है तथा इन्हीं बोलों के हेरफेर से द्रा, दाड़, द्रादा इत्यादि बोल बनते हैं।

गत—किसी राग के स्वरों में सितार के बोलों की तालबद्ध रचना को गत कहते हैं, गतों के मुख्य दो प्रकार हैं:—

(१) मसीतखानी गत—इस गत के बोल विलम्बित लय में बजाये जाते हैं। मींड आदि का प्रयोग करते हुए बोलों में गम्भीरता दिखाई जाती है।

रज़ाखानी गत—इस गत के बोल द्रुतलय के होते हैं और अनेक प्रकार की विभिन्न चालें इसमें प्रदर्शित की जाती हैं।

जोड़ आलाप—सितार में गत बजाने से पहिले जो आलाप बजाया जाता है उसे ही जोड़ भी कहते हैं।

ज़मज़मा—सितार में जब दो स्वरों को (एक के बाद दूसरे को) जल्दी-जल्दी बजाया जाता है तो उसे ज़मज़मा कहते हैं।

जैसे—रेग रेग गम गम

राऽ दाऽ दाऽ दाऽ

झाला—सितार में चिकारी तथा बाज के तार पर प्रहार करते हुए दा रा रा रा, दा रा रा रा इस प्रकार बजाने को झाला कहते हैं। झाले की सहायता से किसी स्वर को लम्बा भी किया जा सकता है। उलटा झाला इस प्रकार बजेगा:—दा रा रा रा, दादारारा अथवा रा दा रा रा, रा दा रा रा इत्यादि।

कृन्तन—कृन्तन का प्रयोग सितार में ऊँचे स्वर से नीचे स्वर पर आते समय इस प्रकार होता है कि बाएँ हाथ की अँगुलियों से झटके के साथ तार को दबाकर एक दम छोड़ने से दो या अधिक स्वर शीघ्रतापूर्वक बजाये जाते हैं, किन्तु एक स्वर से दूसरे स्वर का सम्बन्ध बना रहता है। इसी कृत्य को कृन्तन कहते हैं।

मींड, सूत, आन्दोलन, गमक इत्यादि का वर्णन इस पुस्तक में पृष्ठ १३८ पर किया जा चुका है, अतः उसे दुहराने की यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

तबला

तबले की प्रारम्भिक उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत पाये जाते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों का ऐसा मत है कि अलाउद्दीन खिलजी के समय में अमीरखुसरो नामक सङ्गीतज्ञ ने पखावज को बीच में से दो भागों में काटकर तबला का आविष्कार किया। कहा जाता है कि "तब्ल" नामक फ़ारसी शब्द से तबला की उत्पत्ति हुई है, "तब्ल" का अर्थ है नक्कारा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कुछ विद्वानों के मत से तबला के आविष्कर्त्ता दिल्ली के उ० सिद्धार खाँ ढाढ़ी थे जिनके शिष्य रोशन खाँ, कल्लूखाँ और तुल्लन खाँ हुए।

तबले के घराने

तबले के मुख्य चार घराने माने जाते हैं:—(१) दिल्ली घराना (२) पंजाब घराना (३) बनारस घराना और (४) लखनऊ या पूरब घराना। इन घरानों के अन्तर्गत आजकल निम्नांकित दो बाज प्रसिद्ध हैं:—

दिल्ली बाज—इसमें चाँटी का काम विशेष महत्व रखता है। चाँटी के काम में दो अँगुलियाँ तर्जनी और मध्यमा का विशेष काम रहता है। इससे सोलो वादन में विशेष सुविधा रहती है एवं पेशकार और कायदों का भली प्रकार निर्वाह होता है। दिल्ली घराने के मुख्य प्रतिनिधि उस्ताद अहमदजान थिरकवा हैं।

बनारस बाज—इस बाज में प्रायः खुले बोलों के काम अधिक महत्व रखते हैं, जिनके निकालने में हथेली का प्रयोग अधिक होता है। इस घराने के मुख्य कलाकार हैं:—श्री कंठे महाराज। श्रीकंठे महाराज के शिष्यों में श्री नन्नूजी, श्री बिक्कूजी, किशन महाराज आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

पंजाब बाज—इस घराने के प्रवृत्तकों ने पखावज के खुले बोलों को बन्द करके एक नई शैली अपनाई और नई-नई गतों को जन्म दिया। वर्तमान प्रतिनिधि उस्ताद अल्लारखा इसी घराने की देने हैं।

लखनऊ बाज—इस घराने की बन्दिशें और चक्रदार परनें प्रसिद्ध हैं। दिल्ली और बनारस के बीच की इस शैली ने उ० आबिदहुसैन, उ० मुन्नेखाँ, वाजिदहुसैन तथा पं० बीरूमिश्र के द्वारा काफी ख्याति अर्जित की।

श्री भातखण्डेजी ने प्राचीन उत्तम तबलियों के नाम इस प्रकार बताये हैं:—

१ बख्शू धाड़ी—प्रसिद्ध तबला-वादक।
२ मम्मू—गत बजाने में कुशल।
३ सलारी—गत और परन बहुत सुन्दर बजाने वाला।
४ मक्खू—प्राचीन ढङ्ग के बाज का उत्तम तबलिया।
५ नउजू—बख्शू का शिष्य (लखनऊ) इसका हाथ बहुत तैयार था।

वर्तमान समय में तबले के निम्नलिखित कलाकार विशेष प्रसिद्ध हैं:—

(१) अहमदजान थिरकवा (२) अल्लारखा (३) कंठे महाराज (४) किशन महाराज (५) शामताप्रसाद 'गुदई महाराज' (६) करामत खाँ (७) निखिल घोष और (८) हबीबुद्दीन खाँ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दाहिना और बायां

दाहिना तबला लकड़ी का होता है और बायां मिट्टी या किसी धातु का। इन दोनों के मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता है, जिसे पुड़ी कहते हैं। पुड़ी के किनारे के चारों ओर चमड़े की गोट लगी रहती है, जिसे चांटी कहते हैं। दाहिने तबले की पुड़ी के बीच में और बायें (डग्गे) की पुड़ी के बीच से कुछ हटकर स्याही लगी रहती है। दायें और बायें दोनों की पुड़ी चमड़े की डोरी से कसी रहती है, इन्हें बद्धी या 'दुआल' भी कहते हैं। चांटी और स्याही के बीच का स्थान 'लव' कहलाता है, इसे मैदान भी कहते हैं। पुड़ी के चारों ओर गोट के किनारे पर चमड़े के फीते का बुना हुआ गजरा लगा रहता है। 'दुआलों' में लकड़ी के गट्टे लगे रहते हैं, जिन्हें नीचे खिसकाने पर तबले का स्वर ऊँचा होता है और गट्टे ऊँचे करने पर स्वर नीचा होता है। स्वर को अधिक ऊँचा-नीचा करना होता है, तभी गट्टे ठोके जाते हैं। मामूली स्वर के उतार-चढ़ाव के लिये चांटी के किनारे वाली पगड़ी या गजरे पर हल्का आघात करने से ही काम चल जाता है।

तबला मिलाना

तबले का दायाँ जिस स्वर में मिलाना हो, उससे एक सप्तक नीचे उसी स्वर में बायाँ मिलाना चाहिये। वैसे साधारणतः बायें को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी उपर्युक्त नियम को ध्यान में रखते हुए बायां भी ठीक रखने से अच्छा ही रहता है।

तबले को प्रायः षड्ज या पञ्चम में ही मिलाते हैं, किन्तु जिन रागों में पञ्चम स्वर वर्जित होता है, उनमें मध्यम स्वर में तबला मिलाते हैं।

पहिले किसी एक घर को मिलाकर फिर दाहिनी ओर के उससे अगले घर को मिलाना चाहिये। इस प्रकार आगे के सब घर आसानी से मिल जाते हैं। मिलाने का एक प्रकार यह भी है कि पहले १ घर को मिलाने के बाद, फिर उसके सामने वाला ६ वां घर मिलाते हैं, फिर ५ वां घर और फिर १३ वां घर मिलाते हैं। इन घरों का अर्थ समझने के लिये तबले की पुड़ी की गोलाई का अन्दाज १६ भागों में कर लीजिये और जिसे सबसे पहले आप मिला रहे हैं उसे पहिला भाग समझिये, यही पहला घर है।

तबला मिलाने से पहले गायक या वादक के स्वर को जान लेना आवश्यक है। यदि उसके स्वर के हिसाब से तबला अधिक चढ़ा या उतरा हुआ है, तब तो गट्टों की ठोक-पीट करनी चाहिये, अन्यथा थोड़े से अन्तर के लिये जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, चांटी के पास वाले गजरे पर आघात करके ही मिला लेना चाहिये। गजरे को ऊपर से ठोकने पर तबला चढ़ता है और नीचे से उल्टी चोट मारने पर तबला का स्वर उतरता है।

तबला के दस वर्ण

धा धिन तिट तिन ना क धी, ता क्रिन कत्त बिचार।
तबला के दस वर्ण हैं, इनको लेउ सुधार॥

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार तबले के १० बोल बताये गये हैं। तबले के बोलों को ३ भागों में बांटा गया है, दाहिने हाथ के बोल और बायें हाथ के बोल तथा दोनों हाथों के सम्मिलित बोल।

(१) दाहिने हाथ के बोल—ना, ता, तिट, किट, दिंन् या तुन, तिन इत्यादि।

(२) बायें हाथ के बोल—घी, या ग, क, कत्त, किन इत्यादि।

(३) दोनों हाथों के सम्मिलित बोल—धिन्न या धिन, धा, धिन्ना, दिन्नक, गिद्दी, किड़नग, किटतक, त्रक, क्ड़ानतान, तकिट इत्यादि।

यद्यपि इन तीन प्रकार के बोलों में बहुत से ऐसे बोल आ गये हैं, जो उपर्युक्त दस वर्णों में बताये हुए बोलों से भिन्न हैं। किन्तु मूल रूप से बोल १० ही हैं, उनमें से अक्षरों को मिलाजुला कर अधिक बोलों की उत्पत्ति हुई है।

मृदङ्ग (पखावज)

नटराज शंकर का डमरु सबसे प्राचीन घन वाद्य है, उसी के आधार पर मृदङ्ग की उत्पत्ति हुई। मृदङ्ग की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद (५।३३।६) से मिलता है, जिसमें वीणा, मृदङ्ग, वंशी और डमरु का वर्णन आया है। पुरातन काल में मृदङ्ग को 'पुष्कर' भी कहा जाता था, ऐसा भरतमत के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। पुष्कर वाद्य देवताओं को अति प्रिय था। इसकी ताल के साथ-साथ उनका नृत्य हुआ करता था, इसका प्रमाण अनेक प्राचीन मूर्तियों तथा चित्रों द्वारा मिलता है।

प्राचीन पुष्कर वाद्य कई प्रकार के होते थे, जैसे—हरीतकी, जवाकृति, गौपुच्छाकृति आदि। हरड़ के आकार जैसा पुष्कर होता था अतः उसे हरीतकी कहते थे। जव के आकार से मिलता-जुलता पुष्कर जवाकृति कहलाता था और गौ की पूँछ के निचले गुच्छे से जिसका आकार समता रखता था, उसे गौपुच्छाकृति नाम दिया गया।

पखावज, मुरज और मर्दल यह ३ नाम भी मृदङ्ग के ही हैं। इस प्रकार मृदङ्ग के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। मृदङ्ग का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में रहा। कुछ समय बाद उत्तर भारत के सङ्गीतज्ञों ने मृदङ्ग से मिलता-जुलता प्रकार बनाकर इसका नाम पखावज रख लिया। पखावज पर अनेक कठिन-कठिन तालों का प्रयोग हुआ करता था। ध्रुपद, धमार, ब्रह्म, रुद्र, विष्णु, लक्ष्मी, सवारी इत्यादि तालें, इस पर बजाई जाती थीं, किन्तु जबसे तबला का आविष्कार हुआ, मृदङ्ग का प्रचार बहुत कम होगया। अब तो मृदङ्ग के दर्शन मन्दिरों में, कीर्तन मण्डलियों में यदा-कदा ही होते हैं। फिर भी कुछ गुणीजन इसको महत्व देते हैं और इसका आदर भी करते हैं।

प्रसिद्ध पखावजियों में ला० भवानीप्रसादसिंह पखावजी को भातखण्डे जी ने अप्रतिम पखावजी कहकर सम्बोधित किया है। प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह इन्हीं के शिष्य थे। औंध के नवाब द्वारा उन्हें "कुँवरदास" की पदवी प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एकबार वाजिदअली शाह की एक महफिल में कुदऊसिंह व जोधासिंह पखावजियों को राजा ने १००००) रुपये की थैली, इनकी कला पर प्रसन्न होकर पुरस्कार में दी थी।

इनके पश्चात् ताजखां (डेरेदार) भवानीसिंह, खलीफा नासिरखां, इत्यादि पखावजी प्रसिद्ध हुए।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पखावज की बनावट

दायां तबला और बायां डग्गा दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिये जायँ तो पखावज का ही रूप बन जाता है। तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दायां और बायां अलग-अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूँज अधिक पाई जाती है, क्योंकि एक तरफ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है। दूसरा भेद तबला और पखावज में यह है कि तबला के बोल बजाने में थाप का प्रयोग कम होता है और उङ्गलियों का काम अधिक होता है, किन्तु पखावज में थाप का काम अधिक महत्व रखता है और उङ्गलियों का काम कम होता है। पखावज में बायीं ओर गीला आटा लगाया जाता है, जब स्वर नीचा करना होता है तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं ऊँचा स्वर करने के लिये आटा कम कर देते हैं।

तबला और पखावज मिलाने का ढङ्ग लगभग एकसा ही है अतः उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पखावज के बोल

सङ्गीत-रत्नाकर ग्रन्थ में 'मृदङ्ग' के १६ वर्ण माने गये हैं, जिनका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक से मिलता है:—

ङ वर्जितः क वर्गश्च टतवर्गौ रहावपि।
इति षोडशवर्णाः स्युरुभयोः पाटसंज्ञका ॥

अर्थात् क-ख-ग-घ-ट-ठ-ड-ढ-त-थ-द-ध-न-र-म-ल। किन्तु आधुनिक कलाकारों द्वारा मृदङ्ग के अक्षर-बोल दूसरे ही निश्चित किये गए हैं, जिन्हें ३ भागों में बांटा जाता है:—

(१) खुले बोल—जिन अक्षरों को बजाने पर सुरीली आंस निकलती है, वे खुले बोल कहलाते हैं।

(२) बन्द बोल—जिनको बजाने के बाद सुरीली ध्वनि न निकलकर दबी हुई आवाज निकलती है, वे बन्द बोल कहे जाते हैं।

(३) थाप—जब स्याही के ऊपर वाले आधे भाग पर सब अँगुलियाँ मिलाकर पञ्जा मारा जाय और शीघ्र ही कनिष्ठिका अँगुली की ओर वाला हथेली का भाग स्याही के किनारे पर आ जाय, इस कृत्य को थाट या थप्पी कहते हैं।

प्राचीन ग्रंथों में वर्णित मृदङ्ग के बोलों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, किन्तु आधुनिक मृदङ्ग वादक निम्नलिखित बोल मानते हैं। यद्यपि इनमें विभिन्न मत हैं, किन्तु ये ही अधिक उपयोगी मालुम होते हैं:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुख्य बोल ता-त-दी-थुं-ना-धा-ड़-ध्धे-दी-ग-खिर्र-भ्फें-म।
आश्रित बोल—रां-क-ग-ण-धु-धी-लां-थेई-डां-की-टी-थर्र।

तानपूरा

गायकों के लिये तानपूरा (तम्बूरा) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तारवाद्य है। इसमें किसी गाने की गत नहीं निकलती, केवल स्वर देने के लिये ही इसका प्रयोग किया जाता है। गायक अपने गले के धर्मानुसार इसमें अपना स्वर कायम कर लेते हैं और फिर इसकी झंकार के सहारे उनका गायन चलता रहता है।

अङ्ग वर्णन

(१) **तुम्बा**—नीचे गोल और ऊपर कुछ चपटा होता है। इसके अन्दर पोल होती है, जिसके कारण स्वर गूँजते हैं।

(२) **तबली**—तुम्बे के ऊपर का भाग, जिस पर ब्रिज लगा रहता है।

(३) **ब्रिज**—घुर्च या घोड़ी भी इसी को कहते हैं, इसके ऊपर तानपूरा के चारों तार स्थिर रहते हैं।

(४) **डाँड**—तुम्बे में जुड़ी हुई लकड़ी की पोली डंडी, इसमें खूँटियां लगी रहती हैं तथा तार इसके ऊपर खिंचे रहते हैं।

(५) **लंगोट**—तुम्बे की पेंदी में १ कील लगी रहती है, इससे तानपूरा के चारों तार आरम्भ होकर खूँटियों तक जाते हैं।

(६) **अटी**—खूँटियों की ओर डाँड पर हड्डी की २ पट्टियाँ लगी होती हैं जिनमें से १ के ऊपर होकर तार जाते हैं, वह अटी कहलाती है।

(७) **तारगहन**—दूसरी पट्टी जो अटी के बराबर होती है, उसमें ४ सूराख होते हैं जिनमें से होकर चारों तार खूँटियों तक जाते हैं, इसे तारगहन कहते हैं।

(८) **गुलू**—जिस स्थान पर तुम्बा और डाँड जुड़े रहते हैं, इसे गुल या गुलू कहा जाता है।

(९) **खूँटियाँ**—अटी व तारगहन के आगे लकड़ी की ४ कुंजियाँ लगी होती हैं जिनमें तानपूरे के चारों तार बंधे रहते हैं, इन्हें खूँटियां कहते हैं।

(१०) **मनका**—ब्रिज और लंगोट के बीच में तार जिन मोतियों में पिरोये होते हैं उन्हें मनका कहते हैं। इनकी सहायता से तारों में आवश्यकतानुसार थोड़ासा उतार-चढ़ाव करके स्वर मिलाये जाते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(१२) सूत—ब्रिज और तारों के बीच में धागे का टुकड़ा दबाया जाता है, इसे उचित स्थान पर लगाने से तानपूरे की झनकार खुली हुई और सुन्दर निकलती है। वास्तव में यह धागे ब्रिज की सतह को ठीक करने के लिये होते हैं, जिसके लिये गायक बहुधा ऐसा कहते हैं कि तानपूरे की जवारी खुली है। यहाँ पर जवारी का अर्थ ब्रिज की सतह से ही है।

तार मिलाना

तानपूरे में ४ तार होते हैं, इनमें से पहला तार मन्द्र सप्तक के पंचम (प़) में, बीच के दोनों तार (जोड़ी के तार) मध्य षड्ज (स) में और चौथा तार मन्द्र सप्तक के षड्ज (स़) में मिलाया जाता है। इस प्रकार तानपूरे के चारों तार प़ स स स़ इन स्वरों में मिलाये जाते हैं। जिन रागों में पंचम वर्जित होता है (जैसे ललित) उसमें पंचम वाला तार मध्यम से मिलाते हैं।

तानपूरे के प़ स स यह तीनों तार पक्के लोहे (स्टील) के होते हैं और चौथा तार (स़) पीतल का होता है। किसी-किसी तम्बूरे में पहला तार भी पीतल का होता है, जिसे मर्दानी या भारी आवाज़ के लिये लगाते हैं, किन्तु जनानी या ऊँचे स्वर की आवाज़ के लिये लोहे का तार ही ठीक रहता है।

तानपूरा छेड़ना

तानपूरा बजाने को तानपूरा 'छेड़ना' कहा जाता है। चारों तारों को दाहिने हाथ की पहली या दूसरी अँगुली से छेड़ते हैं। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते, बल्कि बारी-बारी से एक-एक तार छेड़ा जाता है।

तानपूरे की बैठक

विभिन्न गायकों के अलग-अलग ढङ्ग होते हैं। कोई एक घुटना नीचा और एक घुटना कुछ ऊँचा करके बैठकर तानपूरे को छेड़ते हैं, कोई तानपूरे को ज़मीन पर लिटाकर छेड़ते हैं। अनेक बड़े-बड़े गायक ऐसे हैं, जो स्वयं गाते हैं और तानपूरा उनका शागिर्द या अन्य कोई व्यक्ति छेड़ता रहता है। इससे उन्हें गाते समय अपने भाव व्यक्त करने में सहायता मिलती है।

वायोलिन (बेला)

वायोलिन (Violin) या वेला एक विदेशी वाद्य है। गज से बजने वाले समस्त वाद्यों में आजकल इसे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है। इस यन्त्र की उत्पत्ति और आविष्कार के बारे में विभिन्न मत पाये जाते हैं।

जो लोग इसे विदेशी वाद्य मानते हैं उनके मतानुसार इसका आविष्कार यूरोप में १६ वीं शताब्दी के मध्य हुआ और तभी से यह प्रचलित है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

एकमत के अनुसार 'बेला' को मूल रूप में भारतीय यंत्र कहा जाता है। इस मत के अनुयाइयों का कहना है कि लंकापति रावण ने एक तार वाला एक वाद्ययन्त्र ईजाद किया, उसे गज से ही बजाया जाता था और उसका नाम "रावण स्त्रम" रखा गया। इसके पश्चात् ११ वीं शताब्दी के अन्त में भारतवर्ष होकर परशिया, अरेबिया, तथा स्पेन होता हुआ यह यन्त्र योरोप पहुँचा; यहाँ पर इसमें परिवर्तन करके, वर्तमान वॉयोलिन के रूप में इसका विकास किया गया।

एक पाश्चात्य विद्वान् के मतानुसार ४०० वर्ष पहले योरोप में (Voil) वॉइल नामक एक वाद्ययन्त्र का आविष्कार हुआ, जिसका प्रचार सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक रहा। बाद में इसी वॉइल यन्त्र के ढङ्ग पर वॉयोलिन बनाया गया। एक और मतानुसार १५६३ ई० में वेनिस नगर के एक ग्रामीण 'लीनारोली' ने 'टेनर वॉयोलिन' का आविष्कार किया था, उसी के आधार पर इटली के दो कलाकारों ने इसमें कुछ और विशेषताएँ सम्मिलित करके इसे नवीन रूप दिया। कोई-कोई इसे जरमनी का अविष्कार भी बताते हैं। इस प्रकार बेला के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ पाई जाती हैं। कुछ भी सही, यह तो मानना ही पड़ेगा कि अपने आधुनिक रूप में यह पूर्णरूपेण एक विदेशी वाद्य है। भारत में इसका प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है, अच्छे बेला-वादक भी अब कई होगये हैं।

बेला के विभिन्न भाग

बेला के मुख्य ६ भाग होते हैं:—

(१) बॉडी (Body)—इसे बेला का शरीर समझिये, अन्दर से पोला होने के कारण इसमें आवाज गूँजती रहती है, इसे बेली भी कहते हैं।

(२) फिंगर बोर्ड (Finger Board)—इस पर अँगुलियों की सहायता से स्वर निकाले जाते हैं।

(३) टेलपीस (Tail Piece)—वह भाग है, जिसमें चार सूराख होते हैं, इन चारों सूराखों में होकर ४ तार खूटियों तक जाते हैं।

(४) एण्डपिन (End Pin)—इसमें टेलपीस तांत के द्वारा फंसा रहता है।

(५) ब्रिज (Bridge)—इसके ऊपर होकर तार खूँटियों की ओर जाते हैं।

(६) साउन्डपोस्ट (Sound Post)—यह बेला के अन्दर, ब्रिज के ठीक नीचे लगा रहता है।

गज (Bow) और उसके भाग

बेला जिस छड़ी से बजाया जाता है उसे 'बो' कहते हैं, इसके ५ भाग होते हैं:—

(१) गज की छड़ी (Stick) (२) बाल (Hair) जो कि इस छड़ी में कसे रहते हैं (३) स्क्रू (Screw) इस प्रकार का पेच जिसे उल्टा या सीधा कसने से 'बो' (गज)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के बाल तनते हैं या ढीले होते हैं। (४) नट (Nut) इसमें बाल फंसे रहते हैं और जब पेच घुमाया जाता है तो यह सरकने लगता है। (५) हैड—यह 'बो' का अन्तिम सिरा है।

रेज़िन [Resins]

यह एक प्रकार का बिरोजा होता है, इस पर 'बो' [गज] के बाल घिसकर तब बेला बजाते हैं, इससे आवाज स्पष्ट और सुन्दर निकलती है।

बेला के ४ तार और उन्हें मिलाने की पद्धति

बेला में कुल चार तार होते हैं, जो क्रमशः G D A E कहलाते हैं, इनको मिलाने के ढङ्ग कई प्रकार के हैं।

प्रथम प्रकार—प़ सा प सां इस प्रकार मिलाते हैं यानी मन्द्र सप्तक का पंचम, मध्य सप्तक का षड्ज, मध्य सप्तक का पंचम और तार सप्तक का षड्ज।

दूसरा प्रकार—सा़ प़ सा प इस तरह मिलाते हैं यानी पहले दोनों मन्द्र सप्तक के षड्ज-पंचम में और बाकी दो मध्य सप्तक के षड्ज-पंचम में।

तीसरा प्रकार—म़ सा प रें इस प्रकार मिलाते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर यह तीसरा प्रकार ही प्रचलित है।

इसराज

'इसराज' एक प्रकार से सितार और सारङ्गी का ही रूपांतर है। इसका ऊपरी भाग सितार से मिलता है और नीचे का भाग सारङ्गी के समान होता है। इसराज को दिलरुबा भी कहते हैं। यद्यपि इसकी शक्ल में थोड़ा-सा अन्तर होता है, किन्तु बजाने का ढङ्ग एकसा ही होता है। इसीलिये इसराज और दिलरुबा पृथक् साज नहीं माने जाते।

इसराज के मुख्य अङ्ग

(१) तूंबा—[खाल से मढ़ा हुआ होता है] इसके ऊपर घोड़ी या ब्रिज लगा रहता है।

(२) लंगोट—तार बांधने की कील होती है।

(३) डाँड—इसमें परदे बंधे रहते हैं।

(४) घुर्च—खाल से मढ़ी हुई तबली के ऊपर का हड्डी का टुकड़ा, जिसके ऊपर तार रहते हैं; इसे घोड़ी या ब्रिज भी कहते हैं।

(५) अटी—सिरे की पट्टी, जिस पर होकर तारगहन के भीतर से खूँटियों तक जाते हैं।

(६) खूँटियाँ—तारों को बाँधने और कसने के लिये होती हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसराज के ४ तार

बाज का तार—यह मन्द्र सप्तक के मध्यम (म़) में मिलाया जाता है ।

दूसरा व तीसरा तार—यह दोनों तार मन्द्र सप्तक के षड्ज (स़) में मिलाये जाते हैं, इन्हें जोड़ी के तार कहते हैं ।

चौथा तार—मन्द्र सप्तक के पंचम (प़) में मिलता है, इस प्रकार इसराज के चारों तार म़ स़ स़ प़ में मिलाये जाते हैं, कोई-कोई कलाकार म़ स़ प़ सा या म़ स़ प़ प़ इस प्रकार भी मिलाते हैं । इनके अतिरिक्त इसराज में तरब के तार और होते हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार मिला लिया जाता है ।

इसराज के परदे

इसराज में १६ परदे होते हैं, जोकि सितार की भांति पीतल या स्टील के बने हुए होते हैं । यह परदे निम्नलिखित स्वरों में होते हैं:—

म़	प़	ध़	नि़	नि़	सा	रे	ग	म	म॑	प	ध	नि	सां	रें	गं
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

सितार की भांति इसराज में कोमल स्वर बनाने के लिये परदों को खिसकाने की आवश्यकता नहीं पड़ती । कोमल स्वरों के स्थान पर अँगुली रख देने से ही काम चल जाता है ।

इसराज बजाने में बाएँ हाथ की तर्जनी और मध्यमा अर्थात् पहली व दूसरी अँगुलियां काम देती हैं । गज को दाहिने हाथ से पकड़ते हैं । इसराज को बाएँ कन्धे के सहारे रखकर बजाना चाहिए । प्रारम्भ में गज धीरे-धीरे चलाना चाहिए तथा गज चलाते समय तार को अधिक ज़ोर से नहीं दबाना चाहिये । पहले स्वर-साधन का अभ्यास हो जाने पर गतें निकालने की चेष्टा करनी चाहिए ।

बांसुरी

यह भारतवर्ष का अति प्राचीन फूँक का वाद्य है । भगवान् कृष्ण ने अपने अधरों से लगाकर इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है ।

आजकल बांसुरी कई प्रकार की मिलती हैं, किन्तु हम यहां पर उसी का विवरण दे रहे हैं, जिसमें ६ सूराख होते हैं और अंग्रेजी ढङ्ग पर उसकी ट्यून की हुई होती है । यद्यपि देशी बांसुरी भी काफी प्रचलित है, किन्तु उसे अच्छे स्वरज्ञान वाले ही पहिचान सकते हैं कि इसकी ट्यून ठीक है या नहीं । बहुत से कलाकार बांस की बांसुरी अपने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लिए स्वयं बना लेते हैं, किन्तु सभी के लिए तो ऐसा करना सम्भव नहीं हो सकता, अतः ६ सूराख वाली बांसुरी बजाने की विधि दी जारही है।

बांसुरी में सरगम निकालने की विधि

सर्व प्रथम बांसुरी के सब सूराखों को इस प्रकार बन्द करिये कि बाएँ हाथ की पहली-दूसरी-तीसरी अँगुलियाँ ऊपर के ३ सूराखों पर जमाई जायँ। फिर दाहिने हाथ की पहली-दूसरी-तीसरी अँगुलियों से नीचे के तीनों सूराख बन्द किये जायँ। ध्यान रहे कि सूराखों को अँगुलियों की पोर से अच्छी तरह दबाना चाहिए। यदि बीच में कोई भी उँगली सूराख से तनिक भी हट गई तो आवाज़ फटी-फटी निकलेगी।

सब सूराख उपरोक्त विधि से बन्द करने के बाद मुँह से हलकी फूँक लगाइये, इसमें सब सूराख बन्द होने पर जो स्वर निकलेगा, वह मन्द्र सप्तक का प़ होगा। बाकी स्वर एक-एक अँगुली क्रमानुसार उठाने पर इस प्रकार निकलेंगे:—

प़—सब सूराख बन्द करने पर।
ध़—नीचे का १ सूराख खोलने पर।
नि़—नीचे के २ " "
सा—नीचे के ३ " "
रे—नीचे के ४ " "
ग—नीचे के ५ " "
म॑—सब सूराख खोल देने पर

इस प्रकार ६ सूराखों से प़ ध़ नि़ सा रे ग म॑ यह सात स्वर निकले। इनमें मध्यम तीव्र है, बाकी स्वर शुद्ध हैं। मध्यम को शुद्ध बनाने के लिए ऊपर का सिर्फ आधा सूराख दबाना पड़ता है तथा अन्य स्वरों को कोमल बनाने के लिए भी सूराखों का अर्ध-प्रयोग किया जाता है।

इसके आगे के स्वर यानी मध्य सप्तक के प ध नि और तार सप्तक के स्वर निकालने के लिए क्रम बिलकुल यही रहता है, सिर्फ मुँह की फूँक का वज़न बढ़ा दिया जाता है। उदाहरणार्थ—सब सूराख बन्द करने पर हलकी फूँक से मन्द्र पञ्चम (प़) निकला है तो फूँक का वज़न दुगुना कर देने पर वही मध्य सप्तक का पंचम (प) बन जायगा। इसी प्रकार अन्य स्वर भी फूँक के दबाव के आधार पर आगे की सप्तक के निकलेंगे।

बांसुरी पर पहले यमन राग के स्वरों सा रे ग म॑ प ध नि का ही अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यमन राग में मध्यम तीव्र और बाकी स्वर शुद्ध हैं और बांसुरी में भी पूरे सूराखों के खुलने पर यही स्वर आसानी से निकलते हैं। बाद में अभ्यास होजाने पर आधे-आधे सूराखों के प्रयोग से अन्य विकृत स्वर भी निकलने लगेंगे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यन्त्र-वादकों के गुण-दोष

प्राचीन ग्रन्थकारों ने वाद्य-यन्त्र बजाने वालों के गुण-दोषों का जो वर्णन किया है, उसका भावार्थ इस प्रकार है :—

वादक के गुण

(१) गीत, वाद्य और नृत्य में पारंगत हो।
(२) भिन्न-भिन्न वाद्यों (साजों) को बजाने में कुशल हो।
(३) वाद्य यन्त्र बनाने की जानकारी रखने वाला हो।
(४) ग्रह-ज्ञान रखने वाला हो।
(५) अँगुली-संचालन में कुशल हो।
(६) ताल और लय का ज्ञान रखता हो।
(७) विभिन्न वाद्य-यन्त्रों के विषय में पूर्ण ज्ञान हो।
(८) हस्तसंचालन में कुशल हो।
(९) किस वाद्य-यन्त्र को बजाने में कौनसे शारीरिक अवयवों से सहायता मिलती है, इसका ज्ञान रखने वाला हो।
(१०) स्वरों के उतार-चढ़ाव का ज्ञान रखने वाला हो।

वादक के दोष

जिन वादकों में उपर्युक्त १० गुण नहीं हैं या जो वादक उक्त बातों का ज्ञान नहीं रखते और फिर भी किसी वाद्य को बजाने की चेष्टा करते हैं, वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार उक्त १० गुणों का अभाव ही १० दोषों में बताया गया है।

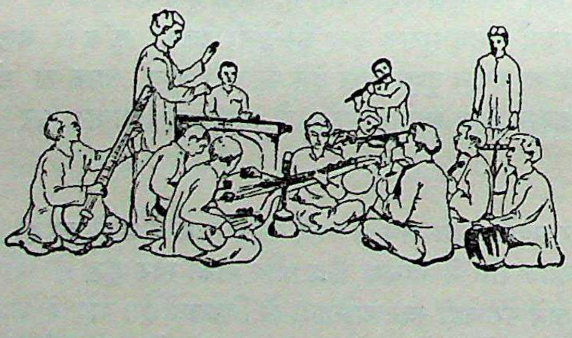

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत में 'काकु'

भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्य भिधीयते ।

अर्थात् कंठ की भिन्नता से ध्वनि में जो भिन्नता पैदा होती है, उसे काकु कहते हैं। ध्वनि या आवाज में मनोभावों को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति होती है। कंठ में जो ध्वनि-तन्त्रियाँ हैं, उनके स्पन्दन से ध्वनि निकलती है, इसी तरह तन्तु-वाद्यों में तारों के छेड़ने से ध्वनि पैदा होती है। हारमोनियम, बांसुरी, शहनाई, क्लारनेट आदि सुषिर वाद्यों में वायु के कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है।

ध्वनि में मनोभावों को व्यक्त करने की विचित्र शक्ति है। शोक, भय, प्रसन्नता, प्रेम आदि भावों को व्यक्त करने के लिये जब ध्वनि या आवाज़ में भिन्नता आती है, तब उसे "काकु" कहते हैं। काकु का प्रयोग मानव तो करते ही हैं, पशुओं में भी काकु-प्रयोग भलीभाँति पाया जाता है। उदाहरणार्थ एक कुत्ता जब किसी चोर के ऊपर भौंकता है तो उसके भौंकने की ध्वनि में एक प्रकार की भयंकरता या कठोरता होती है और वही कुत्ता जब अपने मालिक के साथ घूमने के लिये व्यग्रता प्रकट करता हुआ अपनी बँधी हुई जंजीर से मुक्ति पाने के लिये भौंकता है, तब उसकी आवाज़ या काकु बदल जाती है, उस समय उसकी आवाज़ में एक प्रकार की विवशता तथा विनय का भाव पाया जाता है। इसी प्रकार जब बिल्ली भूखी होती है तो उसकी म्याऊँ में कुछ और ही बात होती है और वही बिल्ली किसी के द्वारा अपने बच्चे को छेड़ते समय विरोध प्रकट करती हुई म्याऊँ करती है तब उसकी म्याऊँ में कुछ और ही प्रकार की ध्वनि होती है, ध्वनि की इसी भिन्नता या शैली को "काकु" कहते हैं।

पशुओं की अपेक्षा मानव जाति में काकु का प्रयोग विशेष रूप से पाया जाता है, एक शब्द है —"जाओ" इस शब्द को काकु के विभिन्न प्रयोगों से देखिये। एक अफसर अपने चपरासी को कहीं भेजने के लिये "जाओ" कहता है, तब उसकी जाओ में आज्ञा देने की एक भावना पाई जाती है और यही शब्द जब एक विद्यार्थी छुट्टी पाते समय अपने गुरु के मुख से सुनता है, तब उसमें कुछ और ही प्रकार की "काकु" होती है, यहाँ हम कहेंगे कि उस अफसर का और गुरूजी का शब्द तो एक ही है, किन्तु काकु पृथक्-पृथक् हैं। इसी प्रकार गायन में काकु के प्रयोग सुनने में आते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० ओमकारनाथ ठाकुर जब सूरदास का लोकप्रिय पद "मैया मैं नहिं माखन खायो" गाते हैं तब "मैया री" शब्द में वे विभिन्न काकु-प्रयोग इस खूबी से करते हैं कि श्रोतागण कभी तो हँसने लगते हैं और कभी आनन्दाश्रु बहाने लगते हैं। उनके द्वारा गाये हुए मैया शब्द में कहीं तो रोष तथा झुंझलाहट का भाव होता है और कहीं माता के प्रति विनम्रता होती है, कभी उसमें करुणा होती है, तो कभी उससे वेदना निःसृत होती है। यह सब काकु का ही चमत्कार है।

नाटक में जब किसी पात्र द्वारा कोई विशेष भाव व्यक्त कराया जाता है, तब वहाँ काकु बहुत सहायक होती है। जो अभिनेता काकु का प्रयोग जितनी कुशलता से करने में

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

समर्थ होगा, वह अपने अभिनय को उतनी ही सफलता पूर्वक निभा सकेगा। नाट्यशास्त्र के १७ वें अध्याय में काकु की विशद व्याख्या पाई जाती है। उसमें छाती, कंठ, शिर आदि काकु के स्थान बताये गये हैं, साथ ही यह भी बताया है कि किस काकु से कौन से रस की सृष्टि होती है। "सङ्गीत रत्नाकर" में काकु के छः प्रकार बताये गये हैं, यथाः—

छाया काकुः षट्प्रकारा स्वररागान्यरागजा।
स्याद्देशक्षेत्रयन्त्राणां तल्लक्षणमथोच्यते ॥

अर्थात्-छाया काकु छः प्रकार के होते हैं। १-स्वर काकु २-राग काकु ३-अन्यराग काकु ४-देश काकु ५-क्षेत्र काकु और ६-यन्त्र काकु।

स्वर काकु—श्रुति को कुछ अधिक या कम कर देने से एक स्वर की दूसरे स्वर में जो छाया दिखाई देती है, वह 'स्वर काकु' है।

राग काकु—किसी राग की जो अपनी मुख्य छाया है, वह 'राग काकु' कहलाती है।

अन्य राग काकु—जब किसी राग की छाया अन्य राग में दिखाई देती है, तो उसे 'अन्य राग काकु' कहते हैं।

देश काकु—जो किसी अन्य राग का सहारा न लेकर अपने देश और स्वभाव से अपने राग में ही सम्मिलित रहता है, उसे 'देश काकु' कहते हैं।

क्षेत्र काकु—क्षेत्र शरीर को कहते हैं। अतः राग में अलग-अलग शरीर के प्रति जो काकु विभिन्न रूप धारण करता है, उसी को 'क्षेत्र काकु' कहते हैं।

यन्त्र काकु—वीणा तथा बाँसुरी आदि वाद्य यन्त्रों से उत्पन्न ध्वनि का जो अपना काकु होता है, उसे 'यन्त्रकाकु' कहते हैं। इस यन्त्र-काकु के द्वारा ही हमारे कान वाद्य-यन्त्रों की परम्परा भिन्नता करके उन्हें बिना देखे ही केवल श्रवण मात्र से पहचान लेते हैं कि यह ध्वनि अमुक वाद्य की है।

अमरकोष के अनुसार "काकु" ध्वनि के उस विकार को कहते हैं, जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो। हमारी सम्मति में काकु की यह व्याख्या बहुत कुछ ठीक है। वास्तव में काकु के अन्दर एक विचित्र शक्ति है, जिसके द्वारा भावों की अभिव्यंजना में स्निग्धता, माधुर्य और रस की सृष्टि होती है सङ्गीत के लिये तो काकु का प्रयोग बहुत ही महत्व रखता है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गायकों के घराने

भारतीय संगीतकला के प्राचीन गायकों में कुछ ऐसे प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक विशेष प्रकार की गायन शैली को जन्म देकर, उसे अपने पुत्रों तथा शिष्यों को सिखाकर प्रचलित किया है। उनकी उस शैली का अनुकरण उनके शिष्यगण तथा कुटुम्बी अब तक करते चले आरहे हैं। उन गायन-शैलियों को ही "घराने" का नाम दिया जाता है। अनेक घरानों के राग-स्वर तो प्रायः एक से ही हैं, किन्तु उनके गाने का या स्वरों को प्रयुक्त करने का ढङ्ग अलग-अलग होने से ही यह कहा जाता है कि यह अमुक घराने की गायिकी है।

गायकों के मुख्य ५ घराने हैं। [१] ग्वालियर घराना, [२] जयपुर घराना, [३] किराना घराना, [४] आगरा घराना और [५] दिल्ली घराना। इन घरानों के संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं:—

(१) ग्वालियर घराना

इस घराने के जन्मदाता प्रसिद्ध संगीतज्ञ हद्दूखां-हस्सूखां के दादा स्व० नत्थन पीरबख्श माने जाते हैं। इनकी वंश-परम्परा इस प्रकार है:—

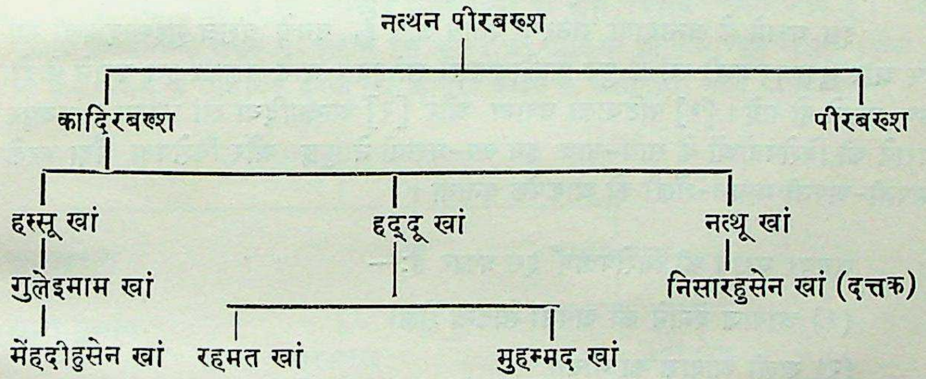

नत्थू खां यद्यपि कादिरबख्श के पुत्र थे, किन्तु यह अपने चाचा पीरबख्श की गोद थे। हस्सू खां, हद्दू खां तथा नत्थू खां यह तीनों भाई प्रसिद्ध ख्याल-गायक एवं ग्वालियर के दरबारी गायक थे।

गुलेइमाम के पुत्र मेंहदीहुसेन को तोड़ी राग गाने में कमाल हासिल था। इस परम्परा के महाराष्ट्रीय शिष्य बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, बासुदेव जोशी, बाबा दीक्षित थे। बालकृष्ण बुआ के शिष्य थे पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर। पलुस्कर जी ने बम्बई पहुँचकर ग्वालियर घराने की गायकी का प्रचार किया, जिसके फलस्वरूप पं० ओमकारनाथ ठाकुर, विनायकराव पटवर्धन, नारायणराव व्यास आदि प्रसिद्ध गायक हमें प्राप्त हुए।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नत्थूखाँ के कोई सन्तान न होने के कारण उन्होंने निसारहुसेन को गोद ले लिया और संगीत की शिक्षा भी भली प्रकार उनको देने लगे। निसारहुसेन ने अपने परिश्रम और प्रतिभा से गायन कला में अच्छी प्रसिद्धि पाई, बाद में आप ग्वालियर के दरबारी गायक नियुक्त हो गये। निसारहुसेन की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है:—

निसारहुसेन की शिष्य-परम्परा

- शंकर पण्डित
  - कृष्णराव पण्डित
  - राजाभैया पूछवाले
- रामकृष्ण बुआ वझे
- भाऊराव आदि

ग्वालियर घराने की गायिकी में निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं:—

(१) ज़ोरदार एवं खुली आवाज़ का गायन

(२) ध्रुवद अङ्ग के ख्याल

(३) सीधी तथा सपाट तानें

(४) बोल तानों में लयकारी

(५) गमकों का प्रयोग

(२) जयपुर घराना

इस घराने के जन्मदाता 'मनरंग' बताये जाते हैं, उनके वंशज मुहम्मदअली खां हुए और मुहम्मदअली खां के पुत्र आशिकअली खां हुए। आगे चलकर इस घराने के दो उप-घराने हो गये। [१] पटियाला घराना और [२] अल्लादिया खां घराना। जयपुर घराने की विशेषताओं के साथ-साथ इन उप-घरानों ने कुछ और विशेषता पैदा करके अपनी-अपनी गायन-शैली को आकर्षक बनाया।

जयपुर घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:—

(१) आवाज़ बनाने की अपनी स्वतन्त्र शैली

(२) खुली आवाज़ का गायन

(३) गीत की संक्षिप्त बन्दिश

(४) वक्र तानें तथा आलाप की छोटी-छोटी तानों से बढ़त

(५) ख्याल-गायन की विशेष बन्दिश

(३) किराना घराना

इस घराने का सम्बन्ध प्रसिद्ध बीनकार बन्देअली खां से बताया जाता है। स्व० अब्दुलकरीम खाँ तथा अब्दुलवहीद ख़ाँ ने इस घराने की ख्याति बढ़ाकर इसे प्रतिष्ठित किया। अब्दुलकरीम खाँ साहब की आवाज़ लगाने की एक विचित्र शैली थी, जिसका दर्शन वर्तमान संगीत-प्रेमी उनके रेकार्डों द्वारा अब भी कर सकते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

स्व० सवाई गन्धर्व, स्व० सुरेश बाबू आदि इसी घराने के कलाकार थे। वर्तमान समय में किराना घराने के प्रतिनिधियों में—गंगूबाई हंगल, उस्ताद रजब अलीखां, उस्ताद अमीरखाँ, रोशनआरा बेगम, हीराबाई बड़ौदेकर के नाम उल्लेखनीय हैं।

किराना घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

(१) स्वर लगाने का अपना एक विशेष ढङ्ग

(२) एक-एक स्वर को शनैः-शनैः आगे बढ़ाते हुए गायन

(३) आलाप प्रधान गायकी

(४) ठुमरी अङ्ग

(४) आगरा घराना—

अलखदास मलूकदास से इस घराने की उत्पत्ति बताई जाती है। किन्तु वास्तव में तो इस घराने के प्रवर्तक हाजी सुजान (तानसेन के दामाद) हैं। आगे चलकर खुदाबख्श (ग गे) द्वारा इस घराने का प्रचार हुआ। आगरा घराने की बहुत सी बातें ग्वालियर से मेल खाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि खुदाबख्श ने ग्वालियर वाले नत्थन पीरबख्श से ख्याल गायकी की तालीम पाई थी, बाद में वे फिर आगरे चले गये।

आगरा घराने में स्व० उस्ताद फैयाज खां का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह गुलाम अब्बास के धेवते थे, इन्होंने इस घराने की गायिकी का नाम खूब रौशन किया। वर्तमान समय में विलायत हुसेन खाँ आगरा घराने के प्रतिनिधि माने जाते हैं:—

आगरा घराना:—

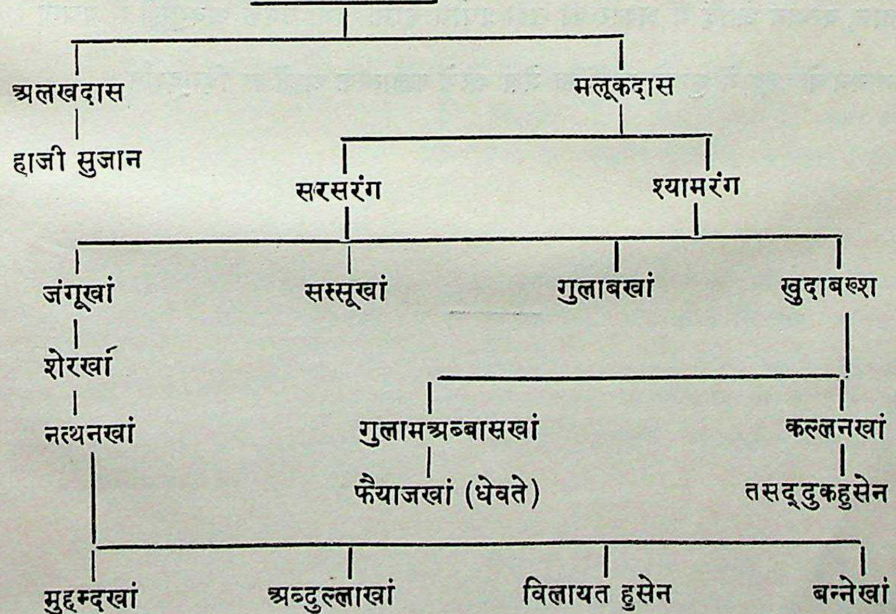

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आगरा घराने की विशेषताएँ:—

(१) नोमतोम में आलाप

(२) बन्दिशदार चीज़ों का गायन

(३) खुली और ज़ोरदार आवाज़

(४) ख्याल-गायकी के साथ-साथ ध्रुपद-धमार-गायन

(५) बोलतानों पर अधिकार

(५) दिल्ली घराना

मुग़ल बादशाहों के पतन के पश्चात् तानरसखां द्वारा इस घराने की स्थापना बताई जाती है। तानरस खां के पुत्र उमराव खां ने इस घराने को आगे बढ़ाया। वर्तमान समय में इस घराने के प्रतिनिधि उस्ताद चाँद ख़ाँ हैं। इस घराने की विशेषता निम्न प्रकार हैं:—

१—तान लेने की विचित्र पद्धतियाँ, जैसे—जोड़ तोड़ की तान, झूला की तान, झकोले की तान, उखेड़ की तान, फन्दे की तान आदि।

२—द्रुतलय में तानों का प्रयोग।

३—ख्यालों की कलापूर्ण बन्दिशें विलम्बित लय के ख्यालों में, पालकी के ख्याल, सवारी के ख्याल, पटरी के ख्याल तथा खानापुरी के ख्याल।

४—ताल और लय पर अधिकार।

५—तान, बन्धान आदि में अकार का सही प्रयोग करना तथा उनके अवगुणों से बचना।

६—गायन के अङ्ग में सुन्दर स्वरों का मेल करके कलात्मक अङ्गों का दिग्दर्शन।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति

विश्व में चार स्वरलिपि पद्धतियों के आधार पर ही समस्त पद्धतियाँ आधारित हैं, उन चारों के नाम इस प्रकार हैं:—

१—सोल्फा नोटेशन (Solfa Notation)

२—न्यूम्स् नोटेशन (Neumes Notation)

३—चीव्ह नोटेशन (Cheve Notation)

४—स्टाफ़ नोटेशन (Staff Notation)

सोल्फा नोटेशन—जिस प्रकार भारतीय स्वरों के नाम सा, रे, ग, म, प ध, नि हैं. उसी प्रकार पाश्चात्य देशों में सोल्फा स्वरलिपि पद्धति के अन्तर्गत स्वरों के नाम डो (Do), रे (Re), मी (Me), फ़ा (Fa), सो (Sol), ला (La), सी (Si) हैं। अर्थात् सा, रे, ध, प, म ग, इनको इस प्रकार लिखेंगे:—

डो, रे, ला, सो, फा, मी।

सोल्फा नोटेशन प्रणाली का आधुनिक स्वरूप मिस एस० ए० ग्लोवर तथा जौन करवेन के प्रयासों का रूप है। प्रारम्भिक सङ्गीत शिक्षा के लिये इङ्गलैंड में इस पद्धति का स्तैमाल बड़े पैमाने पर होता है। तार सप्तक के स्वर दिखाने के लिये इस पद्धति में खड़ी या पड़ी रेखाएँ लगादी जाती हैं; इसी प्रकार मन्द्र सप्तक के स्वरों के नीचे पड़ी रेखाएँ होती हैं। जैसे— d̄ r̄ m̄ या d̍ r̍ m̍ (तार सप्तक के स्वर) तथा d̲ r̲ m̲ (मन्द्र सप्तक के स्वर)।

कोमल व तीव्र स्वरों के लिये केवल उच्चारण में ही परिवर्तन कर दिया जाता है, जैसे— डो रे (Do, Re) के स्थान पर डा, रा (Da, Ra) लिखेंगे, इसी प्रकार तीव्र स्वरों के लिये डे, रे (De, Re)। अन्य चिन्हों को दर्शाने के लिये विभिन्न रेखाओं, बिन्दुओं आदि का प्रयोग किया जाता है।

न्यूम्स् नोटेशन—यह स्वरलिपि पद्धति धर्म की गोद में पली और रोम के चर्चों से विकसित हुई। चर्चों में गाये जाने वाले सङ्गीत के प्रचार के लिये इस पद्धति का तीव्रता से प्रसार हुआ। धार्मिक गीतों का संकेत करने के लिये इस पद्धति का बेहद प्रचार हुआ। विराम, स्वल्प विराम तथा डैश और आड़ी-टेढ़ी रेखाओं से ही इस पद्धति में स्वर-स्थानों को इङ्गित किया जाता है। भारतीय सङ्गीत में वेदकालीन ऋचाओं पर भी इसी प्रकार के चिन्ह पाये जाते हैं।

चीव्ह नोटेशन—अठारहवीं सदी में फ्रांस के ई० चीव्ह नामक गणितज्ञ ने इस अभिनव स्वरांकन पद्धति को जन्म दिया, इसलिये यह चीव्ह नोटेशन के नाम से प्रसिद्ध

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हुई। इसमें स्वरों को दिग्दर्शित करने के लिये गणित के अङ्क प्रयोग में लाये जाते हैं एवं ऊँचे-नीचे स्वर दर्शाने के लिये अंकों के ऊपर और नीचे बिन्दु लगा दिये जाते हैं। हमारे सामवेद के मन्त्रों पर भी १, २, ३, ४ स्वर-संकेत मिलते हैं।

स्टाफ़ नोटेशन—यह न्यूम्स नोटेशन का ही परिवर्धित रूप है। पाँच समानान्तर आड़ी लकीरों का स्तम्भ Staff बनाकर उसके बीच में स्वरों को अंकित किया जाता है। स्वरों के लिये इसमें O यह चिन्ह प्रयुक्त होता है। इस पद्धति की सर्वप्रधान विशेषता यह है कि इसमें स्वर और ताल को एक साथ दिखाया जाता है, अर्थात् एक ही चिन्ह में स्वर, ताल और लय का संकेत मिल जायगा। आजकल अधिकांश देशों में इसी पद्धति का प्रचार है। सूक्ष्मतम भावों को प्रकट करने के लिये यह पद्धति सर्वाङ्गीण है, इसलिये अनेक भारतीय कलाकार भी विशेषकर चलचित्र संगीत-निर्देशक इसी को अपनाते चले आ रहे हैं।

पाश्चात्य संगीत-शास्त्र के विकास में सामूहिकता, पार्श्व-संगीत एवं साधारण प्रभाव (General effect) मूल उपादान रहे। इन्हीं को लेकर पाश्चात्य स्टाफ़ नोटेशन भी पुरःसर होता रहा। गिरजाघरों के वृन्द संगीत में समय-समय पर भिन्न-भिन्न कंठ-स्वरों का समावेश होता रहा। संगीत में शामिल होने वाले सभी तरह के नादों का प्रतिनिधित्व करना स्टाफ नोटेशन के लिये ज़रूरी था। स्त्री, पुरुष, बाल इनके स्वाभाविक कंठ-स्वरों में अन्तर हुआ करता है। इनको भलीभांति दिग्दर्शित करने के लिये स्टाफ़-नोटेशन में एक पंक्ति (Staff) और बढ़ादी गई। स्टाफ में पांच पंक्तियों के स्थान पर पर अब छः होगईं, फिर भी संगीत के सम्भाव्य स्वरों की विविधता एवं मानव कण्ठ की विशालता इससे प्रकट न होती थी, इसलिये स्टाफ नोटेशन में ग्यारह पंक्तियों (Staves) के एक विशाल स्टाफ की कल्पना की गई। इसको पाश्चात्य परिभाषा में ग्रैण्ड स्टाफ (Grand Staff) के नाम से सम्बोधित किया गया।

स्टाफ नोटेशन को पढ़ने और समझने के लिये उसके स्वर-संकेतों (Symbols) से परिचित होना आवश्यक है, जोकि क्रमबद्ध दिये जाते हैं:—

शुद्ध स्वर—शुद्ध स्वरों को दिखाने के लिये O यह अण्डाकार चिन्ह प्रयुक्त होता है। स्टाफ की पांच रेखाओं के अन्तर्गत स्थान से यह चिन्ह किस स्वर के लिये आया है, इस बात का पता चल जाता है और सा से लेकर नि तक सभी स्वरों को यह दर्शाता है। विशिष्ट स्वरों की पहिचान इस चिन्ह के स्थान के ऊपर निर्भर है, जैसे:—

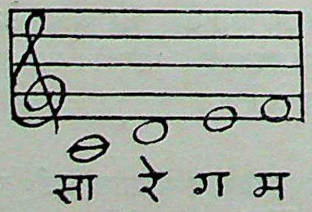

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कोमल स्वर—कोमल स्वर के लिये स्वरों से पहले ♭ यह चिन्ह प्रयुक्त होता है, जैसे:-

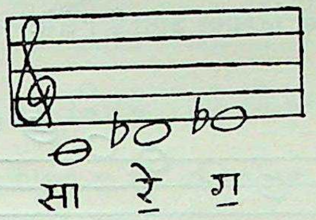

तीव्र स्वर—इनको दिखाने के लिये अन्य चिन्ह प्रयुक्त होता है, जो नीचे के चित्र में मं के ऊपर अण्डाकार चिन्ह से पहले लगाया गया है:—

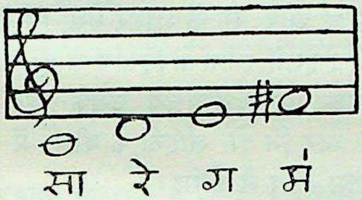

मूल स्वर (Natural)—इसके लिये ♮ यह चिन्ह प्रयोग होता है। कोमल, तीव्र के अतिरिक्त Natural का चिन्ह स्टाफ नोटेशन की अपनी विशेषता है। स्वर के विकृत होने पर जब उसको मूल रूप या स्वाभाविक स्थिति पर लाया जाता है तो इस चिन्ह का प्रयोग होता है। जैसे कोमल ग के बाद शुद्ध ग या तीव्र म के बाद शुद्ध म। राग ललित का ग म, मं म टुकड़ा स्टाफ में इस प्रकार लिखा जायेगा:—

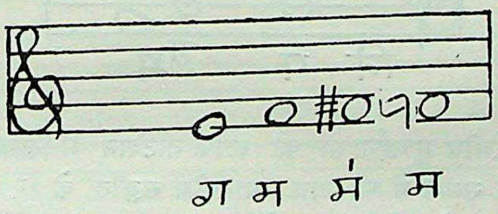

मन्द्र सप्तक—ट्रेबल स्टाफ के नीचे छोटी पंक्तियों को लिखकर मन्द्र स्वर दिखलाए जाते हैं। इन लाइनों को लेजर लाइन (Ledger Lines) कहते हैं। जैसे:—

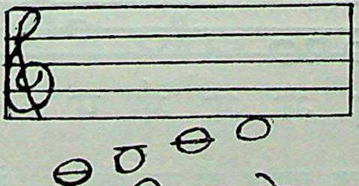

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तार सप्तक—तार सप्तक के पञ्चम तक के स्वरों का अन्तर्भाव पांच लाइन के स्टाफ में होता है। ऊपर के स्वरों को दिखाना हो तो स्टाफ के ऊपर छोटी लाइनों (Ledger Lines) से उनको दिखाया जाता है। जैसेः—

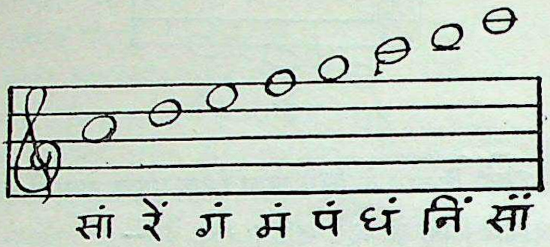

उपर्युक्त उदाहरण में धं और सां के भीतर तथा नि के नीचे जो छोटी लाइनें हैं, वही लेजर लाइन कहलाती हैं। इसमें स्थान के हिसाब से ही स्वरों की पहिचान होती है। तार पं स्टाफ की आखिरी लाइन पर है, इसलिये उसके बाद का धं स्वर लाइन के मध्य में ही होगा, उसके बाद का तार निं दो लाइनों के बीच में और अति तार सां उसके बाद की लाइन को चीरता हुआ बीच में होगा।

कण स्वर—इसको Appogiaturo कहते हैं। यह स्वर से पहले छोटे आकार में लिखा जाता है। नीचे के चित्र में म पर दिया हुआ प कण स्वर लघु आकार में दिखाया गया है। जैसेः—

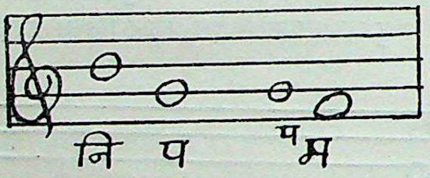

अब कुछ भारतीय मूर्च्छनाओं को स्टाफ नोटेशन में लिखा जाता है, ताकि यह पद्धति अच्छी प्रकार समझ में आ जाय। भारतीय सङ्गीत के १२ स्वरों की मूर्च्छना का पर्याय पाश्चात्य सङ्गीत के क्रोमाटिक स्केल (Chromatic Scale) में मिलता है। यह १२ स्वर (७ शुद्ध और ५ विकृत) स्टाफ नोटेशन में इस प्रकार लिखे जायेंगेः—

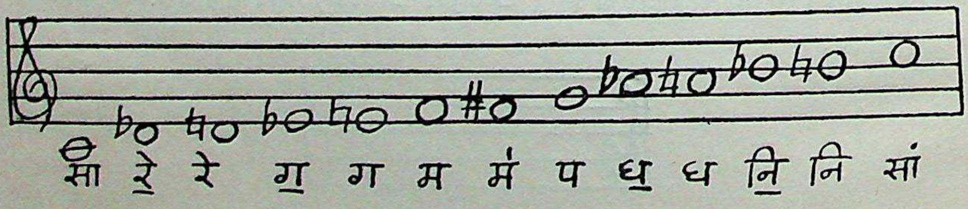

अब लीजिये पाश्चात्य सङ्गीत की मूल मूर्च्छना (मेजर स्केल)। पाश्चात्य C या सा पर आधारित यह मूर्च्छना हमारे बिलावल मेल से मेल खाती हैः—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

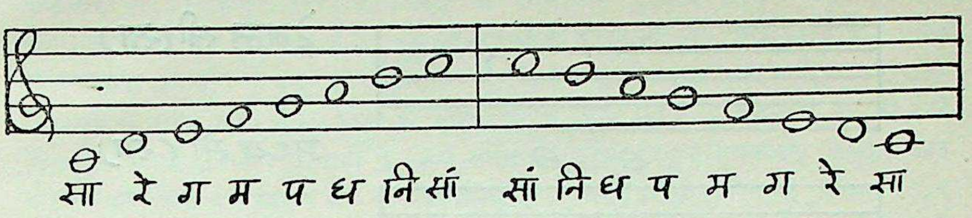

अब देखिये पाश्चात्य सङ्गीत का सी पर आश्रित माइनर स्केल, जो आधुनिक कीरवानी राग से मिलता-जुलता है :—

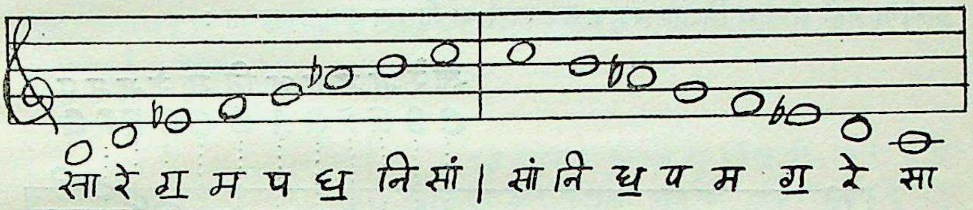

भारतीय तथा पाश्चात्य स्वरांकन के उपर्युक्त तुलनात्मक विवरण से स्टाफ नोटेशन की स्पष्ट कल्पना आ सकती है। जैसा कि पहले बताया गया है, स्टाफ नोटेशन की विशेषता इसमें है कि स्वर और ताल का अङ्कन एक साथ ही किया जाता है। ताल के लिये अलग चिन्ह इसमें नहीं दिये जाते। पाश्चात्य सङ्गीत के ताल प्रायः छन्दों से सम्बद्ध हैं। छन्द की विविध गति भिन्न-भिन्न तालों एवं लयों में प्रस्फुटित हो उठती है। ताल सहित स्वरों के अङ्कन की शैली बारहवीं सदी के बाद आविष्कृत हुई, जिसके द्वारा गीत के स्वरों के साथ ही उसकी लय और ताल का स्पष्ट आभास मिलने लगा।

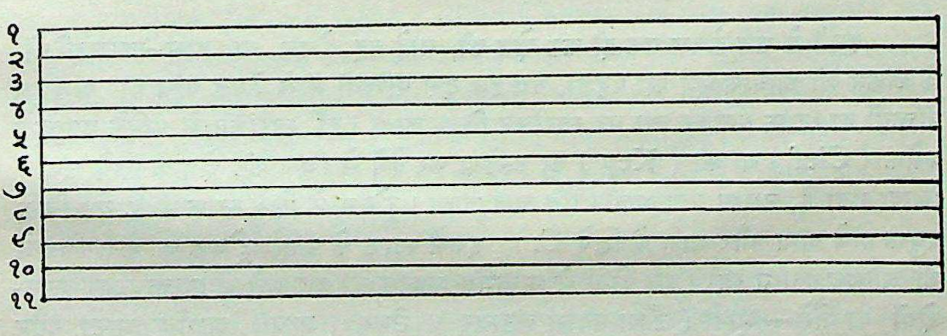

इस स्टाफ पर तीनों सप्तकों एवं विभिन्न कण्ठ स्वरों को भलीभांति अङ्कित किया जा सकता था। किन्तु कठिनाई यह थी कि इतने विशाल स्टाफ को लिखकर उस पर स्वरों को और कण्ठक्षेत्रों (Clefs) को अङ्कित करना क्लिष्ट एवं असुविधाजनक था। नादों के सम्मिश्र कोलाहल में मध्य सप्तक के स्वरों की पहिचान एक कठिन समस्या थी। इसलिये इसके बीच की मध्य पंक्ति (Middle Line) को छोड़कर निम्नांकित रूप उसको दिया गया:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

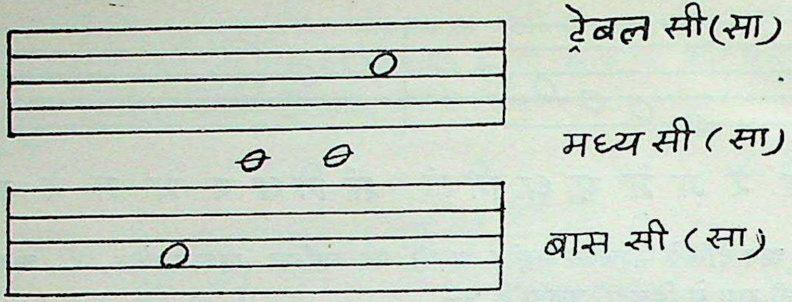

इसमें बीच की मध्य सा की पंक्ति आवश्यकता होने पर ही लिखी जाती थी, अन्यथा नहीं। इस विशाल स्टाफ पर स्वरों का हिसाब इस प्रकार था :—

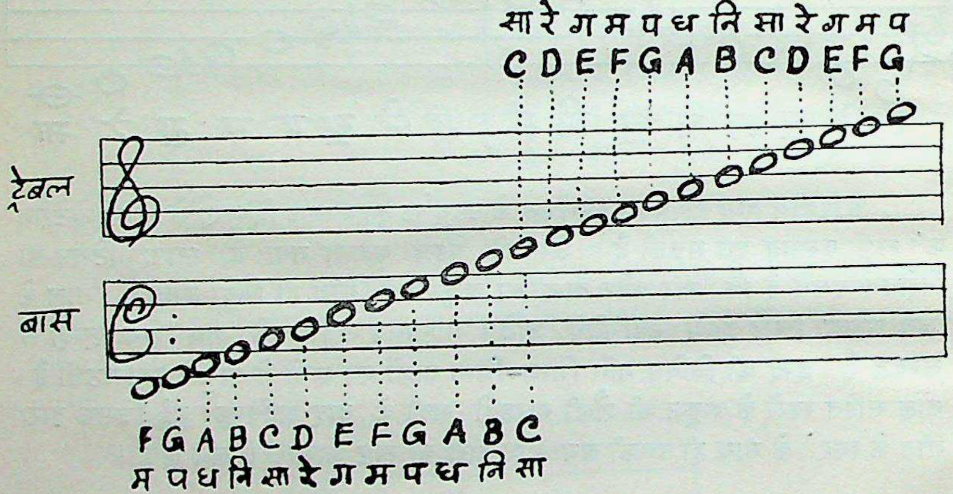

इनमें से जब केवल एक ही कंठ क्षेत्र की, चाहे वह ट्रेबल या बास-स्वरलहरियों के अंकन की आवश्यकता आ पड़ती, तब इन दस पंक्तियों में से केवल पांच ही अनुकूल पंक्तियों का स्टाफ बनाकर उस पर स्वरांकन किया जाता। हाँ, स्वरांकन के पहिले अनुकूल क्लेफ (Clef) या की (Key) का उल्लेख कर देने से जिस कंठ क्षेत्र के लिये संगीत लिखा गया है, उसका पता भलीभाँति चल जाता। ट्रेबल के लिये स्टाफ में & यह चिन्ह प्रयुक्त होने लगा और बास के लिये C:। इससे स्टाफ के पहिले ट्रेबल या बास लिखने की आवश्यकता न रही। इन दोनों के अन्तर्गत सङ्गीत की हारमनी में प्रयुक्त सभी कण्ठ-क्षेत्रों का जैसे—अस्टो (ऊँचा पतला कंठस्वर), टेनर (मध्यम अर्थात् अस्टो और बास के बीच का कंठस्वर) तथा बास (गम्भीर, मोटा, खरज वाला कण्ठ-स्वर) का समावेश होने लगा। आधुनिक नोटेशन में केवल दो क्लेफ (Clef) का प्रयोग होता है—१-ट्रेबल, २-बास।

पाश्चात्य सङ्गीत में स्वरांकन को अधिक से अधिक सुलभ, साथ ही वैज्ञानिक भी बनाने की ओर प्रवृत्ति भलीभांति लक्षित होती है। किसी राग में लगने वाले विकृत स्वर-चिन्हों की बार-बार आवृत्ति अखरने वाली तो होती ही है, क्लिष्ट भी लगती है और

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कुछ भद्दी भी। विकृत स्वरों के चिन्हों के अत्यधिक दुहराये जाने से नोटेशन की कलात्मकता पर ठेस पहुँचती है। इन विकृतियों को दिखाना तो अपरिहार्य है। इस आवश्यकता की पूर्ति के हेतु 'की-सिग्नेचर' (Key signature) का प्रयोग पाश्चात्य स्वरांकन में पाया जाता है। स्वरों के विकृत-दर्शक चिन्ह स्टाफ के आरम्भ में ही रखे जाते हैं। स्टाफ की पांच पंक्तियों में जिस स्थान पर उनका अङ्कन हुआ हो, उसी स्थान के स्वरों को अन्त तक विकृत रूप में पढ़ा जाता है। यदि किसी गीत में कोमल-तीव्र स्वरों का प्रयोग अपेक्षित है, तो प्रत्येक स्वर के साथ कोमल-तीव्र का चिन्ह जोड़ देने की आवश्यकता शेष नहीं रहती। यदि स्टाफ के आरम्भ में क्लेफ के पश्चात् अपेक्षित स्थान पर तीव्र कोमल का निशान अङ्कित किया जाय, तो वह चिन्ह तीनों सप्तकों में उन स्वरों के लिये लागू समझा जाता है। उदाहरण के लिये यदि भैरव के स्वरों को अङ्कित करना चाहें, तो उसके रि, ध कोमल के चिन्ह एक ही बार क्लेफ के सामने लिखने से कार्य सिद्ध हो जाता है। देखिये :—

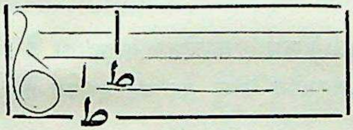

इस स्टाफ में कोमल का चिन्ह, रि और ध के स्थान पर होने से इस बात का संकेत होता है कि गीत में सर्वत्र यह स्वर कोमल ही प्रयुक्त होंगे। इस योजना से मेल अथवा राग के स्वरों की प्रकृति स्टाफ को देखते ही स्पष्ट हो जाती है।

जैसा पहले कहा गया है, स्टाफ नोटेशन की सर्वप्रधान विशेषता यह है कि स्वरों के साथ ही ताल का अंकन उसमें पाया जाता है। स्वरों के साथ उनकी कालावधि (Duration) का सम्बन्ध महत्वपूर्ण होता है। स्वरों की कालावधि मात्राओं में नापी जाती है। यह विभिन्न स्वर किसी एक प्रधान लय की ओर बढ़ते हुए एक पेटर्न (Pattern) बना देते हैं, जो विशिष्ट ताल के नाम से जाना जाता है। एक लम्बे अर्से तक सङ्गीत के स्वर समान कालावधि (Uniform duration) के निदर्शक माने जाते थे। प्रारंभिक सीधे-सादे सङ्गीत (Plain Chants) के लिये यह अनुकूल था, किन्तु गीत के स्वरों में इससे जड़ता एवं यांत्रिकता आ जाती थी। इसको अनुभव करते हुए फ्रांस के फ्रेंको नामक व्यक्ति ने स्वर सम्बन्धी अनुसन्धान किये, जिसके परिणाम स्वरूप स्वरों के विविध कालान्तरों (Time Intervals) की कल्पना की गई। विभिन्न कालावधि के स्वर, सङ्गीत में वैचित्र्य एवं चारुता का संचार करते हैं। इनको भलीभांति दिग्दर्शित करने में स्वरांकन की सफलता है।

पाश्चात्य सङ्गीत में ताल का सम्बन्ध मुख्य रूप से स्वरों के विभिन्न कालांतर और आघात की विविधता(Varieties of ascent)से है। ताल के प्रत्येक विभाग(Measure) में स्वरों का समय की दृष्टि से क्या मूल्य है, इस पर ताल की विधियाँ आधारित हैं। विभाग में स्वर का मूल्य (Value) १ मात्रा $\frac{१}{२}$ मात्रा या $\frac{१}{४}$ मात्रा है, और ऐसे स्वर एक विभाग में कितने हैं और किस लय को दिखाते हैं—वह बात उनके ताल निर्धारण में महत्व की है। स्वरों के कालांतर विभिन्न संकेतों (Symbols) से दिग्दर्शित होते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है केवल स्वरों को दिखाने के लिये स्टाफ के बीच विशिष्ट स्थान पर स्वर-चिन्ह देने से कार्यसिद्धि हो जाती है। किन्तु स्वर बिना कालान्तर (Time

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

Intervals) के ताल का निर्माण नहीं कर सकते, यह मानी हुई बात है। ऐसी दशा में स्वरों की समय की दृष्टि से लम्बाई दिखाने के लिये निम्न संकेतों को अपनाया जाता है:-

* यह चिन्ह 'सेमिब्रेव्ह' के नाम से पहचाना जाता है। यह चार मात्राओं के कालान्तर को बताता है। भारतीय तालों की चतस्रजाति इसी का पर्याय-स्वरूप है। जिस स्थान पर यह चिन्ह आया हो, उस स्वर को चार मात्रा तक दीर्घ करने का संकेत इससे मिलता है। यदि यह चिन्द 'सा' के स्थान पर आया हो, तो उसका अर्थ होगा, सा - - -

यह चिन्ह 'मिनिम' कहलाता है और इसका मूल्य है दो मात्राएँ। भारतीय परिभाषा में इसी को गुरु कहते हैं। स्टाफ में 'सा' के स्थान पर आने से इसका अर्थ होगा, सा -

उपर्युक्त 'मिनिम' का यह बन्द (Closed) रूप 'क्रोचेट' कहलाता है। इससे १ मात्रा के कालखंड का संकेत होता है। भारतीय 'लघु का यह पर्याय है।

यह चिन्ह जो ½ मात्रा (अर्ध मात्रा) के लिये आता है। भारतीय 'द्रुत' से सादृश्य रखता है। इसको हमारी स्वरलिपि में 'सा' लिखा जायगा। इस चिन्ह को 'क्वेव्हर', कहते हैं।

पाव मात्रा (¼ मात्रा) के लिये आने वाला यह चिन्ह 'सेमिक्वेव्हर' के नाम से बोला जाता है। इसका प्रतिनिधित्व हमारे 'सा' के रूप में होगा। भारतीय ताल-शास्त्र में इस कालखण्ड को 'अणुद्रुत' कहते हैं।

उपर्युक्त चिन्हों में से प्रत्येक पूर्ववर्ती चिन्ह परवर्ती स्वरचिन्ह की दुगुन बताता है। लम्बाई की दृष्टि से उनका पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार होगा:—

१—सेमिब्रेव्ह = २ मिनिम = ४ क्रोचेट = ८ क्वेव्हर = १६ सेमिक्वेव्हर।

पाश्चात्य तालों को समझने में यह हिसाब उपयोगी एवं आवश्यक होता है। यह लयदर्शक चिन्ह सुविधा और कलात्मकता की दृष्टि से सीधे या उलटे दोनों प्रकार से लिखे जाते हैं। जैसे क्रोचेट चिन्ह अथवा इसका उल्टा इन दोनों प्रकार से अंकित किया जा सकता है। यह बात अन्य चिन्हों पर भी चरितार्थ होती है। दो क्वेव्हर या अर्धमात्रा स्वरों को मिलाना हो तो

या इन दोनों प्रकारों से लिख सकते हैं। नोटेशन में कलात्मकता बनाये रखने के लिये इन दोनों प्रकारों का अवलंबन किया जाता है। जहाँ इनसे भी सूक्ष्म

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कालान्तर दिखाना हो, वहाँ बिन्दुओं (dots) का प्रयोग पाया जाता है। उदाहरण के लिये १½ मात्रा काल को दिखाने के लिए क्रोचेट के बाद एक बिन्दु रखने से काम बन जाता है। जैसे स्टाफ के बीच

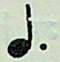

यह चिन्ह १½ मात्रा काल को दिखाता है। जिस प्रकार स्वर-चिन्हों के बाद एक बिन्दु रख देने से पूर्ववर्ती स्वर का अर्थ कालावधि का संकेत होता है, उसी प्रकार दो बिन्दुओं के प्रयोग से पूर्ववर्ती स्वर की पौन गुनी कालावधि को दर्शित किया जाता है। यदि ३½ मात्रा काल को दिखाना हो, तो वह मिनिम (= २ मात्रा) के बाद दो बिन्दु रखकर दिखाया जायगा। जैसे इस रेखा-

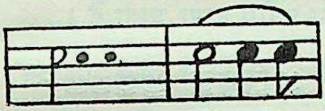

चित्र में दोनों विभागों (Bars) में ३½ मात्रा की कालावधि दर्शित की गई है। इस प्रकार को सूक्ष्म कालावधि दिखाने के लिये दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जो उपर्युक्त दो विभागों में दिग्दर्शित हैं। दूसरे विभाग के स्वरों का वही मूल्य है, जो पहले विभाग का। पहले में मिनिम के बाद दो बिन्दु मिनिम की पौन मात्रा काल ($२ \times \frac{३}{४} = १\frac{१}{२}$ मात्रा) को दिखाते हैं। कुल मिलाकर $२ + १\frac{१}{२} = ३\frac{१}{२}$ मात्रा का हिसाब पाया जाता है। दूसरे विभाग में यही बात चिन्हों से प्रकट की गई है। ऊपर की वक्ररेखा (Curve) यह बताती है कि मिनिम स्वर १½ मात्रा काल तक लम्बा किया गया है। इस प्रकार चिन्हों को अलग-अलग दर्शित करने की अपेक्षा मूल स्वर के समय की दृष्टि से लम्बाई दिखाने के लिए बिन्दुओं का सहारा लिया जाता है। जैसे, यदि सेमिब्रेव्ह (= ४ मात्रा) को २ मात्रा काल तक दीर्घ करना हो तो वह इस प्रकार दिखाया जायगा।

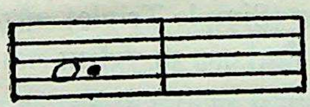

इसमें सेमिब्रेव्ह के बाद का बिन्दु उसके अर्ध कालांतर (२ मात्राकाल) को दर्शाता है। दोनों मिलकर ६ मात्राओं की अवधि दिखाते हैं।

पाश्चात्य स्वरांकन में 'रेस्ट्स' (Rests) नामक वस्तु पाई जाती है, जो मूक मात्राओं की द्योतक है। दो स्वरों के बीच यदा-कदा कुछ समय तक खामोशी (Silence) अपेक्षित होती है। उसको दर्शाने के लिए 'रेस्ट' नाम के चिन्हों का प्रयोग होता है। ऊपर निर्दिष्ट स्वर चिन्हों के साथ 'रेस्ट' चिन्ह भी अलग-अलग होते हैं, जो उस काल तक निःशब्द मात्राओं की अवधि को दिखाते हैं। यह इस प्रकार हैं:—

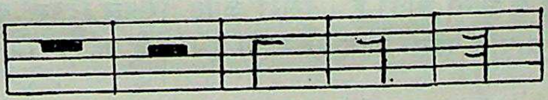

से० ब्रेव्हर मिनिम क्रोचेट क्वेव्हर सेमिक्वेव्हर

इससे स्पष्ट होगा कि 'रेस्ट' चिन्ह विभिन्न स्वर-चिन्हों के लिए अलग-अलग हैं। यदि ४ मात्राकाल तक निःशब्द मात्राओं को दिखाना हो, तो उसके लिए सेमीब्रेव्ह का रेस्ट ही प्रयुक्त होगा। यही बात अन्य काल चिन्हों की है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उपर्युक्त विवरण के आधार पर भारतीय संगीत का निम्नलिखित अंश पाश्चात्य नोटेशन में इस प्रकार लिखेंगेः—

प म ग रे | सा - - - | ध प म ग | रे - - - ||

दूसरा उदाहरण लीजिये जिसमें पाव मात्रा काल का प्रयोग पाया जाता है।

सारेगसा रेगमरे गमपग म | पधनिप धनिसांध निसांरेंनि सां ||

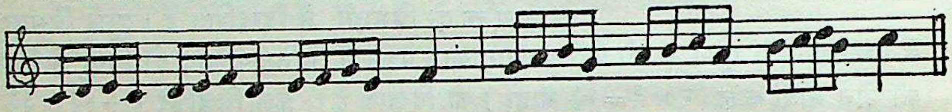

उपर्युक्त पंक्ति में पाव-मात्राएँ दो मोटी रेखाओं से दर्शित हैं। गीत के विभाग के लिए खड़ी लकीर का प्रयोग होता है और गीत की समाप्ति के लिए दो खड़ी लकीरों का प्रयोग किया जाता है।

पाश्चात्य संगीत के ताल

पाश्चात्य सङ्गीत के ताल मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं— १—सिंपल ड्युपल (Simple Duple), २—सिंपल ट्रिपल (Simple Triple) और सिंपल क्वाड्रुपल (Simple Qaudruple)। तीनों जातियाँ ताल की विभिन्न गति तथा लय पर निर्भर हैं। योरीपीय तालों का विकास मुख्य रूप से इन तीनों को लेकर हुआ है। जो कुछ भेद-विभेद हैं, यही प्रशाखाओं के रूप में विवृत किये जा सकते हैं। हम जानते हैं कि छन्दों की लय, आवर्तन तथा आघात (Beats) पर ताल के विभिन्न प्रकारों की परिकल्पना की जाती है। शीघ्र अभियान (Quick March) में पैरों की गति द्रुत ×१ २ | ×१ २ | ×१ २ इस प्रकार की होती है। प्रत्येक विभाग में मात्राएँ और आघात पहली मात्रा पर होता है। भारतीय एकताल से मिलने वाली लय Simple Druple के नाम से जानी जाती है। दूसरी जाति 'सिंपल ट्रिपल' के प्रत्येक विभाग में तीन स्वर होकर आघात पहली मात्रा पर रहता है। चाहे वह स्वर मिनिम हो, क्रोचेट हो, या क्वेव्हर। इसका सांकेतिक दिग्दर्शन इस प्रकार होगा—×१ २ ३ | ×१ २ ३ | ×१ २ ३ हिन्दुस्तानी सङ्गीत के 'दादरा' ताल से इसका साम्य है। सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला ताल 'सिंपल क्वाड्रूपल' (Simple Quadruple) के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका मेल भारतीय आदिताल से बैठता है। हरेक विभाग में ४ मात्राएँ होती हैं, मुख्याघात (Main Beat) पहली मात्रा पर और लय कुछ विलम्बित होती है। इसका चलन— ×१ २ ३ ४ | ×१ २ ३ ४ | ×१ २ ३ ४ इस प्रकार का होता है। इनके अतिरिक्त अन्य

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ताल भी पाये जाते हैं, जिनमें हरेक विभाग में ६ या ७ मात्राओं की स्थिति पाई जाती है। किन्तु यह उपर्युक्त तीन तालों का विस्तार और उन्हीं के मिले-जुले स्वरूप हैं। इनको 'कम्पाउण्ड रिद्म' (Compound Rhythms) कहा जाता है।

पाश्चात्य सङ्गीत के नोटेशन में तालों का संकेत अपूर्णाङ्क-चिन्हों (Fractions) से होता है। इनको 'टाइम सिग्नेचर' (Time Signature) या ताल-संकेत कहते हैं। जैसे $\frac{२}{४}$ (टू-फोर), $\frac{३}{४}$ (थ्री-फोर), $\frac{४}{४}$ (फोर-फोर), $\frac{६}{८}$ (सिक्स-एट) आदि। इस अपूर्णाङ्क (Fraction) में छेद (Denominator) यह बताता है कि सेमिब्रेव्ह का कौनसा हिस्सा ताल में प्रधान है और अंश (Numerator) यह बताता है कि वह हिस्सा एक बार में कितनी दफा आया है। इस हिसाब में सेमिब्रेव्ह (=४ मात्रा काल का चिन्ह) को प्रमाणित कालांतर (Standard Time Interval) माना जाता है।

उदाहरण के लिये $\frac{२}{४}$ (टू-फोर) का अर्थ यह होगा कि ताल में क्रोचेट ♩. (जो से० ब्रेव्ह का ४ था हिस्सा है) की प्रधानता होगी और यह प्रत्येक विभाग में दो के हिसाब से आता रहेगा। इसको स्टाफ में इस प्रकार लिखा जायगा: —

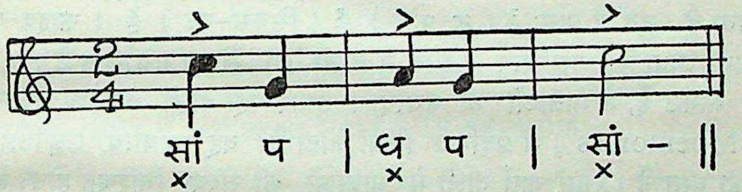

इसी प्रकार $\frac{३}{४}$ [थ्री-फोर] का यह अर्थ है कि ताल में क्रोचेट [जो से० ब्रेव्ह का चौथा हिस्सा है] की प्रधानता है और यह हरेक विभाग में ३ के हिसाब से आता रहेगा। देखिए—

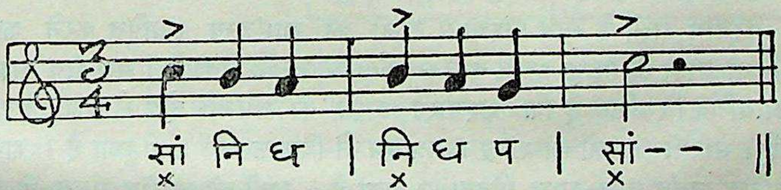

इस स्टाफ के तीसरे विभाग में यद्यपि ३ क्रोचेट नहीं पाये जाते, तथापि मिनिम और बिंदु दोनों का मूल्य ३ क्रोचेट के बराबर है। सबसे अधिक प्रचार में आने वाला ताल $\frac{४}{४}$ [फोर-फोर] जिसको 'कामन टाइम' कहा जाता है, स्टाफ में इस प्रकार लिखा जायगा:—

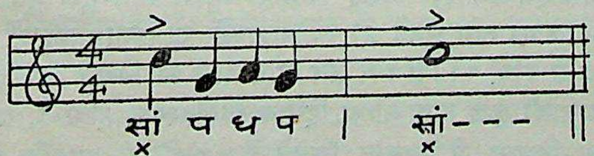

[इसी को 'कामन टाइम' कहते हैं और $\frac{४}{४}$ के स्थान पर 'C' लिखकर भी इसका संकेत किया जा सकता है]

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अब लीजिये $\frac{6}{8}$ (सिक्स-एट) ताल जो 'खेमटा' के सदृश है। यह एक संमिश्र (Compound) ताल है और $\frac{3}{4}$ (थ्री-फोर) की एक प्रशाखा। इसमें क्वेव्हर (अर्धमात्रा-चिन्ह) की प्रधानता है। प्रत्येक विभाग में ६ के हिसाब से यह ताल गतिमान होता है। यहाँ क्वेव्हर की प्रधानता ' इस छेद (Denominator) से प्रगट की जाती है। इन तालों में किसी कालांग की प्रधानता का अर्थ यह नहीं कि उसके अतिरिक्त दूसरा कालांग उसमें नहीं आता। उसी विशिष्ट कालांग के बराबरी के दूसरे कालान्तर उसमें आ सकते हैं; आवश्यक यह है कि उनका मूल्य उस ताल के प्रधान कालांग के समान हो। उपर्युक्त $\frac{4}{4}$ (फोर-फोर) ताल में क्रोचेट की प्रधानता होते हुए दूसरे विभाग में 'सेमिब्रेव्ह' चिन्ह दिखाई पड़ रहा है, किन्तु इसका मूल्य ४ क्रोचेट के बराबर होने के कारण ताल की लय में कोई क्षति नहीं होती।

भारतीय सङ्गीत में जिस प्रकार लय तीन प्रकार की—द्रुत, मध्य, विलम्बित पाई जाती हैं, वैसे ही पाश्चात्य तालों में लय के ३ प्रकार पाये जाते हैं, जो अलेग्रो (Allegro), माडरेटो (Moderato) और अडेजियो (Adajio) के नाम से अभिहित हैं। ये क्रमशः द्रुत, मध्य और विलम्बित के लिये आते हैं। इनके साथ कुछ विशिष्ट तालों का प्रयोग होता है। विलम्बित में प्रायः $\frac{4}{4}$ (फोर-फोर) और $\frac{3}{4}$ (थ्री-फोर) का विशेष प्रयोग होता है। द्रुत में प्रायः $\frac{2}{4}$ (टू-फोर) $\frac{6}{8}$ (सिक्स-एट) $\frac{5}{8}$ (फाइव-एट) का प्रयोग पाया जाता है। पाश्चात्य संगीत में तालों की संख्या मर्यादित है। न तो उसमें ठेके का झंझट है, न मात्राओं की मर्यादा। हमारे यहां तालों का ठेका जिन विभिन्न बोलों (Mnemonics) में प्रदर्शित किया जाता है, वह पाश्चात्य सङ्गीतज्ञों के लिये कुतूहल की वस्तु है। हमारे यहाँ तालों में मात्राओं की संख्या निश्चित होती है, जिससे ताल का स्वरूप प्रकट हो जाता है। यह बात पाश्चात्य संगीत में नहीं पाई जाती। वहाँ ताल की जाति मुख्य रूप से विविध कालांगों (Time substance) जैसे से० ब्रेव्ह, मिनिम आदि पर निर्भर होती है।

भारतीय तालों के साथ पाश्चात्य तालों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न हमेशा किया जाता है, किन्तु इसमें बड़ी सतर्कता आवश्यक होती है। भारतीय ताल-शास्त्र इतना अत्यधिक विकसित है कि पाश्चात्य तालों के सीमित क्षेत्र से मेल बिठाना एक पहेली है। भारतीय तालों का शास्त्र स्वतंत्र रूप से विकास को प्राप्त हुआ है। राग-गान के अतिरिक्त स्वतंत्र ताल-शास्त्र प्रौढ़ता पा चुका है। रागों की असीम संख्या के साथ ही तालों की अनगिनत संख्या भारतीय सङ्गीत में पाई जाती है। पाश्चात्य सङ्गीत में तालों का विकास मुख्य रूप से गीत-रचना के अनुकूल होने के कारण उससे असंबद्ध स्वतंत्र तालों की स्थिति उसमें नहीं पाई जाती। वस्तुतः छंदों से असंबद्ध ताल वहाँ एक हास्यास्पद वस्तु है। इस मूलभूत तात्विक अन्तर के कारण दोनों में ताल सम्बन्धी वैषम्य पाया जाता है। जहाँ त्रिताल का नाम हम लेते हैं, सोलह मात्राएँ आँखों के सम्मुख मूर्त हो उठती हैं। झपताल और सूलताल का नाम सुनते ही १० मात्राओं का हिसाब चक्षुओं के सामने स्फूर्त हो उठता है। बाद में दोनों की विभिन्न लय और तोल का विचार अपेक्षित होता है। पाश्चात्य तालों में ताल की कुछ मात्राओं का हिसाब अनावश्यक होता है, वहां महत्व इस बात का है कि एक विभाग में तालांग कितने हैं। इन्हीं की आवृत्ति हर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विभाग में एक ही हिसाब से होती रहती है। हमारे यहां ताल के विभागों में विषय-विभाजन का पाया जाना एक सामान्य वस्तु है! हमारा 'झपताल' २-३-२-३ इस विषम विभाजन के साथ चलता है; 'रूपक' ३-२-२ के विषम अनुपात से चलता है और हमारी 'सवारी' (१५ मात्रा) ३-४-४-४ के विषम विभाजन से चलती है। पाश्चात्य तालों में विभागों का सम होना अनिवार्य है। यदि एक विभाग में ४ क्रोचेट का होना नियत है, जैसे—४/४ ताल में—तो सभी विभागों में क्रोचेट या कम से कम उनके बराबर की मात्राओं का होना आवश्यक है। वहां ताल की जाति का निर्धारण एक ही विभाग से हो जाता है; भारतीय तालों में ताल के निर्धारण के लिये पूरे ठेके का विचार अपेक्षित होता है। इन विषमताओं के कारण पाश्चात्य तालों का भारतीय तालों के साथ सामञ्जस्य बिठाने में ताल के संतुलन (Equilibrium) की हानि का भय बना रहता है। झपताल स्थूल रूप से पाश्चात्य ५/८ (फाइव-एट) से मिलता-जुलता है; किंतु झपताल के २-३-२-३ के स्थान पर पाश्चात्य सिद्धांत के अनुसार ५-५ के दो सम विभाग करने पर झपताल का वज़न जाता रहता है। देखिये—भारतीय संगीत में झपताल:—

×		२			०		३		
धिं	ना	धिं	धिं	ना	तिं	ना	धिं	धिं	ना
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

पाश्चात्य संगीत में झपताल का रूपान्तर इस प्रकार होगा:—

ताल की मात्राएँ

ताल का वज़न

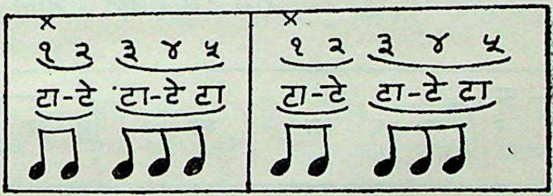

इस प्रकार ५/८ [फाइव-एट] ताल में रूपांतर करने से भारतीय झपताल की शक्ल ही बदल जाती है। एक बात और, वह यह कि पाश्चात्य ताल में विसर्जित मात्रा या 'खाली' का अभाव होने के कारण भारतीय तालों के साथ उसका ठीक सामञ्जस्य होने में कठिनाइयां आ जाती हैं।

× × ×

पाश्चात्य नोटेशन में और कुछ महत्व के चिन्ह हैं, जिनका प्रयोग हमेशा पाया जाता है।

१—जहां गीत के कुछ स्वर अपेक्षाकृत मुलायम स्वर से गाये जाते हैं, वहां गीत के उस अन्श पर P लिखा जाता है। अधिक मुलायमपन के लिये P P चिन्ह का प्रयोग होता है।

२—पाश्चात्य संगीत में गीत गाते समय कुछ स्थानों पर स्वर को मोटाई (Volume) को धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है या घटाया जाता है। नाद बढ़ाने की क्रिया

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को 'क्रीसेन्डो' (Crescendo) और घटाने की क्रिया को 'डिमिन्युएण्डो' (Diminuendo) कहते हैं। पहले के लिये संक्षिप्त 'Crese' या < इस चिन्ह का प्रयोग होता है; दूसरे के लिये 'Dimin' या > इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है कभी-कभी दोनों क्रियाओं को एक साथ निर्दिष्ट करने के लिये < > इस चिन्ह को प्रयुक्त किया जाता है।

३—पाश्चात्य तालों में 'सिंकोपेशन' (Syncopation) नाम की चीज़ पाई जाती है, जो भारतीय तालों के अतीत, अनागत ग्रहों से मिलती-जुलती है। 'सिंकोपेशन' उस प्रक्रिया को कहते हैं, जहाँ ध्वनि का मुख्याघात (Principal accent) 'सम' (Main beat) को छोड़कर अन्य स्थान पर पड़ता है। इसको दिखाने के लिये 'कर्व' (Curve) [⌒] का प्रयोग किया जाता है। मींड़ दिखाने के लिये भी 'कर्व' अथवा अर्धरेखा का प्रयोग होता है।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर भारतीय संगीत का स्वरांकन स्टाफ नोटेशन में किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में राग देस की निम्नांकित गत का पाश्चात्य स्वरलिपि में रूपान्तर देखिये:—

राग देस (गत) ताल-त्रिताल

म म रे रे म प ३	सां नि - सां - ×	नि॒ ध प म २	पध पम ग रे ०
ग रे म ग ३	रे सा नि॒ सा ×	रेम पध पम पनि २	सांरें सांनि॒ धप मप ०

इसे स्टाफ नोटेशन में निम्न प्रकार से लिखेंगे:—

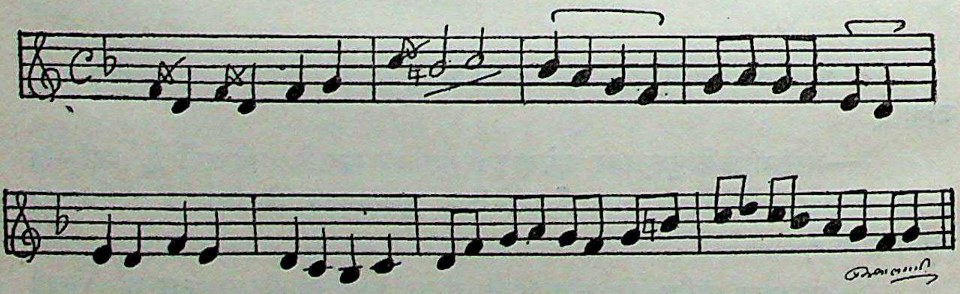

समाप्त

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इन्टर और विशारद कोर्स के लिये कुछ

संगीतकारों का संक्षिप्त परिचय

जयदेव

'गीतगोविन्द' के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और संगीत-जगत में आदर के साथ लिया जाता है। आप उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और संगीतज्ञ भी थे। भारतीय संगीत में आपको उच्चस्थान प्राप्त है।

जयदेव कवि का जन्म बंगाल के केन्दुला ग्राम में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री मजीयदेव था। उस युग के वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध महात्मा श्री यशोदानन्दन के आप शिष्य थे। आपके गुरुजी ब्रज में निवास करते थे।

बाल्यकाल में माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण, अल्पायु में ही जयदेव घर-बार छोड़कर जगन्नाथपुरी चले गये और वहां के पुरुषोत्तमधाम में निवास करने लगे। इसके पश्चात् आपने अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की और कुछ समय ब्रज-भूमि में भी भ्रमण किया। कुछ समय बाद आपका विवाह होगया और अपनी पत्नी के साथ आपने देश का पर्यटन किया। तत्पश्चात् आपने 'गीतगोविन्द' नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ की रचना की।

'गीतगोविन्द' जयदेव की एक अमर कलाकृति है। इसके अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में तो हो ही चुके हैं, साथ ही लेटिन, जर्मन और अंग्रेजी भाषाओं में भी इसके भाषान्तर हो गए हैं। इससे भलीभांति विदित होता है कि यह ग्रन्थ कितना महत्वपूर्ण है।

जयदेव कवि गायन एवं नृत्य के भी प्रेमी थे, इसलिये 'गीतगोविंद' में प्रत्येक अष्टपदी पर राग व ताल का निर्देश मिलता है। उनकी कविताएँ आज भी अनेक वैष्णव-मंदिरों में राग और ताल सहित गायी जाती हैं। दक्षिण के कुछ मंदिरों में तो नृत्य के साथ आपकी अष्टपदी अभिनीत की जाती हैं, जिनमें ताल और लय के साथ-साथ भाव-प्रदर्शन भी होता है। 'गीतगोविंद' की मूल रचना संस्कृत में करके आपने कुछ संगीत-प्रबन्ध हिन्दी भाषा में भी रचे, इसका प्रमाण आपके बनाये हुए कुछ ध्रुवपदों द्वारा अब भी मिलता है।

कहा जाता है कि आप एक राज-दर्बार में सम्मानपूर्वक रहते थे; किन्तु अपनी पत्नी (पद्मावती) के स्वर्गवास हो जाने के बाद, राजाश्रय छोड़कर अपने गांव में चले आये और कुछ समय तक साधु-जीवन व्यतीत करते-करते अपनी जन्मभूमि में ही परलोकवासी होगये। उस गांव में आपकी एक समाधि है, जहां प्रतिवर्ष मकर संक्रांति के दिन अब तक मेला लगता है।

State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शाङ्गदेव

भारतीय सङ्गीत के प्राचीन एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ "सङ्गीत रत्नाकर" के रचयिता श्री शाङ्गदेव १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१२१०-१२४७) में देवगिरी (दक्षिण) के बादशाह के दर्बार में रहते थे। आपके बाबा काश्मीरी ब्राह्मण थे, जो बाद में आकर देवगिरी में बस गये।

इनके पिता श्री सोढला, यादव राजा भिल्लमा (११८७-११९१) ई० और सिंहना (१२१०-१२१७) ई० के दर्बार में उच्च कर्मचारी थे। शाङ्गदेव के प्रति राजा का भी प्रेम था। इससे प्रतीत होता है कि आपकी शिक्षा-दीक्षा राजाश्रय में ही हुई।

आपने 'सङ्गीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना जाति इत्यादि का भलीभांति विवेचन किया है। अनेक पूर्वलिखित ग्रन्थों की सामग्री लेकर तत्कालीन उत्तरी-दक्षिणी सङ्गीत का समन्वय किया है। आपने कुल १२ विकृत स्वर माने हैं तथा सात शुद्ध और ग्यारह विकृत इस प्रकार १८ जातियां मानी हैं। इन जातियों का विस्तृत वर्णन करने के बाद ग्राम-रागों को जातियों से उत्पन्न बताया है और ग्राम-रागों से ही अन्य राग विकसित बताये हैं।

शाङ्गदेव के स्वर और राग आधुनिक स्वर और रागों से मेल नहीं खाते, कारण यह है कि उन्होंने जो श्रुत्यन्तर कायम किये थे, वे आज के श्रुत्यन्तर से भिन्न हैं। यद्यपि 'सङ्गीत रत्नाकर' में वर्णित राग आज उपयोग में नहीं आ सकते; तथापि पुस्तक के अन्य भागों में जो विस्तृत विवरण इस विद्वान् ने दिया है उससे आधुनिक समय में बड़ी सहायता मिलती है। कुछ विद्वानों ने शाङ्गदेव का शुद्ध थाट 'मुखारी' जिसे आधुनिक कर्नाटक सङ्गीत में 'कनकांगी' भी कहते हैं, स्वीकार किया है।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का पिता अमीर मुहम्मद सैफ़ुद्दीन बलबन का निवासी था। हिन्दुस्तान में आने के पश्चात् इसके यहाँ अमीर खुसरो का जन्म हुआ। एक लेखक के मतानुसार खुसरो का जन्म ६५३ हिजरी (१२३४ ई०) है तथा अन्य लेखक १२५३ ई० मानते हैं। खुसरो का जन्मस्थान एटा जिले में 'पटियाली' नामक स्थान माना जाता है। यह अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान था। उस काल के मान से योग्य शिक्षा पाने के पश्चात् अमीर खुसरो गुलाम घराने के दिल्लीपति ग़यासुद्दीन बलबन के आश्रय में रहा। किन्तु कुछ दिनों बाद गुलाम घराने का अन्त हो गया और सल्तनत खिलजी वंश के कब्जे में आगई, अतः खुसरो भी खिलजी वन्श का नौकर होगया।

अलाउद्दीन खिलजी ने १२९४ ई० में जब देवगिरी के राजा पर चढ़ाई की उस समय अमीर खुसरो भी उसके साथ था। इस लड़ाई में देवगिरी के राजा की पराजय हुई। देवगिरी में उस समय गोपाल नायक नामक सङ्गीत का एक उत्कृष्ट विद्वान् रहता था। खुसरो ने एक छलपूर्ण प्रस्ताव रखकर राज-दर्बार में उससे सङ्गीत-प्रतियोगिता मांगी और उसे अपने चातुर्य बल से पराजित कर दिया। किन्तु वह गोपाल नायक की कला का हृदय से आदर करता था, इसलिये दिल्ली लौटते समय गोपाल नायक को भी उसके साथ आना पड़ा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दिल्ली आकर खुसरो ने सङ्गीत कला में अपूर्व क्रांति पैदा की। इसने दक्षिण के शुद्ध स्वर-सप्तक की योजना कर उसे प्रचलित किया। लोक-रुचि के अनुकूल नये-नये रागों की रचना की। राग-वर्गीकरण का एक नवीन प्रकार राग में ग्रहीत स्वरों से निकाला। इसने रागों में गाने योग्य तद्देशीय भाषा में नये-नये गीतों की रचना की। यही गीत आगे चलकर 'ख्याल' के नाम से प्रसिद्ध हुए, अतः ख्याल का जन्मदाता भी खुसरो को मानते हैं।

इसके पश्चात् अमीर खुसरो ने वाद्ययन्त्रों में भी काफी परिवर्तन किया। दक्षिणी वीणा में चार तार की बजाय तीन तार कर दिये, तारों का क्रम उलट कर उसमें अचल परदे लगा दिये। इसके अतिरिक्त द्रुतलय में बजाने को आसानी पैदा करने के लिये इसकी गतें स्थिर कीं और उन्हें ताल में निबद्ध किया। प्राचीन वीणा की अपेक्षा यह परिवर्तित वाद्य अधिक लोकप्रिय होगया। इस वाद्य में तीन तार होने के कारण इसका नाम सहतार (सितार) फ़ारसी नाम रक्खा। वर्तमान 'सितार' इसी वाद्य का रूप कहना चाहिये।

अमीर खुसरो ने सङ्गीत विषय पर फारसी की कई पुस्तकें भी लिखीं। भारत और फ़ारस के सङ्गीत के मिश्रण से कई राग भी ईजाद किये, जिनमें—साज़गिरी, उश्शाक़, ज़िला, सरपरदा आदि स्मरणीय हैं। खुसरो ने गाने की एक नवीन प्रणाली को भी जन्म दिया जिसे क़व्वाली कहते हैं। इस प्रकार सङ्गीत के क्षेत्र में चिरस्मरणीय कार्य करके, लगभग ७२ वर्ष की आयु में अमीर खुसरो स्वर्गवासी हो गये।

गोपाल नायक

अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९४ ई० में देवगिरी (दक्षिण) पर चढ़ाई की थी, उस समय वहां रामदेव यादव नामक राजा राज्य करता था। इसी राजा के आश्रय में गोपाल नायक दरबारी गायक रहता था। इसी समय गोपाल नायक और अमीर खुसरो की सङ्गीत-प्रतियोगिता हुई। खुसरो के छल और चातुर्य द्वारा गोपाल नायक को पराजित होना पड़ा और उसने अपनी हार स्वीकार करली। किन्तु अमीर खुसरो हृदय से इसकी विद्वत्ता का लोहा मानता था, अतः दिल्ली वापिस आते हुए उसने नायक को भी साथ ले लिया। दिल्ली में गोपाल नायक को गायक के रूप में पूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ। गोपाल नायक के विषय में एक किंवदन्ती अबतक चली आरही है कि, जब कभी यह दिल्ली से बाहर जाते थे, तब अपनी गाड़ी के बैलों के गले में समयानुसार, रागवाचक ध्वनि पैदा करने वाले घन्टे बांध दिया करते थे। चतुर कल्लिनाथ ने भी 'रत्नाकर' ग्रन्थ के तालाध्याय की टीका में ताल-व्याख्या के अन्तर्गत गोपाल नायक के नाम का उल्लेख किया है, इससे प्रमाणित होता है कि उस समय के सङ्गीत-विद्वानों में गोपाल नायक का काफी सम्मान था।

इतिहास के संकेतानुसार गोपाल नायक सन् १२९४ और १२९५ ई० के बीच दिल्ली पहुँचे। उस समय के उपलब्ध संस्कृत ग्रंथों में ध्रुपद नामक प्रबन्ध का उल्लेख नहीं मिलता, इससे सिद्ध होता है कि गोपाल नायक ध्रुपद नहीं गाते थे। उनके समय में सम्भवतः अन्य प्रबन्ध प्रचलित थे, जो संस्कृत, तमिल, तैलगू आदि भाषाओं में थे।

गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। देवगिरी के पश्चात् आपके जीवन का शेष भाग दिल्ली में ही व्यतीत हुआ और वहीं इनकी मृत्यु भी होगई।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

स्वामी हरिदास

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी साहित्य का संक्रांतिकालीन माधव कहा जाता है; उसी प्रकार स्वामी हरिदास जी को भी भारतीय सङ्गीत का रक्षक कहना पड़ेगा। स्वामी हरिदास का जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी सम्वत् १५६६ में, उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में, खैर वाली सड़क पर एक छोटे से गांव में हुआ था। तभी से उस गांव का नाम भी हरिदासपुर हो गया। आपके पिता का नाम श्री आशुधीर था, जो कि मुल्तान जिले के उच्च ग्राम-निवासी थे। आप सारस्वत ब्राह्मण कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। श्री हरिदास जी की माता का नाम गङ्गा था।

बाल्यकाल से ही सङ्गीत के संस्कार स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर विद्यमान थे। आगे चलकर यह संस्कार एक दम विकसित हुये और कृष्ण-भक्ति में लीन हो गये। २५ वर्ष की तरुण अवस्था में ही आप वृन्दावन आ गये और निधुवन निकुञ्ज को एक झोंपड़ी में निवास करने लगे। यहाँ पर एक मिट्टी का बर्तन और एक गुदड़ी,यही स्वामीजी की सम्पत्ति थी।

व्रज-रेणु के कण-कण में, जमुना के नीर में, गगन मण्डल के चांद-तारों में, आप भगवान कृष्ण की लीलाओं की मनोरम झांकियाँ करने लगे। चारों ओर से गुंजित होने वाले मुरली के मधुर नाद ने स्वामी जी को आत्मविभोर कर दिया।

वृन्दावन में निवास करके स्वामी जी ने व्रजभाषा में अनेक ध्रुपद गीतों की रचना की एवं उन्हें शास्त्रोक्त राग तथा तालों में गाकर जिज्ञासुओं को तृप्त किया।

यों तो स्वामी जी का सङ्गीत-प्रसाद अनेक व्यक्तियों को मिला होगा, किन्तु इनके मुख्य शिष्यों के नाम 'नाद विनोद' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार पाये जाते हैं:—

बैजू, गोपाल लाल, मदन राय, रामदास, दिवाकर पण्डित, सोमनाथ पण्डित, तन्ना मिश्र (तानसेन) और राजा सौरसेन।

मद्रास प्रांत को छोड़कर समस्त देश में वर्तमान प्रचलित शास्त्रीय सङ्गीत स्वामीजी एवं उनके शिष्यों की ही विभूति है। 'सङ्गीत कल्पद्रुम' में बहुत सी रचनाएँ स्वामी जी की ही रची हुई प्रतीत होती हैं। आजकल व्रज में जो रासलीला प्रचलित है उसको स्वामी हरिदास की ही देन समझना चाहिये। रास के पदों की गायनयुक्त परिपाटी के प्रवर्तक आप ही थे जो आज तक लोकप्रिय होकर धार्मिक भावनाओं को कलात्मक रूप दे रही है।

नाभादास जी के एक छप्पय से प्रतिध्वनित होता है कि स्वामी हरिदास के सङ्गीत को सुनने के लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके द्वार पर खड़े रहते थे। एक बार सम्राट अकबर ने भी तानसेन के साथ आकर गुप्त रूप से स्वामी जी का गायन सुना था।

अन्त में सम्वत १६६४ वि० में अर्थात् ९५ वर्ष की अवस्था पाकर, आप इस भौतिक शरीर को त्याग कर सदैव के लिये निधुवन की कुन्जों में विलीन होगये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तानसेन

निःसन्देह, संगीत शब्द से जिन व्यक्तियों को थोड़ा भी प्रेम होगा वे तानसेन के नाम से भलीभाँति परिचित होंगे। यद्यपि इस महापुरुष की मृत्यु हुए लगभग चारसौ वर्ष हो चुके फिर भी सङ्गीत-संसार में इसकी विमल कीर्ति आकाश के सूर्य के समान प्रदीप्त हो रही है। नीचे लिखी पंक्तियों में हम इस महान् सङ्गीतकार की जीवनी का संक्षिप्त परिचय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं :—

सन् १५०० ई० के लगभग की बात है, ग्वालियर में मुकन्दराम पांडे नामक ब्राह्मण निवास करते थे, कोई-कोई इन्हें मकरन्द पांडे के नाम से भी पुकारता था। पांडित्य और सङ्गीत विद्या में लोकप्रिय होने के साथ-साथ आपको धन-धान्य भी यथेष्ट रूप में प्राप्त था। यदि कोई चिन्ता थी तो संतान होने की। आपकी पत्नी पूर्ण साध्वी एवं कर्मनिष्ठा थीं। दम्पति को सन्तान की चिंता हर समय व्यग्र बनाये रहती। आखिरकार वह समय भी आ गया, जबकि इनकी चिंता एक दिन हमेशा के लिये समाप्त हो गई। मुहम्मद ग़ौस नामक एक सिद्ध फ़क़ीर के आशीर्वाद से सन् १५३२ ई० में, ग्वालियर से सात मील दूर एक छोटे से गाँव "बेहट" में, इन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। बालक का नाम 'तन्ना' मिश्र रक्खा गया।*

बच्चे का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ—एक मात्र संतान होने के कारण माँ-बाप ने किसी प्रकार का कठोर नियन्त्रण भी नहीं रक्खा। फलस्वरूप दस वर्ष की अवस्था तक बालक 'तन्ना' मिश्र पूर्णरूपेण स्वतंत्र, सैलानी एवं नटखट प्रकृति का होगया। इस बीच इसके अन्दर एक आश्चर्यजनक प्रतिभा देखी गई; वह थी आवाज़ों की हूबहू नक़ल करना। किसी भी पशु-पक्षी की आवाज़ की असल कापी कर लेना इसका खेल था। शेर की बोली बोलकर अपने बाग की रखवाली करने में इसे बड़ा मज़ा आया करता था।

एक दिन वृन्दावन के महान् सङ्गीतकार सन्यासी स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य-मंडली के साथ-साथ उक्त बाग में होकर गुजरे तो बालक 'तन्ना' ने एक पेड़ की आड़ में छुपकर शेर जैसी दहाड़ लगाई। डर के मारे सब लोगों के दम फूल गये। स्वामी जी को उस स्थान पर शेर रहने का विश्वास नहीं हुआ और तुरन्त खोज की। दहाड़ता हुआ बालक मिल गया। बालक के इस कौतुक पर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जब अन्य पशु-पक्षियों की आवाज़ भी बालक से सुनी तो मुग्ध होगये और उसके पिताजी से बालक को सङ्गीत शिक्षा देने के निमित्त मांगकर अपने साथ ही वृन्दावन ले आये।

गुरु-कृपा से १० वर्ष की अवधि में ही बालक तन्ना धुरंधर गायक बन गया और यहीं इसका नाम 'तन्ना' की बजाय 'तानसेन' हो गया। गुरुजी का आशीर्वाद पाकर तानसेन ग्वालियर लौट आये। इसी समय इनके पिता जी की मृत्यु होगई। मृत्यु से पूर्व पिता ने तानसेन को उपदेश दिया कि तुम्हारा जन्म मुहम्मद ग़ौस नामक फ़क़ीर की कृपा से हुआ है, इसलिये तुम्हारे शरीर पर पूर्ण अधिकार उसी फ़क़ीर का है, अपनी ज़िंदगी में उस फ़क़ीर की आज्ञा की कभी अवहेलना मत करना।

पिता का उपदेश मानकर तानसेन मुहम्मद ग़ौस फ़क़ीर के पास आगये। फ़क़ीर साहब ने तानसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाकर अपना अतुल वैभव आदि सब कुछ उन्हें

*तानसेन की जन्म-तिथि तथा सन् के बारे में विविध मत पाये जाते हैं, कुछ लेखक इनका जन्म सन् १५०६ और कोई १५२० ई० भी बताते हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सौंप दिया और अब तानसेन ग्वालियर में ही रहने लगे। थोड़े दिनों बाद राजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी 'मृगनयनी' से तानसेन का परिचय हुआ। रानी मृगनयनी भी बड़ी मधुर एवं विदुषी गायिका थीं, वह तानसेन का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुईं। उन्होंने अपने सङ्गीत-मन्दिर में शिक्षा पाने वाली हुसेनी ब्राह्मणी नामक एक सुमधुर गायिका लड़की के साथ तानसेन का विवाह कर दिया।

विवाह के पश्चात् तानसेन पुनः अपने गुरुजी के आश्रम वृन्दावन में शिक्षा प्राप्त करने पहुँचे। इसी समय फ़क़ीर मुहम्मद ग़ौस का अन्तिम समय निकट आगया। फलस्वरूप गुरुजी के आदेश पर तानसेन को तुरन्त ग्वालियर वापिस आना पड़ा। फ़क़ीर साहब की मृत्यु हो गई और अब तानसेन एक विशाल सम्पत्ति के अधिकारी बन गये। अब यह ग्वालियर में रहकर आनन्दपूर्वक गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लगे। इनके चार पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों का नाम—सुरतसेन, तरङ्गसेन, शरतसेन और बिलास खाँ तथा लड़की का नाम सरस्वती रक्खा गया। तानसेन की सारी सन्तान सङ्गीतकला के संस्कार लेकर पैदा हुई। सभी बच्चे उत्कृष्ट कलाकार हुए।

सङ्गीत साधना पूर्ण होने के बाद सबसे प्रथम तानसेन को रीवा नरेश रामचन्द्र (राजाराम) अपने दरबार में ले गये। इन्हीं दिनों तानसेन का सौभाग्यसूर्य चमक उठा, महाराज ने तानसेन जैसे दुर्लभ रत्न को बादशाह अकबर की भेंट कर दिया। सन् १५५६ ई० में तानसेन अकबर के दरबार में दिल्ली आगये। बादशाह ऐसे अमूल्य रत्न को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और तानसेन को उसने अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया।

यह तानसेन का शौर्यकाल था। बादशाह के अटूट स्नेह और कला का यथेष्ट सम्मान पाकर तानसेन की यश-पताका उन्मुक्त होकर लहराने लगी। अकबर तानसेन के सङ्गीत का गुलाम बन गया। कलापारखी अकबर तानसेन की संगीत-माधुरी में डूब गया। बादशाह पर तानसेन का ऐसा पक्का रंग सवार देखकर दूसरे दरबारी गवैये जलने लगे और एक दिन उन्होंने तानसेन के विनाश की योजना बना ही डाली। यह सब लोग बादशाह के पास पहुँचकर कहने लगे कि हुजूर हमें तानसेन से 'दीपक राग' सुनवाया जाय और आप भी सुनें। इस राग को ठीक-ठीक तानसेन के अलावा और कोई नहीं गा सकता। बादशाह राजी होगये। तानसेन द्वारा इस राग का अनिष्टकारक परिणाम बताये जाने और लाख मना करने पर भी अकबर की राजहठ नहीं टली और उसे दीपक राग गाना ही पड़ा। राग जैसे ही शुरू हुआ गर्मी बढ़ी और धीरे-धीरे वायुमंडल अग्निमय होगया। सुनने वाले अपने-अपने प्राण बचाने को इधर-उधर छुप गये, किन्तु तानसेन का शरीर अग्नि की लपटों से जल उठा। उसी समय तानसेन अपने घर भागे वहाँ उनकी लड़की तथा एक गुरु भगिनी ने मेघराग गाकर उनके जीवन की रक्षा की। उस घटना के कई मास पश्चात् तानसेन का शरीर स्वस्थ हुआ। अकबर भी अपनी ग़लती पर बहुत पछताया।

तानसेन के जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को बुलाने, रोगियों को ठीक करने आदि की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ हुईं। यह निर्विवाद सत्य है कि गुरु-कृपा से उसे बहुत से राग-रागनियां सिद्ध थे और उस समय देश में तानसेन जैसा दूसरा कोई सङ्गीतज्ञ नहीं था। तानसेन ने व्यक्तिगत रूप से कई रागों का निर्माण भी किया, जिनमें दरबारीकान्हड़ा, मियाँ की सारंग, मियांमल्लार आदि उल्लेखनीय हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार अमर सङ्गीत की सुखद त्रिवेणी बहाता हुआ यह महान् सङ्गीतज्ञ मृत्यु के निकट भी आ पहुँचा। दिल्ली में ही तानसेन ज्वर से पीड़ित हुए, अन्तिम समय जानकर इन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु बादशाह के मोह और स्नेह के कारण तानसेन फरवरी सन् १५८५ ई० में दिल्ली में ही स्वर्गवासी हुए। इच्छानुसार तानसेन का शव ग्वालियर पहुँचाकर फकीर मोहम्मद गौस की कब्र के बराबर समाधि बनादी गई। तानसेन की मृत्यु के पश्चात् उनका कनिष्ठ पुत्र बिलास खां, तानसेन के सङ्गीत को जीवित रखने और उसकी कीर्ति को प्रसारित करने में समर्थ हुआ।

बैजूबावरा

यह सुप्रसिद्ध गायक तानसेन का मित्र और एक दृष्टि से तानसेन का प्रतिद्वन्द्वी भी था और अकबर बादशाह के समय (१५५६-१६०५ ई०) दिल्ली में रहता था। यह उसी काल के प्रसिद्ध गायक गोपाललाल का भी मित्र था। बैजू ने अनेक ध्रुपद बनाये हैं, जिनमें गोपाललाल, तानसेन और बादशाह अकबर का नामोल्लेख किया हुआ मिलता है। विद्यार्थियों को यह भी मालुम होना चाहिये कि 'नायक बैजू' और 'बैजूबावरा' ये दो भिन्न-भिन्न गायक थे और भिन्न भिन्न कालों में हुए। बैजूबावरा ने कभी बादशाह की नौकरी स्वीकार नहीं की। यह १६ वीं शताब्दी में, अकबर के राज्यकाल में ही स्वर्गवासी हो गये।

सदारंग-अदारंग

ख्याल की बहुतसी चीज़ों में "सदा रंगीले मोमद सा" ऐसा नाम कई बार देखने में आता है। १८ वीं शताब्दी में न्यामतखां नाम के प्रसिद्ध बीनकार हो गये हैं। यह अपनी बनाई हुई चीज़ों में उस समय के बादशाह मोहम्मद शाह का नाम डाल दिया करते थे। बादशाह को प्रसन्न करने के लिए ही वे ऐसा किया करते थे। न्यामतखां अपना उपनाम 'सदारंगीले' रखकर साथ में बादशाह का नाम भी जोड़ दिया करते थे। 'सदारंगीले' को ही सदारङ्ग भी कहा जाता था। न्यामतखां (सदारङ्ग) के खान्दान के बारे में बताया जाता है कि ये तानसेन की पुत्री के खान्दान में दसवें व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम लालसानीखां और बाबा का नाम खुशालखां था।

यद्यपि ख्याल-रचना का कार्य सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने शुरू किया था, किन्तु उस समय ख्याल-रचना विशेष लोकप्रिय न हो सकी। इसके बाद सुल्लतानहुसैन शर्की, बाजबहादुर, चंचलसेन, चांदखां, सूरजखां ने भी यह कार्य करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता न मिल सकी। न्यामतखां ने उनकी इन असफलताओं का कारण ढूँढ़ निकाला। इन्होंने अनुभव किया कि जब तक कविता में बादशाह का नाम न डाला जायेगा, तब तक वे अच्छी तरह प्रचलित नहीं हो सकेंगी। साथ ही इन्हें रूठे हुए बादशाह को भी खुश करना था, क्योंकि वेश्याओं को तालीम न देने पर एक बार बादशाह इनसे नाराज़ हो गये थे, अतः वे उपनाम "सदारंगीले" के साथ बादशाह का नाम तो डालने लगे, किन्तु इसकी खबर बादशाह को न होने दी कि यह कविता किसकी बनाई हुई है और सदारङ्ग कौन है। इस प्रकार बहुतसी कवितायें न्यामतखां ने तैयार

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

करके अपने शागिर्दों को भी याद कराईं। जब बादशाह को यह कविताएँ ख्याल में गाकर सुनाई गईं तो वे बड़े प्रभावित हुए और यह जानने की इच्छा प्रगट की कि यह 'सदारंगीले' कौन हैं? न्यामतखां के शागिर्दों ने जवाब दिया कि हमारे उस्ताद, जिनका असली नाम न्यामतखां है, उनका तखल्लुस (उपनाम) 'सदारंगीले' है। बादशाह ने कहा-अपने उस्ताद को बुलाकर लाओ। न्यामतखां दरबार में उपस्थित हुए, तो मोहम्मद-शाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा करके, उन्हें पुनः आदरपूर्वक अपने दरबार में रख लिया और वे वीणा बजाकर गायकों का साथ करने के लिये स्थायी रूप से दरबार में रहने लगे। इस प्रकार सदारङ्ग ने अपना रङ्ग जमा लिया और गुणियों में आदर प्राप्त कर लिया।

सदारङ्ग के ख्यालों में विशेष रूप से शृंगार-रस पाया जाता है। कहा जाता है कि सदारङ्ग ने स्वयं अपनी ये चीजें महफ़िलों में नहीं गायीं। उनका कहना था कि खुद अपने लिये या अपने खान्दान के लिये मैंने यह चीजें नहीं बनाई हैं, बल्कि बादशाह सलामत को खुश करने के उद्देश्य से ही इनकी रचना की गई है। इतना होते हुए भी इनकी रचनाएँ समाज में काफी फैल गईं। ख्याल-गायक और गायिकाओं ने इनकी चीजें खूब अपनाईं।

सदारङ्ग के साथ-साथ कुछ चीजों में अदारङ्ग का नाम भी पाया जाता है। इसके बारे में एक इतिहासकार का कथन है कि न्यामतखां के दो पुत्र थे, जिनका नाम फीरोजखां और भूपतखां था। 'अदारङ्ग' फीरोजखां का ही उपनाम था। भूपतखां का उपनाम 'महारङ्ग' था। इस प्रकार पिता के साथ-साथ दोनों पुत्र भी संगीत के क्षेत्र में अपना नाम सर्वदा के लिये अमर बना गये।

बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर

श्री बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर अखिल भारतीय संगीत कला कोविदों में एक उच्चश्रेणी के गायक हो गये हैं। प्रसिद्ध संगीताचार्य पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर इन्हीं के शिष्य थे। बालकृष्ण बुआ का जन्म सन् १८४६ ई० (शाके १७७१) में कोल्हापुर के पास चन्दूर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता रामचन्द्र बुआ स्वयं एक अच्छे गायक थे, इस कारण बाल्यकाल से ही इनके अन्दर भी संगीत की अभिरुचि उत्पन्न हो गई। भाऊ बुआ, देवजी बुआ, हद्दूखां, हस्सूखां आदि विद्वानों से इन्होंने ध्रुपद-धमार, ख्याल और टप्पा की शिक्षा पाई, अतः इन चारों अङ्गों के आप कलावन्त थे।

कुछ समय बाद इन्हें जोशी बुवा नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ से भी संगीत-शिक्षा प्राप्त हुई और अपने परिश्रम तथा रियाज़ के द्वारा थोड़े समय में ही बालकृष्ण बुआ गायनाचार्य बन गये। आपने समस्त हिन्दुस्तान व नैपाल का भ्रमण किया। अनेक संगीत-सम्मेलनों में भाग लिया। बम्बई में आपने 'गायन-समाज' की स्थापना की और 'संगीतदर्पण' नाम का एक मासिक पत्र भी चलाया; किंतु श्वास रोग के कारण आपको बम्बई छोड़नी पड़ी। कुछ समय बाद आप औंध के स्टेट गायक हो गये। वहां प्रातःकाल अपना रियाज़ करते और फिर शिष्यों को पढ़ाते थे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कुछ समय बाद आपने इचलकरंजी नामक रियासत में स्थायी रूप से राज-गायक की पदवी स्वीकार कर ली, तभी से आप इचलकरंजीकर के नाम से प्रसिद्ध हो गये और पुनः समस्त भारत का भ्रमण करके आपने सङ्गीत का प्रचार किया। इसी बीच आपके एक मात्र सुपुत्र का निमोनिया से यकायक देहान्त हो गया और फिर एक सुपुत्री भी चल बसी। इन आघातों से आपके स्वास्थ्य को विशेष धक्का पहुँचा, फलस्वरूप सन् १९२६ ई० में इचलकरंजी में ही आप स्वर्गवासी होगये।

पं० रामकृष्ण वझे

आपका जन्म सन् १८७१ ई० में सावन्त वाड़ी के ओंझा नामक ग्राम में हुआ था। १० मास की शिशु अवस्था में ही आपको छोड़कर आपके पिताजी स्वर्गवासी हो गये, अतः इनका पालन-पोषण माता के द्वारा हुआ। ४ वर्ष की अवस्था में इनकी माताजी इन्हें लेकर कागल नामक स्थान में आकर अन्ना साहब देशपांडे के यहाँ रहने लगीं।

बाल्यकाल में विद्या अध्ययन के समय आपका-रुचि प्रवाह सङ्गीत की ओर मुड़ गया। अध्यापकों के अनुरोध पर आपकी माताजी ने आर्थिक दशा प्रतिकूल होने पर भी, किसी प्रकार आपको सङ्गीत-शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। उस समय भाग्य से इन्हीं के गांव में बलवंतराव पोहरे नामक दरबारी गायक रहते थे, उनसे आपने दो वर्ष तक सङ्गीत-शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् मालवन में विठोवा अन्ना हड़प के पास रहकर उनकी गायिकी सीखी।

बारह वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह कर दिया गया। विवाह होते ही आपके सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो गई और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आप पूना होते हुए पैदल ही बम्बई जा पहुँचे। बम्बई में गा-गाकर दस-बारह रुपये कमाये। वहाँ से आप नाना साहब पानसे के पास सङ्गीत सीखने के उद्देश्य से इन्दौर पहुँचे। वहाँ आपको बंदेअली तथा चुन्ना के गाने और उनकी वीणा सुनने का अवसर भी मिला।

तत्पश्चात् आपने ग्वालियर में रहकर अनेक कष्ट उठाते हुए भी अपनी सङ्गीत-शिक्षा जारी रक्खी। खां साहब निसारहुसेन पर आपकी काफी श्रद्धा थी। उनकी फटकारें खाकर भी आपने बहुत कुछ सङ्गीत-शिक्षा उन्हीं से प्राप्त की। इस बीच इन्हें प्राचीन उस्तादों की संकीर्ण मनोवृत्तियों के बड़े कटु अनुभव हुए। फलस्वरूप आपने सङ्गीत-शिक्षा देने एवं सङ्गीत सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया।

अंत में उनका आर्थिक जीवन भी सुखमय हो गया था। शारीरिक गठन सुन्दर एवं स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण आपका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था। किंतु अंतिम दिनों में आपको मधुमेह जैसी दुष्ट बीमारी ने निर्बल बना दिया। फलस्वरूप आप शनैः-शनैः अधिक निर्बल होते गये और ५ मई सन् १९४५ ई० को पूना में आपका देहावसान हो गया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अब्दुल करीम खां

खां साहेब अब्दुलकरीम खां किराना के निवासी थे। इनके घराने में प्रसिद्ध गायक, तन्तकार व सारङ्गी-वादक हुए हैं। इन्होंने अपने पिता कालेखां व चाचा अब्दुल्लाखां से सङ्गीत-शिक्षा प्राप्त की थी। यह बचपन से ही बहुत अच्छा गाने लगे थे। कहा जाता है कि पहिली बार जब इन्हें एक सङ्गीत-महफ़िल में पेश किया गया, तब इनकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी। पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते-करते इन्होंने सङ्गीत कला में इतनी उन्नति करली कि आपको तत्कालीन बड़ौदा-नरेश ने अपने यहां दरबार-गायक नियुक्त कर लिया। बड़ौदा में ३ वर्ष तक रहने के पश्चात् १९०२ ई० में प्रथम बार आप बम्बई आये और फिर मिरज गये। मधुर और सुरीली आवाज़ एवं हृदयग्राही गायकी के कारण दिनों दिन इनकी लोकप्रियता बढ़ती गई।

सन् १९१३ के लगभग पूना में आपने 'आर्य सङ्गीत विद्यालय' की स्थापना की। विविध सङ्गीत-जलसों के द्वारा धन इकट्ठा करके आप इस विद्यालय को चलाते थे। गरीब विद्यार्थियों का सभी खर्च विद्यालय उठाता था। इसी विद्यालय की एक शाखा १९१७ ई० में खां साहेब ने बम्बई में स्थापित की और स्वयं तीन वर्ष तक बम्बई में आपको रहना पड़ा। इन दिनों आपने एक कुत्ते को बड़े विचित्र ढंग से स्वर देने के लिये सिखा लिया था, बम्बई में अब भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जिन्होंने अमरौली हाउस, बम्बई के जलसे में इस कुत्ते को स्वर देते हुए सुना था। कई कारणों से सन् १९२० में यह विद्यालय उन्हें बन्द कर देना पड़ा और फिर खां साहब मिरज जाकर बस गये और अन्त तक वहीं रहे।

खां साहब गोबरहारी वाणी की गायकी गाते थे। महाराष्ट्र में मींड और कणयुक्त गायकी के प्रसार का श्रेय खां साहब को ही है। इनके अलापों में अखंडता एवं एक प्रवाह सा प्रतीत होता है। सुरीलेपन के कारण आपका सङ्गीत अन्तःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था। 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' आपकी यह ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। इसे सुनने के लिये कला-मर्मज्ञ विशेष रूप से फर्माइश किया करते थे। यद्यपि आप शरीर से कमज़ोर थे, किन्तु आपका हृदय बड़ा विशाल और उदार था। आपका स्वभाव अत्यन्त शांत और सरस था और एक फ़क़ीरी वृत्ति के गायक थे।

खां साहब की शिष्य-परम्परा बहुत विशाल है। प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ौदेकर ने खां साहब से ही किराना घराने की गायकी सीखी है। इनके अतिरिक्त सवाई गन्धर्व, रौशनआरा बेगम आदि अनेक शिष्य एवं शिष्याओं द्वारा आपका नाम रौशन होरहा है।

एक बार वार्षिक उर्स के अवसर पर आप मिरज आये थे। कुछ लोगों के आग्रहवश एक जलसे में वहां से मद्रास जाना पड़ा, वहां पर आपका एक सङ्गीत-कार्यक्रम में गायन इतना सफल रहा कि उपस्थित जनता ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर एक संस्था की सहायतार्थ जलसे करने के लिये वहां से पांडचेरी जाने का निश्चय हुआ। इस यात्रा में ही खां साहेब की तबीयत खराब होगई और रात्रि के ११ बजे सिंगरोयमकोलम स्टेशन पर वे उतर गये। बेकली बढ़ती गई, कुछ देर इधर-उधर टहलने के बाद वे बिस्तर पर बैठ गये। नमाज़ पढ़ी और फिर दर्बारीकान्हड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत करने लगे। इस प्रकार गाते-गाते २७ अक्टूबर सन् १९३७ ई० को आप हमेशा के लिये उसी बिस्तर पर लेट गये।

UP State Museum, Lucknow

 CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इनायत खाँ

इनायत खाँ का जन्म सन् १८६४ ई० में इटावा में हुआ। अपने समय में सुरबहार के आप एक प्रसिद्ध कलाकार होगये हैं। इनके बाबा साहेब दाद खाँ ध्रुपद, ख्याल और गजल-शैली के विशेषज्ञ थे, साथ ही वे जलतरंग और सारङ्गी-वादन में भी कुशल थे।

इनायतखाँ के पिता इमदादखाँ हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध सुरबहार और सितारवादक थे। जोड़ और गत तोड़ा शैली में वे अपना सानी नहीं रखते थे। महाराजा नौगांव तथा महाराजा बनारस के यहाँ दरबारी गायक के रूप में रहने के पश्चात् कलकत्ते में महाराजा सर यतीन्द्र मोहन टैगौर के यहाँ रहे। इसके बाद इमदाद खाँ ३००) मासिक वेतन पर अवध के नवाब वाजिद अलीशाह के कोर्ट म्यूजिशियन नियुक्त हुए। फिर कुछ समय बड़ौदा दरबार में रहने के बाद अन्त में अपने दो पुत्रों के साथ इन्दौर दरबार में रहे। इनकी मृत्यु सन् १६२० ई० में, ६२ वर्ष की आयु में होगई। आपने अपने पीछे दो पुत्र और ५ पुत्रियाँ छोड़ीं।

इमदाद खाँ के दो पुत्रों में इनायत खां छोटे और वहीद खां बड़े हैं। इनायत खाँ ने छोटी उम्र से ही ध्रुपद, ख्याल और ठुमरी आदि की तालीम अपने पिता से प्राप्त की थी, इसके पश्चात् आपने विभिन्न रागों के बारे में जानकारी हासिल की और अपने पिता से ही सुरबहार एवं सितार बजाना भी सीखते रहे। अपने सतत परिश्रम और अभ्यास के फलस्वरूप शीघ्र ही इनकी गणना अच्छे कलाकारों में होने लगी। काठियावाड़, मैसूर, बड़ौदा और इन्दौर में अपनी संगीत-सेवाएँ अर्पित करने के बाद कुछ समय तक गौरीपुर के ब्रजेन्द्रकिशोर रॉय चौधरी के यहाँ नौकरी में रहे।

इसके पश्चात् इनायत खाँ ने विविध सङ्गीत-सम्मेलनों में भाग लेकर अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किये। इनके सितार-वादन में जो मिठास था, वह सुनते ही बनता था। मैमनसिंह जिले के कई स्थानों में आपका शिष्य-समुदाय फैला हुआ है। सन् १६३८ के लगभग आपका शरीरान्त होगया। इनके पुत्र विलायत खां आजकल एक सफल सितार-वादक के रूप में गौरीपुर घराने का नाम ऊँचा कर रहे हैं।

श्री भातखण्डे और विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

इनका संक्षिप्त परिचय इस पुस्तक में पृष्ठ २६ व ३० पर देखिये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकारादि क्रम से २०० रागों का शास्त्रीय विवरण

नोट (१) कोमल तीव्र वाले खाने में "दोनों" का अर्थ है, कोमल व तीव्र। जैसे नं० १ के राग में कोमल तीव्र का खाना देखिये, उसमें "ग ध व दोनों नि" लिखे हैं, इसका अर्थ है कि ग ध कोमल लगेंगे और निषाद कोमल व तीव्र दोनों प्रकार के लगेंगे।

(२) वर्जित स्वर वाले खाने में कोष्ठक ( ) में जो स्वर हैं, वे पूर्णतया वर्जित न होकर अल्प प्रमाण में लगेंगे।

नं०	राग नाम	थाट	जाति	वादी	संवादी	कोमल-तीव्र	वर्जित स्वर आरोह	वर्जित स्वर अवरोह	आरोह	अवरोह	गायन समय
१	अड़ाणा	आसावरी	षाड़व	सा	प	ग ध व दोनों नि	ग	ध	सारेमप धनिसां	सां धनिपमप गम रेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
२	अल्हैया बिलावल	बिलावल	षाड़व संपूर्ण	ध	ग	कहीं-कहीं नि	म	०	सारेगप धनिसां	सांनिधप मगरेसा	प्रातःकाल
३	अरज	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे व मनि दोनों	०	०	सारेग मपमप धनिसां	सांरेंसांनि धपमग रेसा	"
४	अहीर भैरव	"	"	म	सा	रे नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रेसा	"
५	आभेरी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	म	नि	रे ग ध नि	रे ध	०	सा ग म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	"
६	आसा	बिलावल	" "	म	सा	०	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
७	आसावरी	आसावरी	" "	ध	ग	ग ध नि	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सांनिध प मग रे सा	दिन दूसरा प्रहर
८	आनन्द भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रेसा	प्रातःकाल
९	आनन्द भैरवी	आसावरी	"	प	सा	ग नि व दोनों ध	(नि)	०	सा रे ग म प ध सां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि तीसरा प्रहर
१०	आभोगी	काफी	औड़व	सा	म	ग	प नि	प नि	सा रे ग म ध सां	सां ध म ग रे सा	प्रातःकाल
११	आभोगीकान्हरा	"	"	म	सा	ग	प नि	प नि	सा रे ग म ध सां	सां ध म ग म रे सा	मध्यरात्रि
१२	उत्तरी गुणकली	भैरवी	सम्पूर्ण	सा	म	रे ग ध नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	प्रातःकाल
१३	कलावती	खमाज	औड़व	प	सा	नि	रे म	रे म	सागपध निधप धसां	सांनिधप गप धप गसा	मध्यरात्रि
१४	कमलरंजनी	बिलावल	औड़व षाड़व	ध	ग	दोनों नि	रे म	रे	सा ग प ध नि सां	सांनिध निपमग सा	प्रातःकाल
१५	ककुभ	"	सम्पूर्ण	म	सा	" "	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	"

UP State Museum, Lucknow

१६	कामोद	कल्याण	”	प	रे	दोनों म	०	०	सारेप मंप धप निधसां	सांनिध प मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१७	काफी	काफी	”	प	सा	ग नि	०	०	सारेग म प धनिसां	सांनिध प मग रेसा	मध्यरात्रि
१८	कालिंगड़ा	भैरव	”	प	सा	रे ध	०	०	सारेगम प ध नि सां	सांनिधप मग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१९	केदार	कल्याण	औड़व सम्पूर्ण	सा	म	दोनों म	रे ग	(ग)	साम मप धप निध सां	सां निध प मंप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
२०	कोमल देसी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	प	रे	निगध व दोनोंरे	ग ध	०	सारे मप निसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
२१	कौंसी कान्हरा	”	सम्पूर्ण	म	सा	नि ग	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप मगरेसा	मध्यरात्रि
२२	कौंसी भैरव	भैरव	”	म	सा	रे ध नि दोनों	०	०	साम गमपम निधनिसां	रेंनिधप मग मरेसा	दिन प्रथम प्रहर
२३	खमाज	खमाज	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	दोनों नि	रे	०	सा ग म प ध नि सां	सां नि ध प मं ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
२४	खम्बावती	”	संपूर्ण षाड़व	ग	ध	” ”	०	रे	सा रे ग म प नि ध सां	सांनिधप मगमसा	” ” ”
२५	खट	आसावरी	सम्पूर्ण	ध	ग	गध, दोनों नि	०	०	सारेगम प निधनिसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
२६	खोकर	खमाज	”	रे	प	नि, दोनों ग	०	०	सारेपम निधप मपधसां	सांनिधप धनिप मगरेगरेसा	” ” ”
२७	गान्धारी	आसावरी	षाड़व सम्पूर्ण	ध	ग	गध, निरे दोनों	ग	०	सारेमप धनिसां	सांनिधप मगरेसा	” ” ”
२८	गारा	खमाज	सम्पूर्ण	ग	नि	गनि दोनों	०	०	सारेगरे गमपध निसां	सांनिधनि पमगरे गरेसा	” ” ”
२९	गुणकरी	भैरव	औडव	ध	रे	रे ध	गनि	गनि	सा रे म प ध सां	सां ध प म रे सा	दिन प्रथम प्रहर
३०	गुणकली	विलावल	सम्पूर्ण	सा	प	०	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	” ” ”
३१	गुर्जरी तोड़ी	तोड़ी	षाड़व	ध	रे	रे मं ग	प	प	सा रे ग मं ध नि सां	सां नि ध मं गरे गरेसा	दिन दूसरा प्रहर
३२	गोपी वसंत	आसावरी	”	सा	प	गनिध	रे	रे	सा ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग सा	प्रातःकाल
३३	गोरख कल्याण	खमाज	”	म	सा	नि	ग	ग	सा रे म धं नि ध सां	सां नि धपम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
३४	गौड़ मल्हार	काफी	संपूर्ण	म	सा	गनि दोनों	(गनि)	०	सा रे म प ध सां	सांनिप मपगम रेसा	वर्षा ऋतु
३५	गौड़ सारंग	कल्याण	”	ग	ध	म दोनों	०	०	सागरेमग पमंधप निधसां	सांधनिप धमंपग मरे परेसा	दिन दूसरा प्रहर
३६	गौरी (भैरव)	भैरव	औडव संपूर्ण	रे	प	रेध	गध	०	सा रे म प नि सां	सांनिधप मंगरेसा	सायंकाल
३७	गौरी (पूर्वी)	पूर्वी	” ”	रे	प	रेध, दोनों म	गध	०	सारेपमं पनिसां	सांनिधप म पगरे मंगरेसा	”
३८	चन्द्रकान्त	कल्याण	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	मं	म	०	सा रे ग प ध नि सां	सांनिधप मंगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
३९	चन्द्रकौंस	काफी	औडव	म	सा	गनि	रेप	रेप	सागु मध निसां	सांनिधम ग मग सा	मध्यरात्रि

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri
UP State Museum, Lucknow

४०	चन्द्र कल्याण	पूर्वी	षाडव	प	सा	मं ध	ग	ग	सा रे मं प नि सां	निरें निधप मंधप मंरेनिसा	सायंकाल
४१	चन्द्रिका	बिलावल	षाडव	ष	सा	०	ग (ध)	(नि)ग	सा रे म प नि सां	सांधप मपध पमरे निसा	मध्यरात्रि
४२	चक्रधर	"	षाडव	म	सा	०	प	प	सा रेगम धनिसां	सांनिधमग रेसा	" "
४३	चम्पक	खमाज	औड़व संपूर्ण	म	सा	नि	गनि	०	सा रे म प ध सां	सां नि पध मप गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
४४	चम्पाकली	"	" "	सा	प	मंनि	रेध	०	साग मं प नि सां	सांनिधप मंप मंग रेसा	मध्यरात्रि
४५	छायानट	कल्याण	सम्पूर्ण	प	रे	दोनों म	०	०	सा रे गमप निध सां	सांनिधप मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
४६	जयराज	बिलावल	पाडव औड़व	म	सा	०	ग	ग नि	सारेमप मधनिसां	सांधपम धप मरेसा	मध्यरात्रि
४७	जलधर केदार	"	औड़व	म	सा	०	गनि,	गनि	सारे साम मप धसां	सांधपम रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
४८	जैजैवन्ती	खमाज	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों गनि	०	०	सा रे गमप निसां	सांनिधप धम रेगरेसा	" "
४९	जैत	मारवा	औड़व	प	सा	रे	मनि	मनि	सा रे ग प धप सां	सांपध पगरेसा	सायंकाल
५०	जैत कल्याण	कल्याण	"	प	सा	०	मनि	मनि	सा रे ग प ध सां	रेंसां धप गरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
५१	जैतश्री	पूर्वी	औड़व संपूर्ण	ग	नि	रे मं ध	रेध	०	सा ग मं प नि सां	सां नि धप मंगरेसा	सायंकाल
५२	जोगिया	भैरव	औड़व षाड़व	म	सा	रे ध	गनि	ग	सा रे म प ध सां	सां नि ध प ध म रे सा	प्रातःकाल
५३	जौनपुरी	आसावरी	षाड़व संपूर्ण	ध	ग	ग नि ध	ग	०	सा रेम प ध नि सां	सां निध प मग रेसा	दिन दूसरा प्रहर
५४	जंगला	"	सम्पूर्ण	सा	प	गनिध दोनों	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां निध पध पमगरेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
५५	झिंझोटी	खमाज	सम्पूर्ण	ग	नि	नि	०	०	सारेगम प ध नि सां	सांनिधप मगरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
५६	भीलफ (भैरव)	भैरव	औड़व	ध	ग	ध	रेनि	रेनि	सा ग म प ध सां	सां ध प म ग सा	प्रातःकाल
५७	भीलफ(आसावरी)	आसावरी	सम्पूर्ण	ध	ग	ग ध नि	०	०	सारेगम प ध नि सां	रेंसांनिध प गपमगरेसा	"
५८	टंकी	पूर्वी	"	प	रे	रे ध मं	(म)	०	सारेगप धपनिसां	सांनिधप मंग पगरेसा	सायंकाल
५९	तिलक कामोद	खमाज	षाड़व संपूर्ण	रे	प	०	ध	०	सारेगसा रेमपध मप सां	सांपधमग सारेग सानि	रात्रि दूसरा प्रहर
६०	तिलंग	"	औड़व	ग	नि	दोनों नि	रे ध	रेध	साग मप निसां	सांनि प मग सा	" " "
६१	त्रिवेणी	पूर्वी	षाड़व	रे	प	रे ध	म	म	सा रे ग प ध नि सां	सां नि ध प ग रे सा	सायंकाल
६२	तोड़ी	तोड़ी	सम्पूर्ण	ध	ग	मं रे ग ध	०	०	सा रे ग मंप ध निसां	सांनिधप मंग रेसा	दिन दूसरा प्रहर
६३	दरबारी कान्हरा	आसावरी	संम्पूर्ण षाड़व	रे	प	ग ध नि	०	ध	निसारेगरेसा मप धनिसां	सां धनिप मप ग मरेसा	मध्यरात्रि

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

६४	दीपक (पूर्वीमेल)	पूर्वी	षाड़व	सा	प	रे मं ध	रे	नि	सागमंप धनिसां	सांधप मंगरेसा	सायंकाल
६५	दीपक (बिलावल)	बिलावल	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	दोनों नि	रे	०	सागमप धनिसां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि
६६	दुर्गा (खमाज)	खमाज	औड़व	ग	नि	,, ,,	रेप	रेप	सा ग म ध नि सां	सां नि ध म ग सा	रात्रि दूसरा प्रहर
६७	दुर्गा (बिलावल)	बिलावल	,,	म	सा	०	गनि	गनि	सा रे म प ध सां	सां ध प म रे सा	,, ,,
६८	देव गंधार	आसावरी	औड़व संपूर्ण	ध	ग	ग ध नि	रेध	०	सा ग म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	दिन दूसरा प्रहर
६९	देवगिरी बिलावल	बिलावल	,, ,,	सा	प	दोनों नि	मनि	धग	सारेगस गपध नि ध सां	सांनिध निप मगरेसा	दिन प्रथम प्रहर
७०	देवरंजनी	भैरव	औड़व	सा	म	ध नि	रे ग	रे ग	सा म प ध प ध सां	सांधनिध प म सा	प्रातःकाल
७१	देशकार	बिलावल	,,	ध	ग		म नि	मनि	सारेग प ध सां	सांध प गपधप गरेसा	दिन प्रथम प्रहर
७२	देशाख्य	काफी	षाड़व	प	सा	ग नि	ध	ध	निसामरे पम निप सां	सां निप मप गम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
७३	देस	खमाज	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों नि	०	०	सा रे म प नि सां	सांनिधप मग रेगसा	,, ,, ,,
७४	देसी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	प	रें	ग व निध दोनों	ग ध	०	सा रे म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	दिन दूसरा प्रहर
७५	धनाश्री	काफी	,, ,,	प	सा	नि ग	रे ध	०	सा ग म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	दिन तीसरा प्रहर
७६	धानी	,,	औड़व	ग	नि	ग नि	रे ध	रेध	सा ग मप निसां	सां निप मग सा	सर्वकालिक
७७	नट	बिलावल	सम्पूर्ण औड़व	म	सा	०	०	ध ग	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि प म रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
७८	नट बिलावल	,,	षाड़व सम्पूर्ण	म	सा	दोनों नि	रे	०	सागम पमग मपधनिसां	सांनिधनिप मग मरेसा	दिन दूसरा प्रहर
७९	नट बिहाग	,,	,, ,,	सा	प	०	ध	०	सा रे ग म प नि सां	सां निपधम पमगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर.
८०	नट मल्हार	काफी	सम्पूर्ण	म	सा	गनि दोनों	०	०	सा रेग मरे गमप निधसां	सांनिध निप मग मरेसा	वर्षाकाल
८१	नन्द	कल्याण	षाड़व सम्पूर्ण	सा	प	दोनों म	रे	०	सा ग म प [illegible] धमपसां	सांनिधप मंपगम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
८२	नायकी कान्हरा	काफी	षाड़व	म	सा	ग व दोनों नि	ध	ध	सा रे ग म प नि सां	सांनिपमप गमरेसा	मध्यरात्रि
८३	नाग स्वरावली	खमाज	औड़व	म	सा	०	रे नि	रेनि	साग मप धसां	सांधपम पग मगसा	रात्रि दूसरा प्रहर
८४	नाट कुरंजिका	,,	षाड़व	सा	म	नि	प	प	निसा गम धनिसां	रेंनिसांधम गमरेसा	,, ,, ,,
८५	नारायणी	खमाज	औड़व षाडव	रे	प	नि	ग नि	ग	सा रे म प ध सां	सां नि ध प म रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
८६	नीलाम्बरी	काफी	औड़व संपूर्ण	रे	प	ग नि दोनों	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सां नि ध प म ग रे सा	,, ,, ,,
८७	परज	पूर्वी	सम्पूर्ण	सा	प	रे ध व दोनों म	०	०	निसाग मंपधनिसां	सां निधप मंप मग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

८८	पटबिहाग	बिलावल	षाड़व संपूर्ण	प	सा	दोनों नि	ध	०	सा रे ग म प नि सां	सांनिधप निधप मगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
८९	पहाड़ी	"	औडव	सा	प	०	म नि	म नि	सा रे ग प ध सां	सां ध प गप गरेसा	सर्वकालिक
९०	पटमंजरी (बि०)	"	सम्पूर्ण	सा	प	०	(ध)	०	सारेगम पधप मपनिसां	सांनिध निप मगरेसा	मध्यरात्रि
९१	पटमंजरी (का०)	काफी	"	सा	प	ग नि दोनों	(गध)	०	सा रे ग म प ध नि सां	सांनिधप मगरेसा	दिन तीसरा प्रहर
९२	पीलू	"	"	ग	नि	गधनि दोनों	०	०	सा रेग मपधप निधपसा	निधपमग निसा	" " "
९३	पूर्वी	पूर्वी	"	ग	नि	रे ध व दोनों म	०	०	सारे ग मंप ध निसां	सांनिधप मं ग रेसा	दिन अन्तिम प्रहर
९४	पूरिया	मारवा	षाडव	ग	नि	रे मं	प	प	निरेसा ग मंध निरेंसां	सांनि ध मंग रेसा	संधिप्रकाश काल
९५	पूर्या	"	"	ग	नि	रे मं व दोनों ध	प	प	निरेधसा रेगमं धसां	सां निध मंगरेसा	सन्ध्याकाल
९६	पूर्व कल्याण	"	सम्पूर्ण	रे	ध	रे मं	०	(प)	सारेगमं पधनिसां	सांनिधप मंगरेसा	"
९७	पूर्याधनाश्री	पूर्वी	"	प	रे	रे ध मं	०	०	निरे गमंप धप निसां	रें निधप मंग मंरेगरेसा	"
९८	पंचम	मारवा	षाडव	म	सा	रे व दोनों म	प	प	साम मंग मंधनिध सां	सांनिध मंमग मंगरेसा	उत्तर रात्रि
९९	प्रदीपकी (पटदीपकी)	काफी	औडव संपूर्ण	सा	म	नि व दोनों ग	रे ध	०	साग मप निसां	सांनिधप मगमप गरेसा	दिन तीसरा प्रहर
१००	प्रभात	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे ध, दोनों म	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप ममं गरेसा	प्रातःकाल
१०१	वहार	काफी	षाडव	म	सा	ग, दोनों नि	रे	ध	सा गम पगम निधनिसां	सां निपमप गम रेसा	मध्यरात्रि
१०२	वरवा	"	षाडव संपूर्ण	रे	प	ग, नि दोनों	ग	०	सा रे मप ध निसां	सांनि धप मप गरेगसा	दिन दूसरा प्रहर
१०३	वड़हंस सारंग	"	औडव	रे	प	दोनों नि	ग ध	ग ध	सा रे म प नि सां	सां नि प म रे सा	" " "
१०४	वसन्त	पूर्वी	षाडव संपूर्ण	सा	म	रे ध, दोनों म	प	०	साग मंध रेंसां	रेंनि धप मंगमंध मंगरेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१०५	बागेश्री	काफी	औडव संपूर्ण	म	सा	ग नि	रे प	०	सा मग मधनिसां	सां निधमग मगरेसा	मध्यरात्रि
१०६	बिलासखानी तोड़ी	भैरवी	सम्पूर्ण	ध	ग	रे ग ध नि	(मनि)	०	सारे गमग पध निसां	सांनिधम गमगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
१०७	बिलावल	बिलावल	"	ध	ग	०	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप मग रेसा	प्रातःकाल
१०८	बिहाग	"	औडव संपूर्ण	ग	नि	०	रेध	०	साग मप निसां	सां निधप मग रेसा.	रात्रि दूसरा प्रहर
१०९	बिहागड़ा	"	षाडव संपूर्ण	म	सा	दोनों नि	(रे)	०	साग मप धनि सां	सांनिधप मगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
११०	बृन्दावनी सारङ्ग	काफी	औडव	रे	प	दोनों नि	ग ध	ग ध	निसा रे मप निसां	सां निप मरे सा	मध्यान्हकाल
१११	बङ्गाल भैरव	भैरव	षाडव	ध	रे	रे ध	नि	नि	सारे गम प ध सां	सांध प मपगम रेसा	प्रातःकाल

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

११२	भटियार	मारवा	सम्पूर्ण	म	सा	रे व दोनों म	(नि)	०	साध प धमपग मंधसां	रेंनि धपम पग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
११३	भवानी	विलावल	चतुस्वरी	म	सा	०	ग प नि	गपनि	सा रे म ध सां	सां धम रेसा	मध्यरात्रि
११४	भिन्नषड़ज	"	औडव	म	सा	०	रे प	रेप	साग मध निसां	सां निध मग सा	"
११५	भीमपलासी	काफी	औडव संपूर्ण	म	सा	नि ग	रे ध	०	निसागम प निसां	सांनिधपम गरेसा	दिन तीसरा प्रहर
११६	भूपाल तोड़ी	भैरवी	औडव	ध	ग	रे ग ध	म नि	मनि	सा रे ग प धसां	रेंसां धप ग पगरेसा	प्रातःकाल
११७	भूपाली	कल्याण	"	ग	ध	०	म नि	मनि	सारेगप धसां	सां धप ग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
११८	भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	ध	रे	रे ध	०	०	सारेगम पध निसां	सांनिध पमग रे सा	प्रातःकाल
११९	भैरवी	भैरवी	"	म	सा	रे ग ध नि	०	०	सा रेगम पध निसां	सां निधप मग रेसा	"
१२०	भंखार	मारवा	"	प	सा	रे व दोनों म	०	०	सारेसा गमपम पगमंधसां	सां निधप मंधमंग पगरेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१२१	मनोहर	पूर्वी	षाडव	ग	ध	रे ध मं	प	०	सा रे ग मं ध सां	रेंसां रेंनिधप गमंगरेसा	" " "
१२२	मध्यमाद सारङ्ग	काफी	औडव	रे	प	नि	धग	धग	सारे मप निसां	सां निप मपरेसा	दिन दूसरा प्रहर
१२३	मलुहा केदार	विलावल	औडव संपूर्ण	सा	म	०	रे ध	०	निसा गमप निसां	सां निध पमग मरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१२४	मधुवन्ती	तोड़ी	" "	प	सा	ग मं	रेध	०	निसा गमंप निसां	सांनिध प मं ग रेसा	दिन तीसरा प्रहर
१२५	मारवा	मारवा	षाडव	रे	ध	रे मं	प	प	सारे ग मंध निध सां	सांनिध मंगरेसा	दिन अन्तिम प्रहर
१२६	मारूविहाग	कल्याण	औडव संपूर्ण	ग	नि	मं	रेध	०	पनिसाग मंप निसां	निरेंनिध प मंग रेसा	" " "
१२७	मांड़	विलावल	सम्पूर्ण	सा	प	०	०	०	सागरे मगपम धपनिध सां	सांधनिप ध मपग मसा	सर्वकालिक
१२८	मालकौंस	भैरवी	औडव	म	सा	ग ध नि	रेप	रेप	निसा गम ध निसां	सांनिध मगमगसा	रात्रि तीसरा प्रहर
१२९	मालवी	पूर्वी	षाडव संपूर्ण	रे	प	रे ध मं	नि	(ध)	सारेगमंप मंधसां	सांनिपमं गरेसा	सायंकाल
१३०	मालश्री	कल्याण	औडव	प	सा	मं	रेध	रेध	सा गप पनिसां	सां निप मंग पगसा	सायंकाल
१३१	मालगुंजी	काफी	षाडव सपूर्ण	म	सा	ग नि दोनों	प (रे)	०	सा ग म ध निसां	सांनिधप मग मगरेसा	रात्रिकाल
१३२	मालारानी	कल्याण	औडव	प	रे	मं	गध	मनि	सा रेमंप निसां	निसांधप रेमंप गरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१३३	मालिन	मारवा	औडव षाडव	ग	नि	रे	रेम	म	निसागप पनिधसां	सां निधप गपग रेसा	सायंकाल
१३४	मालीगौरा	"	सम्पूर्ण	रे	प	रे मं व दोनों ध	०	०	सा रेगमंप धनिधसां	सांनिधप मंनिधमंग रेसा	"
१३५	मियां की सारङ्ग	काफी	षाडव	रे	प	नि दोनों	ग	ग	धनिसा रे पध निसां	सां निध सां निप मरेसा	दिन दूसरा प्रहर

UP State Museum, Lucknow

१३६	मियां मल्हार	काफी	संपूर्ण पाड़व	म	सा	ग व दोनों नि	०	ध	रेमरेसा मरे प निधनिसां	सांनिप मपगम रेसा	मध्यरात्रि
१३७	मीरा मल्हार	"	संपूर्ण	म	सा	गधनि दोनों	०	०	निसा रेगमप निधनिसां	सांधनिप मपगम रेनिसा	"
१३८	मुलतानी	तोड़ी	औडव संपूर्ण	प	सा	रेगधर्म	रेध	०	निसा गमंप निसां	सांनिधप मंग रेसा	दिन चौथा प्रहर
१३९	मेघरंजनी	भैरव	औडव	म	सा	रे	'पध	पध	निरेग म निसां	रेंसां निम ग मरेगरेसा	रात्रि चौथा प्रहर
१४०	मेघ मल्लार	काफी	"	सा	प	दोनों नि	धग	धग	सा मरे मप निनिसां	सांनिप मरे मनिरेसा	वर्षाकाल
१४१	यमन	कल्याण	संपूर्ण	ग	नि	मं	०	०	सारेग मंप ध निसां	सांनिध प मंग रेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१४२	यमनी बिलावल	बिलावल	"	सा	प	दोनों म	०	०	सारेग मग पमंध निसां	सांनिधप गमगरे गरेसा	प्रातःकाल
१४३	रसरंजनी	"	औडव	म	सा	०	गप	गप	सा रे म ध नि सां	सां नि ध म धमरेसा	मध्यरात्रि
१४४	रसचन्द्र	"	"	म	सा	दोनों म	निप	निप	सारेसा गमर्म मंधमंसां	रेंसां धमंम गमरेसा	प्रातःकाल
१४५	राजकल्याण	कल्याण	औडव पाडव	ग	नि	मं	प (रे)	प	निसाग मंधमंग मंधसां	सां निरेंनिध मंगरेसा	सायंकाल
१४६	राजेश्वरी	काफी	औडव	म	सा	ग	परे	परे	निसा मगम मध निसां	सांनिध मग मग सा	मध्यरात्रि
१४७	रागेश्वरी	खमाज	औडवपाडव	ग	नि	दोनों नि	परे	प	साग मधनिसां	सांनिधम गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१४८	रामकली	भैरव	संपूर्ण	प	सा	रेधु व मनि दोनों	०	०	सा ग मप धु निसां	सांनिधु पमं पधुनिधुपगमरेसा	प्रातःकाल
१४९	रामदासी मल्हार	काफी	"	म	सा	गनि दोनों	०	०	सारेप मगम पनिधनिसां	सांधनिमप मगमरेसा	वर्षाकाल
१५०	रेवती (कान्हरा)	"	औडव संपूर्ण	प	सा	ग नि	निग	०	सा रेमप धमप सां	सां धनिप मप मगमरेसा	प्रातःकाल
१५१	रेवा	पूर्वी	औडव	ग	प	रे धु	मनि	मनि	सा रे ग प धु सां	सां धु प ग रे सा	सायंकाल
१५२	लच्छासाख	बिलावल	सम्पूर्ण	ध	ग	दोनों नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां निध पधनिधप गमरेसा	प्रातःकाल
१५३	ललित	मारवा	पाडव	म	सा	रे व दोनों म	प	प	निरेगम मंमग मंध सां	रेंनिध मंध मंमग रे सा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१५४	ललित गौरी	पूर्वी	सम्पूर्ण	म	सा	रे व धम दोनों	०	०	सारेगम मंमग पधनिसां	सांनिधप धमं म ग मरेसा	सायंकाल
१५५	ललित पंचम	भैरव	पाडव संपूर्ण	म	सा	धरे व दोनों म	प	०	सारेसागम मंगमध निसां	सांनिधप धमंम पग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१५६	लक्ष्मी कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों म	०	०	सा रेगमरे मंप ध निसां	सांनिधप मं म गमरेसा	सायंकाल
१५७	लाजवन्ती	बिलावल	सम्पूर्ण	प	सा	०	०	०	निसा गरे मग पधमपसां	सांप धम पग मपरेसा	मध्यरात्रि
१५८	वराटी	मारवा	सम्पूर्ण	ग	ध	मं रे	०	०	सा रेग पमंग पधनि सां	सां निधप मंग रेसा	सायंकाल
१५९	विभास (भैरव)	भैरव	औडव	ध	ग	रे धु	मनि	मनि	सा रे ग प धु प सां	सां धुप गपधुप गरेसा	प्रातःकाल

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri
UP State Museum, Lucknow

१६०	विभास (मारवा)	मारवा	सम्पूर्ण	ध	ग	रे मं	०	०	सा रेग मंग पधनिधसां	सां निध मंध मंगरेसा	प्रातःकाल
१६१	वैजयन्ती	कल्याण	औडव	प	रे	मं	ग ध	शध	निसारे मं प निसां	सांनि पमंरेसा	सायंकाल
१६२	शहाना	काफी	सम्पूर्ण	प	सा	नि ग	०	०	निसा गमप निधपसां	सांनिधनि पमप गमरेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
१६३	शहाना कान्हरा	"	षाडव संपूर्ण	प	सा	गनि	ध	०	सारेग मपनिसां	सांनिधप मप गरेसा	मध्यरात्रि
१६४	श्याम कल्याण	कल्याण	औडव संपूर्ण	सा	म	दोनों म	ध	०	निसा रे मंप धप निसां	सांनिध मंपगमरे निसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१६५	श्याम केदार	खमाज	षाडव	म	सा	मनि दोनों	ग	ग	सारेसाम रेमं प धनिसां	सांनिधप धनिधपमरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१६६	शिवरंजनी	काफी	औडव	प	सा	ग	मनि	मनि	सारेगप ध सां	सां धप ग रे सा	मध्यरात्रि
१६७	शिवमत भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	ध	रे	रे ध, गनि दोनों	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	प्रातःकाल
१६८	शुक्ल बिलावल	बिलावल	"	म	सा	दोनों नि	(रे)	०	साग मप धनिसां	सांनिध निधप मगमरेसा	प्रातःकाल
१६९	शुद्ध कल्याण	कल्याण	औडव सम्पूर्ण	ग	ध	मं	मनि	०	सा रेग पधसां	सांनिधप मंग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
१७०	शुद्ध सारङ्ग	काफी	षाडव	रे	प	मनि दोनों	ग	ग (ध)	सारेमप मंपनिसां	सांनिपमं पधपमरेनिसा	दिन दूसरा प्रहर
१७१	शंकरा	बिलावल	औडव षाडव	ग	नि	०	रेम	म	साग प निध सां	सांनिप निध गप गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१७२	श्रीराग	पूर्वी	औडव सम्पूर्ण	रे	प	रे मं ध	गध	०	सारे मंप निसां	सां निध प मंगरेसा	सायंकाल
१७३	श्रीकल्याण	कल्याण	औडव	प	सा	मं	गनि	गनि	सा रे मं प धप सां	सां धप मंप रेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१७४	श्रीटंक	पूर्वी	षाडव सम्पूर्ण	प	रे	रे ध मं	म	०	सा रे ग प ध नि सां	सां नि ध प मं ग रे सा	सायंकाल
१७५	श्रीरंजनी	काफी	औडव षाडव	म	सा	ग नि	रे प	प	सा ग म ध नि सां	सां नि ध म ग रे सा	मध्यरात्रि
१७६	सरपरदा	बिलावल	संपूर्ण	सा	प	०	०	०	सारेगम धपनिध निसां	सांनिधप मग मरेसा	दिन प्रथम प्रहर
१७७	सरस्वती	खमाज	षाडव	प	रे	मं नि	ग	ग	सारेमंप निधप निधसां	रेंनि धपमं रेमंप मंरेसा	मध्यरात्रि
१७८	साजगिरी	मारवा	संपूर्ण	ग	नि	रे, मध दोनों	०	०	निरेग मंगमंप धपसां	सांनिध मंधमंग पगरेसा	संध्याकाल
१७९	सामन्त सारङ्ग	काफी	औडव	रे	प	दोनों निषाद	ग ध	ग ध	सा रे मप निसां	सां निप म रेसा	दिन दूसरा प्रहर
१८०	साजन	खमाज	औडव संपूर्ण	म	सा	" "	रे प	०	निसागम ध निसां	सां धनिप मगम गमरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१८१	सावनी कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	सा	प	०	(मनि)	०	सारेसा मगप ध सां	सांनिधनि गपगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१८२	सावेरी	भैरव	औडव संपूर्ण	प	सा	रे ध	ग नि	०	सारेमप धसां	सांनिधप मगरेसा	प्रातःकाल
१८३	सांझ का हिंडोल	कल्याण	औडव	ग	नि	मं	प रे	प रे	साग मंधमंनि मंधसां	सां निधनि धमंग सा	सायंकाल

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

१८४	सिन्धु भैरवी	आसावरी	संपूर्ण	म	सा	ग नि ध	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
१८५	सुघराई	काफी	षाडव संपूर्ण	प	सा	ग, दोनों नि	ध	०	सा रे ग म प नि सां	सांनिधप मप गमरेसा	" " "
१८६	सूर मल्हार	"	औडव षाडव	म	सा	दोनों नि	ग ध	ग	सा रे म प नि सां	मां निधमप मरे सा	वर्षाऋतु
१८७	सूहा (कान्हरा)	"	षाडव	म	सा	ग नि	ध	ध	निसा गम पनिमप सां	सां निप मप गमरे सा	दिन दूसरा प्रहर
१८८	सैंधवी (सिंदूरा)	"	औडव संपूर्ण	सा	प	ग नि	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सांनिधप मगरेम गरेसा	सायंकाल
१८९	सोरठ	खमाज	" "	रे	ध	दोनों नि	ग ध	०	सारे मपनि सां	सांरें निध मपध मरेनिसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१९०	सोहनी	मारवा	षाडव	ध	ग	मं रे	प (रे)	प	साग मंधनिसां	सांरेंसांनिध मंध मंगरेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१९१	सौराष्ट्रटंक	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे, दोनों ध	०	०	सारे गम पम ध सां	सांनिधम निधप मगरेसा	प्रातःकाल
१९२	हमीर	कल्याण	"	ध	ग	दोनों म	०	०	सारेसा गमध निध सां	सांनिधप मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१९३	हिजाज	भैरव	"	म	सा	ध नि, रे दोनों	०	०	सारेगमध धनिसां	सांनिधप म गमप रेसा	दिन दूसरा प्रहर
१९४	हिंडोल	कल्याण	औडव	ध	ग	मं	रे प	रे प	साग मंधनिध सां	सां निध मंग सा	दिन प्रथम प्रहर
१९५	हुसेनी कान्हरा	काफी	सम्पूर्ण	सा	प	ग नि	०	०	सारेग मपधनिसां	सांनिधप गमरेसा	मध्यरात्रि
१९६	हेम कल्याण	बिलावल	औडव	सा	प	०	नि (ध)	ग नि	सा रे ग प सां	सां ध प ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
१९७	हंसकंकणी	काफी	औडव संपूर्ण	प	सा	गनि दोनों	रे ध	०	साग मप निसां	सांनिधप मपग मगरेसा	दिन तीसरा प्रहर
१९८	हंसध्वनि	बिलावल	औडव	सा	प	०	म ध	म ध	सारे गपगरे गपनि सां	सां नि प ग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
१९९	हंसमंजरी	काफी	षाडव	प	रे	नि	ग	ग	सा रेमपध निसां	सांधप मपधपम रेनिसा	दिन तीसरा प्रहर
२००	हंसश्री	खमाज	औडव	प	सा	दोनों नि	रे ध	रे ध	सा गमपनि सां	सां नि मप पगमग सा	रात्रि दूसरा प्रहर

नोटः—उपर्युक्त राग विवरण में मतभेद भी हो सकते हैं, फिर भी यथासम्भव हमने अधिकतर राग भातखण्डे मतानुसार ही दिये हैं।

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri
UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत कार्यालय के प्रकाशन

बालसंगीत शिक्षा भाग १-२-३ रु०	२–२५
संगीत किशोर	१–५०
हाईस्कूल संगीतशास्त्र	१–५०
संगीत शास्त्र	१–००
'क्रमिक पुस्तक' भाग १	१–००
" भाग २	८–००
" भाग ३ व ४ प्रत्येक	१०–००
" भाग ५ व ६ प्रत्येक	८–००
संगीत विशारद	५–००
संगीत सीकर	५–००
संगीत अर्चना	५–००
संगीत कादम्बिनी	५–००
भातखंडे संगीतशास्त्र भाग १	५–००
" " भाग २	६–००
" " भाग ३	६–००
" " भाग ४	१५–००
मारिफुन्नगमात भाग १	६–००
" भाग २	६–००
" भाग ३	१–२५
संगीत सागर	६–००
दत्तिलम्	२–००
बेला विज्ञान	४–००
सितार मालिका	५–००
कलावन्तों की गायकी	३–००
ठुमरी गायकी	३–००
हमारे संगीत रत्न	१५–००
सहगल संगीत	२–५०
बेंजो मास्टर	२–००
संगीत पद्धतियों का तु० अध्ययन	२–५०
स्वरमालिका	२–००
भातखंडे संगीत पाठमाला	१–२५
रवीन्द्र संगीत	२–००
उ०भा० संगीत का सं० इति०	२–००

सूरसंगीत भाग १ व २ प्रत्येक	१–५०
मृदङ्ग तबला प्रभाकर भाग १	२–००
मृदङ्ग तबला प्रभाकर भाग २	२–५०
ताल प्रकाश	५–००
ताल अंक	४–००
ठुमरी अंक	२–५०
सन्त संगीत अंक	२–५०
राष्ट्रीय संगीत अंक	२–५०
राग अंक	२–५०
वाद्य संगीत अंक	३–००
बिलावल थाट अंक	२–५०
कल्याण थाट अंक	२–५०
भैरव थाट अंक	२–५०
पूर्वी थाट अंक	२–५०
खमाज थाट अंक	२–५०
काफी थाट अंक	२–५०
मारवा थाट अंक	२–५०
तोड़ी थाट अंक	२–५०
आसावरी थाट अंक	२–५०
हरिदास अंक	१–००
नृत्य अंक	३–००
रजत जयन्ती अंक	५–००
भातखण्डे स्मृति अंक	१–००
कथक नृत्य	८–००
कथकलि नृत्यकला	२–५०
नृत्य भारती	३–००
म्यूजिक मास्टर	२–००
म्यूजिक मास्टर (उर्दू)	२–००
महिला हारमोनियम गाइड	१–५०
संगीत पारिजात भाग–१	४–००
स्वरमेलकलानिधि	१–००
संगीतदर्पण	२–००
फ़िल्म संगीत भाग २९ वाँ	४–००
रविशंकर के आर्केस्ट्रा	५–००
आवाज सुरीली कैसे करें ?	३–००
अप्रकाशित राग भाग १,२,३	४–५०
संगीत निबंधावली भाग १	२–००

'संगीत' शास्त्रीय संगीत का एकमात्र मासिक पत्र, वार्षिक मूल्य ६) प्रति अंक) ५० न०पै०

'फिल्म संगीत' सचित्र मासिक, वार्षिक मूल्य ६), छमाही ४), प्रति अंक) ७५ न० पै०

प्रकाशक—सङ्गीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शास्त्रीय संगीत का एकमात्र मासिकपत्र

संगीत

[२७ वर्षों से बराबर प्रकाशित होरहा है]

इसमें प्रतिमास प्रायः निम्नांकित उपयोगी स्तम्भ रहते हैं:—

- अप्रचलित राग
- नृत्यलिपि
- सितारगत
- पाठकों के प्रश्नोत्तर
- संगीत साधकों से भेंट
- दाक्षिणात्य संगीत
- वाद्यवृन्द
- राग-रंग
- वॉयलिन गत
- ताल-तरंग
- संगीत जीवन के अनुभव
- संगीत के प्राचीन पुजारी
- रेडियो संगीत
- संगीत वाङ्मय

इनके अतिरिक्त सङ्गीत सम्बन्धी समाचार, आर्टपेपर पर सङ्गीतकारों के चित्र तथा व्यंग-चित्र आदि भी रहते हैं। जनवरी में १७२ पृष्ठ का एक वृहद विशेषांक ग्राहकों को वार्षिक मूल्य में ही प्राप्त होता है।

वार्षिक मूल्य ६) डाक व्यय)५६ न० पै०

सरल-सङ्गीत के प्रेमियों को एक अलभ्य उपहार

सचित्र मासिक पत्र

फ़िल्म संगीत

जिसमें प्रतिमास निम्नांकित स्तम्भ एवं आकर्षक सामग्री होती है—

★ काव्य संगीत ★ लोक संगीत ★ भक्ति संगीत
★ आधुनिक संगीत ★ लोक नृत्य ★ पाश्चात्य नृत्य

प्रतिमास ७ नए फ़िल्मी गीतों की स्वरलिपियाँ और फ़िल्म के गायक, वादक, नर्तक तथा संगीत निर्देशकों से भेंट व उनके विचार। संगीत सम्बन्धी व्यङ्ग चित्र, गीत प्रतियोगिता, समाचार तथा आर्ट-पेपर पर फ़िल्मी संगीतकारों के मनोहारी चित्र आदि इस मासिक पत्र की अतिरिक्त विशेषताएँ हैं। वार्षिक मूल्य ६) डाक व्यय)५६ न० पै०

संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगीत

UP State Museum, Lucknow